RNI No. MPHIN/2008/25073 डाक प्रेषण : प्रतिमाह की 7 तारीख डाक पंजीयन क्रमांक मालवा डिवीजन/324/2016-2018

AISECT™
GROUP OF UNIVERSITIES
India's Leading Higher Education Group

CHHATTISGARH | MADHYA PRADESH | JHARKHAND | BIHAR

The **AISECT Group of Universities** is India's leading higher education group whose mission is to establish world-class and affordable universities at locations that are in dire need of quality higher education. The Group's core ideology across all its higher education endeavors has been to groom its students into responsible, proficient and ethical professionals. With over three decades of unparalleled experience in skill development and job placement, the Group offers its students immense opportunities through its extensive industry linkages and expertise in entrepreneur development.

Awards & Accolades

- Most Innovative University of Central India by News 18
- RNTU awarded Madhya Pradesh Gaurav Samman 2018
- ASSOCHAM INDIA Excellence in Education, Training & Development Award 2018
- World Education Summit 2017 (Dubai)
- World Education Summit 2016 (Dubai)
- World Education Summit 2015 Award
- NIELIT Award 2014
- ASSOCHAM Excellence in Education Award 2014

32 Skill Courses in these skill-based universities

9 Centres of Excellence and Skills housed in the universties

15 International & 30 National Level collaborations

Huge **in-house funding** to promote research

State of Art Studio and Centre for **e-Learning**

Students from **23 states** and **10 countries**

First to establish **IoT Lab by Frugal and Intel, Cloud Computing Lab** by **Microsoft**

Where **aspirations** become **achievements!**

nirf INDIA RANKINGS 2017 (Ministry of Human Resources and Development, Govt. of India) Among all Central, State, Private and Deemed universities

AAA+ Ranking By Engineering Ranking Survey 2017

BEST ENGG. COLLEGE WITH AAA RANKING 2018 TOP 500+ BY CAREERS360

BEST ENGG. COLLEGE WITH AAA RANKING 2018 TOP 400+ BY CAREERS360

AWARDED WITH AAA RANKING 2017 BY CAREERS360

ANNOUNCED UNDER THE TOP 30 COLLEGES FOR PLACEMENTS BY CAREERCONNECT

Established **Niti Aayog's prestigious Atal Incubation Centre**

Over **1000 papers and 50 books** published by faculty and students

Project Unnat Bharat awarded by **MHRD**

Excellent **Hostel facility, canteen** and **sports facilities** of International standard

Publication of 2 **UGC Approved Copernicus Indexed Journals**

A pool of **400+employers**

Exclusive Campus Radio Channel 90.4 Radio Mirchi

Microsoft Ed-Vantage Platinum Partnership Microsoft

Global University Linkages

• ICE WaRM (Australia) • University of SIGEN (Germany) • NCTU (Taiwan) • Rensselaer Polytechnic Institute (USA) • KAIST (South Korea) • KYIV University (Ukraine) • Tribhuvan University (Nepal) • Benaka Biotechnologies Inc. (USA) • Mol University Eldoret (Kenya)

Our Universities

DR. C.V. RAMAN UNIVERSITY Chhattisgarh, Bilaspur AN AISECT GROUP UNIVERSITY
Approved by : AICTE | NCTE | BCI | AIU | Joint Committee : (UGC | DEB | AICTE) | Recognized by : UGC | A NAAC Accredited University

Rabindranath TAGORE UNIVERSITY™ MADHYA PRADESH, BHOPAL (Formerly known as AISECT University) AN AISECT GROUP UNIVERSITY
Approved by : AICTE, NCTE, BCI, INC, M.P. PARAMEDICAL COUNCIL | Recognized by : UGC | Member of : AIU

AISECT UNIVERSITY™ JHARKHAND, HAZARIBAG AN AISECT GROUP UNIVERSITY
Recognized by : UGC

DR. C.V. RAMAN UNIVERSITY Bihar, Vaishali AN AISECT GROUP UNIVERSITY
Recognized by : UGC

DR. C.V. RAMAN UNIVERSITY Madhya Pradesh, Khandwa AN AISECT GROUP UNIVERSITY
Recognized by : UGC Approved by : MP. Govt.

AISECT Group of Universities Headquarters :
RNTU Campus, Bhopal-Chiklod Road, Near Bangrasia Chouraha, Bhopal, MP, India, Ph.: 0755-6766100, 6766113
Tel: +91-755-2499657, 3293214/16/72, 3207080, Fax: +91-755-2429096, Email: aisect@aisect.org, Web: www.aisect.org

For more information, call: **09893350135, 09993233374, 09113342042, 09827948482**

प्रेषक : मुकेश वर्मा (प्रधान संपादक)
'समावर्तन' (हिन्दी मासिक)
माधवी, 129, दशहरा मैदान
उज्जैन (म.प्र.) 456 010

पुस्त–प्रेष्य

यहां पते चिपकाएं

स्वामी, प्रकाशक और मुद्रक अजय भट्टाचार्य द्वारा आकृति ऑफसेट, 5 नईपेठ, उज्जैन से मुद्रित एवं माधवी 129, दशहरा मैदान, उज्जैन से प्रकाशित। सम्पादक : श्रीराम दवे।

अनवरत प्रकाशन के ग्यारहवें वर्ष का 127 वाँ अंक

ISSN - 2348-8638

समावर्तन

वर्ष 11 ■ अंक 07 ■ पूर्णांक 127 ■ अक्टूबर 2018 ■ ₹ 60/–(व्यक्ति) ₹150/–(संस्था) मासिक पत्रिका

रंगशीर्ष

तापसी उपन्यास कम, एक दास्तानी कच्चा चिट्ठा अधिक है
- कुसुम अंसल

अभिमुख : रमेश दवे
अनन्तिम : मुकेश वर्मा
मेरा नमन : अजय भट्टाचार्य

रेखांकित : आरती की कविताएँ
चयन : निरंजन श्रोत्रिय

कुसुम अंसल के उपन्यास 'तापसी' का नाट्य रूपान्तरण
रूपान्तरकर्ता : हरदीप दायले

विवेचन : कथा मध्यप्रदेश : खण्ड-5
निरंजन श्रोत्रिय

प्रतिश्रुति : 'दस्तावेज' पत्रिका पर धारावाहिक आलेख
अभिषेक कुमार गौड़

घरोंदे-4
(लघुकथाओं पर केंद्रीत द्वैमासिक स्तम्भ)
इस बार सुनील गज्जाणी की लघुकथाएँ
चयन : वाणी दवे शर्मा

सरोकार

स्त्री अपने सम्मान के साथ जिए इसके लिए जरूरी है कि पहले वह खुद का सम्मान करना सीखें...
- ज्योति जैन

प्रथम पृष्ठ, वीक्षा, साहित्यिक हलचल

ISSN - 2348-8638

वर्ष 11 ■ अंक 07 ■ पूर्णांक 127 ■ अक्टूबर 2018 ■ रू. 60/- (व्यक्ति) रू. 150/- (संस्था)

समावर्तन

मासिक पत्रिका

केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, नयीदिल्ली द्वारा मान्यता प्राप्त
दुष्यंत कुमार स्मारक पाण्डुलिपि संग्रहालय भोपाल द्वारा कमलेश्वर पुरस्कार वर्ष -2010
महाराष्ट्र राज्य हिन्दी साहित्य अकादमी द्वारा मान्यता प्राप्त

सम्पादक मण्डल

संस्थापक : सम्पादन समन्वयक
प्रभातकुमार भट्टाचार्य, उज्जैन

अध्यक्ष : सम्पादक मण्डल
रमेश दवे, भोपाल
मो. 94065 23071

निदेशक प्रबन्धन
रमेश सोनी, इन्दौर
मो. 99264 97611

प्रधान सम्पादक
मुकेश वर्मा, भोपाल
मो. 94250 14166

मुख्य सम्पादक
निरंजन श्रोत्रिय, गुना
मो. 98270 07736

सम्पादक
श्रीराम दवे, उज्जैन
मो. 94259 15010

कार्यकारी सम्पादक
हरीशकुमार सिंह, उज्जैन
मो. 94254 81195

प्रबन्ध सम्पादक
सदाशिव कौतुक, इन्दौर
मो. 98930 34149

कला सम्पादक
अक्षय आमेरिया, उज्जैन
फो. 0734 2561120

जनसम्पर्क अधिकारी
प्रकाश बांठिया, उज्जैन
मो.98260 69558

सह सम्पादक
राजीव शुक्ला (संस्कृति), इन्दौर
निवेदिता वर्मा (सरोकार), उज्जैन
राधेश्याम मिश्र (प्रबन्ध), उज्जैन

सहायक सम्पादक
वाणी दवे शर्मा, हरदीप दायले, उज्जैन

कार्यालय सहायक
संजय मालवीय,उज्जैन

सम्पादक मण्डल के सभी पद अवैतनिक है।

सम्पादकीय : प्रकाशकीय कार्यालय
''माधवी'', 129, दशहरा मैदान,
उज्जैन (म.प्र.) 456010
फोन : 0734 2524457
(समय प्रातः 10 से 2 बजे तक)
ईमेल : samavartan@yahoo.com
वेबसाइट : www.samavartan.com

सह संस्थापक : सम्पादन परामर्शी
अभिलाष भट्टाचार्य, मुम्बई

मुख्य संरक्षक
संतोष चौबे, भोपाल

संरक्षकद्वय
ओम अमरनाथ, उज्जैन
राजू पटेल, मुम्बई

परामर्श मण्डल
गिरिराज किशोर (कानपुर), रश्मि वाजपेयी (दिल्ली), नन्दकिशोर नौटियाल (मुम्बई), विश्वनाथ सचदेव (मुम्बई), सादिक (दिल्ली), मंजु तिवारी (भोपाल), उर्मिला शिरीष (भोपाल), महेन्द्र गगन (भोपाल), सत्यमोहन वर्मा (दमोह)

स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक
डॉ. अजय भट्टाचार्य, सूरत

समावर्तन का मूल्य
व्यक्तिगत सदस्यता प्रति अंक : 60 रु. वार्षिक : 600/-
संस्थागत प्रति अंक 150/- वार्षिक 1500/-
विदेश के लिए प्रति अंक : 10 $ वार्षिक : 100/- $

चेक पर केवल 'समावर्तन' लिखें तथा चेक अथवा मनिआर्डर निम्नलिखित पते पर भेजें
डॉ.प्रभातकुमार भट्टाचार्य
''माधवी'', 129, दशहरा मैदान,
उज्जैन (म.प्र.) 456010

समावर्तन का संचालक मण्डल
प्रनति भट्टाचार्य - अध्यक्ष, उज्जैन
कृष्णा बैनर्जी - संचालक, मुम्बई
तुहिन भट्टाचार्य - प्रबंध संचालक,सूरत

विशेष सम्पादक- वक्रोक्ति
सूर्यकान्त नागर, इन्दौर मो. 98938 10050

विशेष सम्पादक- साहित्य विचार
शैलेन्द्रकुमार शर्मा, उज्जैन मो. 98260 47765

विशेष सम्पादक- नाट्यराग
भारतरत्न भार्गव - नयीदिल्ली, मो.98116 21626

विशेष परामर्शी - घरोंदे
प्रतापसिंह सोढ़ी, इन्दौर, मो.94795 60623

विशेष परामर्शी -लोकराग
शिव चौरसिया, उज्जैन, मो. 97700 78000

निदेशक - समावर्तन संकुल (प्रतिनिधि मण्डल)
प्रकाश रघुवंशी, उज्जैन, मो. 94250 91114

दिल्ली ब्यूरो चीफ
परवेज़ अहमद
219, समाचार अपार्टमेन्ट मयूर विहार फेज़-1
दिल्ली-110054, मो. 098111 -54371

मुद्रणालय
आकृति ऑफसेट, 5 नईपेठ, उज्जैन (म.प्र.)
© सर्वाधिकार सुरक्षित
प्रकाशित सामग्री के उपयोग के लिए लेखक एवं प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है।
प्रकाशित रचनाओं के विचार से 'समावर्तन' का सहमत होना आवश्यक नहीं।
समस्त विवाद उज्जैन न्यायालय के अन्तर्गत विचारणीय।

समावर्तन

अक्टूबर -2018

इस अंक में

प्रथम पृष्ठ : स्वस्तिवाचन : मुरलीधर चाँदनीवाला 05

अभिमुख : गांधी ने कहा था : रमेश दवे 06

मेरा नमन : इनसे मिलिये : अजय भट्टाचार्य 07

रंगशीर्ष

कुसुम अंसल

परिचय : कुसुम अंसल : 08

नाट्यकर्म में कथाकार कुसुम अंसल की : 09

की उपस्थिति और यह रंगशीर्ष

कुसुम अंसल के दो नाटक : 10

शब्द के विरूद्ध खड़ा

अस्तित्व : रमेश दवे : 11

कुसुम अंसल के बहुचर्चित उपन्यास : 14

'तापसी' का नाट्य रूपान्तरण

रूपान्तरण : हरदीप दायले,

सरोकार

ज्योति जैन

परिचय : ज्योति जैन : 44

आत्मकथ्य : जोग लिखी...! : ज्योति जैन : 45

ज्योति जैन की कविताएँ, लघुकथाएँ और कहानी : 46

सबको साथ लेकर चलने वाला व्यक्तित्व : मंजूषा मेहता : 48

साहित्य की हर विधा में फैल रही है

जिनकी दीप्ति : स्मृति आदित्य : 49

उनके मांडनों में महकता है हमारा

लोक परिवेश : संजय पटेल : 51

परिजनों व सुधीजनों की दृष्टि में ज्योति जैन : 52-53

ज्योति जैन से समावर्तन के संपादक श्रीराम दवे की बातचीत : 54

रेखांकित : आरती की कविताएँ : चयन : निरंजन श्रोत्रिय : 39

घरोंदे-4 : सुनील गज्जाणी की लघुकथाएँ : चयन : वाणी दवे शर्मा : 56

प्रतिश्रुति : 'दस्तावेज' पत्रिका पर विशेष : अभिषेक कुमार गौड़ 59

विवेचन : कथा मध्यप्रदेश खण्ड-5 : निरंजन श्रोत्रिय : 64

वीक्षा : रमेश दवे, बी.एल.आच्छा : 66, साहित्यिक हलचल : 68 अनंतिम : मुकेश वर्मा : 70

अक्षर विन्यास : विवेक शर्मा * मुद्रण संशोधक : गरिमा दवे, ऋषि तिवारी

मांगलिक आयोजनों में स्वस्तिवाचन की परम्परा चली आ रही है। स्वस्तिवाचन के लिये ऋग्वेद के प्रथम मंडल के सूक्त ८९ की सभी दस ऋचाओं के पाठ का विधान है। ये ऋचाएँ मंत्रों के स्वरूप में शुक्ल यजुर्वेदसंहिता के २५वें अध्याय में भी हैं। स्वस्तिवाचन के बिना शुभकार्य आरम्भ नहीं होते। ऋग्वेद के इस सूक्त में सबके कल्याण की प्रार्थना की गई है।

आ नो भद्रा क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो अपरीतास उद्भिदः।देवा नो यथा सदमिद् वृधे असन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवेदिवे।।

स्वस्तिवाचन

ऋग्वेद : विश्वेदेवा सूक्त ,1.89.1

सब ओर से शुभसंदेश आते रहें,
कर्मशील बनें हम
किन्तु कर्म के बंधन में न पड़ें।
हों हम अजेय,
दिव्य ज्योति के वृत्त में
सुरक्षित रहें सर्वदा।।।1।।

देवों की कल्याणी मति हमें मिले,
उनकी सरलता हमारे भीतर उपजे,
जागे समर्पण की चेतना,
सखा बनें देवों के ,
आयु जीवन से भरपूर हो।।2।।

हे विश्वदेवताओं !
तुम्हारा आह्वान करते हैं।
प्रकाश के देवताओं !
हमें प्रकाश से भर दो।
अर्यमा ! वरूण ! सोम ! अश्विनी ! सरस्वती !
हमारे भाग्य का द्वार खोल दो।।3।।

सुरभित हवाएँ ओषधि बनकर
हमारी साँसों में प्रवेश करे,
माता पृथ्वी ! पिता आकाश !
हम पर बरसती रहे तुम्हारी कृपा,
जीवन-संघर्ष से
रस की निर्झरिणी प्रवाहित हो,
अश्विनियों की कृपा
हम सभी की स्वस्ति के लिये हो।।4।।

हम उसे पुकारते हैं
जो स्वामी है सम्पूर्ण जगत का,
वह प्रतिपल रक्षा करे हमारी।
वह पालनकर्ता ; वह आनंददाता,
वही हमारी स्वस्ति का वरदायक।।5।।

महा यशस्वी इन्द्र हमारा कल्याण करे,
विश्ववेदा पूषा हमारा कल्याण करे,
तीव्र गति से घूमता भागवत चक्र
हमारा कल्याण करे,
ज्ञान के अधीश बृहस्पति
हमारा कल्याण करें।।6।।

ऊर्जावान् प्राण हममें संचरित हों,
स्पन्दित हों भीतर ज्योति की रश्मियाँ,
शुभ के पथ पर हम गतिशील हों,
सत्य के यजन के सुपात्र बनें,
वाणी में अग्नि- संकल्प हो,
आँखों में सूर्य का तेज हो।।7।।

कानों से हमें स्वस्ति ही सुना दे,
आँखों से शुभकार्य ही देखें ,
सुदृढ़अंगों वाली यह देहसत्ता
तुम्हारे स्तवन के लिये हो,
सम्पूर्ण आयु देवहित में काम आये।।8।।

हम सौ शरदों तक जीवित रहें,
यह जीवनचक्र वृद्धावस्था तक चलता रहे।
हम बीच मझधार में न छूट जायें ,
वह आयु मिले हमें
जो पितरों की अवस्था के लिये उचित है।।9।।

द्यौ अदिति है,
अंतरिक्ष अदिति है,
माता अदिति है,
पिता अदिति है,
पुत्र अदिति है,
विश्वदेवता अदिति है,
पाँचों प्राण अदिति हैं,
पाँचों इन्द्रियाँ अदिति हैं,
जो हुआ है, और जो होगा
वह सब अदिति है।।10।। स

डॉ.मुरलीधर चाँदनीवाला
मधुपर्क, 7, प्रियदर्शिनीनगर, रतलाम

गांधी ने कहा था

रमेश दवे

गांधी जितने महान मनुष्य थे, उतने ही महान एक विचार भी थे। व्यक्ति जब विचारक हो जाता है तो वह अपने विचारक होने से भी आगे जाकर लोक-व्यापी और विश्व-व्यापी हो जाता है। गांधी की इस पहचान को न राजनीति जी सकी, न साहित्य जी सका, न साहित्यकार जी सका और न समाज जी सका जिसका परिणाम यह हुआ कि देश हिंसक हो उठा, चापलूस होकर राजनीति का चारण बन गया। गांधी ने जिस स्वाभिमान के साथ स्वतंत्रता का स्वप्न देखा था, वह स्वप्न ध्वस्त हो गया और गांधी वर्तमान सत्तर वर्ष की राजनीति में अप्रासंगिक और सन्दर्भविहीन हो गए। वे केवलनाम रह गए, न व्यक्तित्व रहे, न विचार। गांधी ने कहा था कि अगर उठो तो एक पेड़ की तरह उठो और तन कर खड़े रहो और गिरो तो एक बीज की तरह ताकि फिर से उग सको।

गांधी अब देश की राजनीति और समाज से धीरे-धीरे निष्कासित किए जा रहे हैं। उनके अवदान को वरदान की तरह न मान कर अब किसी ऐतिहासिक गलती के अपमान की तरह देखा जाने लगा है। दलों के दलदलमें लिपटी राजनीति सत्ताधीशों के महिमा गान के नए नए विशेषण रच रही है। गांधी के समय में भी ऐसा था शायद, इसलिए गांधी ने कहा था ''विशेषणों ने हमारी संज्ञाओं को खराब कर दिया है।'' जब कोई भी देश संज्ञाहीन, क्रियाहीन और लोक-हित के लोकतांत्रिक व्याकरण से भटक जाता है तो राजनीति विचार या व्यक्तित्व की न होकर, स्वार्थ और पदों की प्रतियोगिता बन जाती है जिससे हमारे संविधान का व्याकरण, संस्कृति का व्याकरण और सामाजिक-संबंधों का व्याकरण भी उदास होने लगता है और भाषा की रक्षा करने में असमर्थ हो जाता है। ऐसे समय में साहित्यकार और बुद्धिजीवी ही वे लोग होते हैं जो समाज को सही दिशा दे सकते हैं लेकिन दुर्भाग्य यह है कि साहित्यकार और बौद्धिक भी अब सत्ताओं के संकीर्ण गलियारों में स्वयं का महिमा-मंडन करने में लगे है।

गांधी का समय व्यक्तित्वों का समय था, क्रांति का समय था, स्वतंत्रता के लिए आत्म-बलिदान का समय था। इसके विपरीत हमारा आज का समय आत्म-विज्ञापन का समय, अपराध का समय, टुच्ची ईर्ष्या प्रतियोगिता और यश-दौड़ के साथ धन-दौड़ का समय है। साहित्यकारों की कवि, कहानीकार जमात तो हर शहर, कस्बे में अपने-अपने शब्द-ध्वज फहरा रही है लेकिन अध्ययन, चिन्तन और श्रेष्ठ-सृजन एक प्रकार से अनाथ हो गए हैं। किताबों की हर माह साहित्य के नाम पर एक भीड़ पैदा होती है जो रद्दी के कागजी ढेर के अलावा कुछ नहीं होती। साहित्यिक पत्र-पत्रिकाएँ आर्थिक भुखमरी से त्रस्त हैं। टेक्नालजी के आक्रमण से किताब को कम्प्यूटर के नेट और स्मार्ट टेलीफोनों के संजाल ने बहिष्कृत कर दिया है। ऐसे समय में चरखे-वाला गांधी बाबा, अहिंसा और शांति का गांधी बाबा, स्वावलम्बन की खादी-वाला गांधी बाबा अब क्या तो कहे और क्या सुने।

गांधी ने कहा था हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाओ क्योंकि वह देश की जनभाषा होने से राष्ट्रभाषा बनने की अधिकारी है मगर देश की राजनीति और शिक्षा ने हिन्दी को अंग्रेजी पोशाक पहना कर मनुष्य की प्रवृत्ति और प्रकृति ही बदल दी। एक ऐसा समय जो स्वतंत्रता के पश्चात के इन 70-72 वर्षों में सूर्योदय के स्वर्णिम प्रकाश पर कालिमा बनकर छाने लगा है, उसे अब कालिमा से बचाने के लिए क्या पुनः किसी नए गांधी को आना होगा? अतीत ने हमें ऋषि, मुनि, महान ग्रंथ और महापुरुष दिए। वर्तमान हमें अपराधी, अपराध, हिंसा और आत्म-हत्याएँ दे रहा है। हमें चिन्तित होना होगा, सही ढंग से चिंता करनी होगी और चिन्ता को कर्म में बदलना होगा न कि राजनीतिक-भाषणों और घोषणाओं के थोथे कर्मकाण्ड में हमें विचार की नई आग, नई ऊर्जा और नई पीढ़ी तैयार करनी होगी जो शब्द और कर्म का सामंजस्य कर सके और स्वार्थों को संकीर्णता से ऊपर उठकर या तो पुनः गांधी-पीढ़ी बने या भगतसिंह और चंद्रशेखर आजाद-पीढ़ी बने।

दो अक्टूबर गांधी या लालबहादुर शास्त्री के चित्रों को सूत की माला डालने का कर्मकाण्ड नहीं है बल्कि वह चरखे और जयजवान-जय किसान के आदर्श को अपनाने का समय है।

इस अंक में ख्यात कथाकार, नाटककार, कवयित्री डॉ.कुसुम अंसल के नाट्यधर्मी व्यक्तित्व पर जहाँ रंगशीर्ष संयोजित किया गया है वहीं कला, साहित्य सृजन और समाजसेवा के सरोकारों से युक्त श्रीमती ज्योति जैन के कृतित्व को 'सरोकार' के अंतर्गत लिया जाकर आवश्यक जानकारी प्रस्तुत की जा रही है। सभी रचनाकारों एवं सहयोगियों के प्रति आभार। स

(अध्यक्ष, सम्पादक-मण्डल)
मो.94065-23071

इनसे मिलिये ....

डॉ.अजय भट्टाचार्य
स्वामी-प्रकाशक-मुद्रक 'समावर्तन'

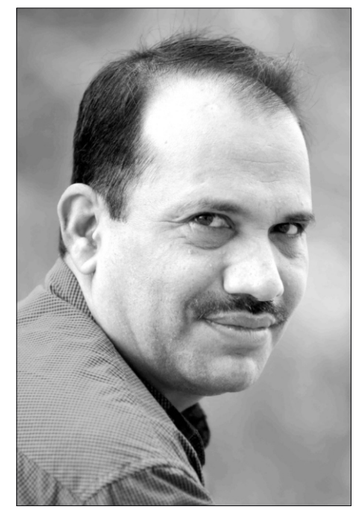

मनीष वैद्य

समावर्तन के नियमित लेखकों में युवा लेखक मनीष वैद्य (देवास) भी हैं। पिछले किसी एक अंक में मुकेश चाचा, (मुकेश वर्मा, प्रधान संपादक समावर्तन) ने अपने लोकप्रिय स्तम्भ 'कथाराग' में मनीष जी की एक कहानी चयन कर अपनी संपादकीय टिप्पणी के साथ प्रकाशित की थी तभी से यह नाम मेरी स्मृति में पैठ गया था। बाद में तो उनकी कई समीक्षाएँ भी समावर्तन में प्रकाशित होती रही है। उनके बारे में समावर्तन के संपादक भाई सा.श्रीराम दवे जी कुछ ओर भी बता रहे हैं-

''अपनी युवावस्था से ही पानी, पर्यावरण और सामाजिक सरोकारों पर अभी तक सैकड़ों आलेख लिख चुके भाई मनीष वैद्य 'समावर्तन' से प्रारंभ से ही जुड़े हुए हैं। सात-आठ वर्ष पूर्व जब समावर्तन ने इन्दौर के प्रेस क्लब में बसन्तोत्सव का आयोजन किया था जिसके अंतर्गत मनीष जी ने कहानी पाठ किया था तब उन्हें खूब सराहना मिली थी बाद में तो उनकी कई रचनाएँ समावर्तन में प्रकाशित हुई। 'टुकड़े-टुकड़े धूप' तथा 'फुगाटी का जूता' शीर्षक से उनके दो कहानी संग्रहों के अलावा देश की सभी ख्यात साहित्यिक पत्रिकाओं में अपनी कहानियों से पहचाने जा रहे मनीष जी एम.ए., एम.फिल (हिन्दी साहित्य) होने के साथ-साथ चिर यायावर रहे स्व.राहुल सांकृत्यायन पर शोध कार्य में संलग्न है।

पत्रकारिता और सामाजिक सरोकारों से जुड़ाव रखने वाले मनीष वैद्य अत्यन्त विनम्र और स्वाभिमानी व्यक्तित्व के धनी हैं। संस्कृति विभाग म.प्र. के प्रेमचन्द सृजनपीठ उज्जैन द्वारा कहानी के लिए सम्मानित एवं यशवंत अरगरे सकारात्मक पत्रकारिता सम्मान आदि कुछ और सम्मानों से सम्मानित मनीषजी अपनी सकारात्मकता और सदाशयता के साथ निरन्तर सृजनशील बने रहे। इन्हीं शुभकामनाओं के साथ उनका अभिनंदन। स

कुसुम अंसल

अलीगढ़ के एक समृद्ध व्यापारी परिवार में जन्मी कुसुम अंसल की शिक्षा अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी में हुई जहाँ से उन्होंने 1961 में मनोविज्ञान में एम.ए. किया। 1987 में 'आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में विश्व-भावना' विषय पर पंजाब विश्वविद्यालय से डाक्टरेट ली। कहानी, कविता, उपन्यास, आत्मकथा तथा यात्रावृत्तांत, सब मिलाकर आपकी 30 से अधिक रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं। आप पंजाबी तथा अंग्रेजी में भी लिखती हैं।

आपके उपन्यास 'एक और पंचवटी' पर सुप्रसिद्ध निर्देशक बासु भट्टाचार्य ने फिल्म बनाई जिसमें दीप्ति नवल, सुरेश ओबरॉय, अकबर खाँ इत्यादि ने काम किया। यह फिल्म तोक्यो, टोरंटो, ताशकंद इत्यादि में हुए फिल्म-उत्सवों में दिखाई गई। दूरदर्शन के लिए 'तितलियाँ' और बच्चों के लिए 'इन्द्रधनुष' तथा ' इसी बहाने' सीरियल भी लिखे।

नाटक तथा अभिनय में कुसुम अंसल की आरम्भ से ही रुचि रही। उन्होंने 'इप्टा' के अनेक नाटकों में काम किया। उनके उपन्यास 'रेखाकृति' का फ़ैज़ल अलकाज़ी ने नाट्य रूपान्तर किया जो दिल्ली, मुम्बई और पुणे में सफलतापूर्वक प्रदर्शित किया गया। आपने आकाशवाणी पर नियमित रूप से प्रसारण किया है। बी.बी.सी., रेडियो हांगकांग इत्यादि ने आपके इन्टरव्यू लिए हैं। स्वयं भी 'संवाद' नाम से विविध भाषाओं के लेखकों की मासिक गोष्ठी आयोजित करती रही हैं । सामाजिक गतिविधियों में भी आपकी गहरी रुचि है तथा आप 'वुमेन्स इण्टरनेशनल क्लब' की सदस्या और 'फिक्की लेडीज़ आर्गेनाज़ेशन' की अध्यक्षा रह चुकी है। शिक्षा में आपकी विशेष रुचि है और आप 'चिरंजीव भारती' स्कूल तथा सुशान्त स्कूल आव आर्ट एण्ड आर्किटेक्चर, गुडगाँव, से घनिष्ठ रूप से जुड़ी हैं। आपकी फूलों तथा इकेबाना में विशेष रुचि है और इसके विविध पक्षों पर आपके लेख पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते हैं।

रचनाएँ : उपन्यास : उदास आँखें (1975), नींव का पत्थर (1976), उसकी पंचवटी (1978), उस तक (1979), अपनी-अपनी यात्रा (1985), एक और पंचवटी (1985), रेखाकृति (1989), तापसी 2003, खामोशी की गूंज (2014) परछाइयों का समय सार (2018) ।

कविता : मौन के दो पल, धुएँ का सच, मेरा होना, समय की निरन्तरता में, ऑनली स्टार्स साइन - विरूपीकरण, पंख एक भेंट, एक खुशबू एक लो (2015)

कहानियाँ : स्पीड-ब्रेकर (1978), पते बदलते हैं (1983), इकतीस कहानियाँ (1983), धुएँ की ईमानदारी (1999), वह आया था (2004) कुसुम अंसल की लोकप्रिय कहानियाँ (2017)।

अन्य : जो कहा नहीं गया (आत्मकथा), महानगर (थीसिस), रेखाकृति (नाटक), स्मृतियों का अतीत (यात्रा), उसके होठों का चुप (नाटक), मेरे साक्षात्कार (2015), सरे राह चलते-चलते (यात्रा वृत्तांत (2016)।

अनुवाद : अंग्रेजी : सिंग मी नो सांग्स (1982), ट्रेवलिंग विद सन बीम (1983), माई लवर्स नेम एण्ड अदर स्टोरीज़ (2001), शेल्टरिंग शैडोज़ (1992), एज़ आई एम (1997), कल्चर्स (1998)।
रूसी : 31 शार्ट स्टोरीज़ (1995), एक और पंचवटी (1995)
ग्रीक : शार्ट स्टोरीज़ (अनुवादक : ए.जार्ज लियोसिस), पंजाबी किस पछाता सच (1979), राहाँ दी भाई (1982), लकीरां दे परछावे, हनेरे दा कारन (1988)।
उर्दू : यादों के हमसफर (1999), जो कहा नहीं गया (1997)।

सम्मान : शिरोमणि पुरस्कार, प्रियदर्शिनी पुरस्कार, पंजाबी साहित्य अकादमी पुरस्कार, भाई वीरसिंह साहित्य सदन पुरस्कार, विजय रत्न पुरस्कार, साहित्य अकादमी पंजाबी पुरस्कार, समन्वय श्री पुरस्कार, उ.प्र.संस्थान भारत भारती 'महादेवी वर्मा पुरस्कार सहित कुछ और सम्मान....

संपर्क : 27, फिरोजशाह रोड, नई दिल्ली-110001
फोन : 23737744, 23737755

नाट्यकर्म में कथाकार कुसुम अंसल की उपस्थिति और यह रंगशीर्ष

सुख्यात लेखिका *डॉ. कुसुम अंसल* का लेखन बहुआयामी रहा है वे कविताएँ, कहानियाँ, उपन्यास, नाटक, निबन्ध, यात्रा संस्मरण आत्मकथा, शोध आदि विधाओं में विगत पांच दशकों से निरन्तर सृजनरत रही है।

यह सही है कि कुसुम जी के लेखन पर *समावर्तन 'एकाग्र'* (अप्रैल 2013) प्रस्तुत कर चुका है किन्तु समावर्तन के संस्थापक सम्पादन समन्वयक और रंगकर्मी *डॉ.प्रभातकुमार भट्टाचार्य* कुसुम जी के रंगकर्मी और नाट्यधर्मी व्यक्तित्व को भी *'रंगशीर्ष'* में संजोने का आग्रह करते रहे हैं क्योंकि उनके *'रेखाकृति'* उपन्यास और नाटक का नाटकीय रूपान्तरण जहाँ प्रसिद्ध नाट्यकार *फैज़ल अलकाजी* द्वारा किया गया वहीं *'उसके होठों का चुप'* जैसा पृथक और पूर्ण नाटक लिख कर कुसुमजी ने अपने सृजन का एक और गवाक्ष खोला है। शुरूआती दिनों में कुसुम जी ने जहाँ 'इप्टा' के नाटक 'गालिब के उड़ेंगे पुर्जे' में खुद भी अभिनय किया वहीं उनके एक और उपन्यास *'एक और पंचवटी'* पर सुप्रसिद्ध फिल्म निर्देशक *बासु भट्टाचार्य* के निर्देशन में दिप्ती नवल, सुरेश ओबेराय आदि कलाकारों को लेकर *'पंचवटी"* फिल्म भी बनी जो सुधी दर्शकों द्वारा सराही गयी थी।

शुरूआती दौर में कुसुम जी ने दूरदर्शन के लिए कतिपय धारावाहिक और नाटक भी लिखे और जिनका प्रसारण भी हुआ और उन्हें सराहना भी मिली थी ऐसे धारावाहिकों में 'तितलियाँ' आदि प्रमुख हैं। कुसुमजी ने पेंटिंग भी की है। उनके चित्रों का रंग संयोजन देखते ही बनता है।

विधवाओं की स्थिति और वृन्दावन में मोक्ष की कामना के साथ उनके शेष जीवन के कष्टों और संत्रासों का जीवन्त वर्णन **कुसुम जी** ने अपने उपन्यास **''तापसी''** में किया है। उन्होंने एक बार इस उपन्यास के नाटकीय रूपान्तरण हेतु प्रभातजी से आग्रह किया था तब प्रभात जी अपने एक उपन्यास **'मगरमुँहा'** तथा **संस्कृत के नाटकों की पुनर्रचना** कार्य में लगे हुए थे। अतः उन्होंने यह कार्य ***म.प्र.नाटक लोककला अकादमी*** *(प्रभात जी द्वारा 42 वर्ष पूर्व स्थापित एवं वर्तमान में भी सक्रिय) के रंगकर्मी* ***श्री हरदीप दायले*** को आवश्यक निर्देशों के साथ यह काम सौंपा तथा समावर्तन के संपादक **श्रीराम दवे** को श्री दायले द्वारा किये गये तापसी के नाट्य रूपान्तरण को संपादित करने का आग्रह किया। एक वर्ष पूर्व यह नाट्य रूपान्तरण कुसुमजी को भेजा गया तो उनका आग्रह रहा कि इसका मंचन किया जाय। तापसी के इस नाट्य रूपान्तरण का मंचन तो निकट भविष्य में होगा ही, किन्तु **प्रभात जी** द्वारा **श्री हरदीप दायले** से करवाये गये इस नाट्य रूपान्तरण को **कुसुम जी** के **रंगशीर्ष** से जोड़ने की पहल इस अंक में की गई है।

तापसी के इस नाट्य रूपान्तरण में रूपान्तरकर्ता द्वारा यह कोशिश की गयी है कि मूल उपन्यास की आत्मा आहत न हो बल्कि वह यथावत रहकर पाठकों/प्रेक्षको को उपन्यास का मर्म समझाने में सफल हो सके। हमें आशा है कि सुधी पाठक तापसी के इस नाट्य रूपान्तरण को न केवल पसन्द करेंगे बल्कि अपनी प्रतिक्रियाओं से हमें अवगत भी करायेंगे। रंगशीर्ष स्तम्भ को साकार करते हुए कुसुमजी के दो अन्य नाटकों **'रेखाकृति'** तथा ***'उसके होठों का चुप'*** का सार संक्षेप भी यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है ताकि कुसुमजी के नाट्यधर्मी व्यक्तित्व को और उनके सरोकारों को समझा जा सके।

तापसी के नाट्य रूपान्तरण की प्रस्तुति से पूर्व कथाकार-आलोचक ***प्रो.रमेश दवे*** का एक पूर्व प्रकाशित आलेख भी यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है जिसमें **'तापसी'** की कथावस्तु और संरचना को ***'शब्द के खिलाफ खड़ा अस्तित्त्व'*** निरूपित किया जाकर सामाजिक विडम्बना पर कई महत्त्वपूर्ण सवाल उठाये गये हैं। स

श्रीराम दवे, सम्पादक

कुसुम अंसल के दो नाटक

रेखाकृति

कुसुम जी ने 'रेखाकृति' नाम से ही एक उपन्यास इस नाटक से पूर्व लिखा था। इस नाटक की कथावस्तु 'रेखाकृति' उपन्यास से ही ली गई है। अगर ये कहें कि 'रेखाकृति' उपन्यास को ही लेखिका ने 'रेखाकृति' नाटक में रूपांतरित कर दिया है तो कुछ गलत न होगा। ध्यान रखने वाली बात यह है कि इस नाटक का रूपांतरण 'फ़ैजल अलकाजी' और 'अरूण सहगल' द्वारा किया गया है। यह संपूर्ण नाटक दो अंकों में विभक्त है। इस नाटक के प्रथम अंक में छः दृश्य हैं तथा दूसरे अंक में सात दृश्य हैं।

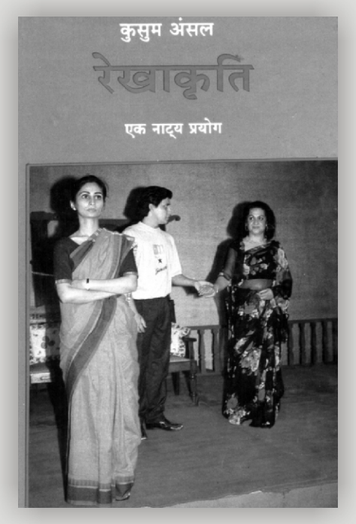

नाटक के प्रथम अंक की शुरूआत जौहरबाई की पुरानी हवेली 'निर्मल कुंज' से होती है। आभा एवं उसकी बेटी मालविका दृश्य में पहले आती हैं। मालविका के ताऊजी ने अपने छोटे भाई की मृत्यु के बाद विधवा आभा और मालविका को यहाँ छोड़ जाते हैं। मालविका एम.ए. करती है एवं अपनी माँ के विपरीत अधिक बुद्धिमति है। वह अपने रास्ते खुद चुनती है। इनके अतिरिक्त दूसरे दृश्यों में नयनतारा (नैना), जानकी एवं उसका पति किसनलाल भी सामने आते हैं। कुछ समय बाद एक फ्रांस का एक चित्रकार पियरे आता है। मालविका इस दौरान पी.एच.डी. में अपना पंजीकरण कराती है। एक दृश्य में किसनलाल एक सोलह साल की लड़की का अपहरण करके लाता है तथा अपनी पत्नी की मौजूदगी में ही उसके साथ दुराचार करता है। इसी दौरान पियरे की नजदीकियाँ मालक्विका की माँ आभा से हो जाती हैं। मालविका का शोध-निर्देशन उसे दिल्ली जाने की सलाह देता है।

दूसरे अंक का आरम्भ दिल्ली की सरजमी से होता है, जहाँ गेस्ट-हाउस में मालविका एवं शरत नज़र आते हैं। शरत नशे की हालत में मालविका से यौन-सम्बन्ध स्थापित करता है। घर वापस आकर अचानक मालविका अपनी माँ एवं पियरे को आपत्तिजनक स्थिति में देख लेती है। दोनों के प्यार के बारे में उसे पता चलता है। वह अपने ताऊजी से बात करके दोनों की शादी करा देती है तथा आभा और पियरे फ्रांस चले जाते हैं। कुछ समय बाद पियरे का पत्र मालविका को मिलता है, जिससे उसे पता चलता है कि आभा पियरे को छोड़कर किसी बूढ़े अमीर के साथ रहने लगी है।

'रेखाकृति' एक ऐसा नाटक है, जो रिश्तों के विभिन्न आयामों की कहानी कहता है। व्यक्ति अपने रिश्तों को कैसे जीता है, इसके रूप को इस नाटक में देखा जा सकता है। कुसुम के शब्दों में- ''हर शरीर की विशेष अवस्था/ विशेष आयाम होते है...रिश्ते जीवन के विभिन्न आयामों के रेखाचित्र होते हैं।'' रेखाकृति ऐसे ही रिश्तों के चित्र इस नाटक में उकेरता है।

उसके होठों का चुप

भारतीय समाज पुरुष-प्रधान समाज है। पुरुषों का वर्चस्व आज ही नहीं बहुत पहले से रहा है। वेदों में बेशक 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमंते तत्र देवता' की उद्घोषणा की गई है परन्तु हकीकत में नारी को यह दर्जा कभी नहीं दिया गया, जिसकी वह हक़दार थी। लेखिका ने इस नाटक में सच में नारी के चुप होठों के बीच दबे दर्द को उभारने का अथक प्रयास किया है। इस नाटक में दो नारी पात्रों-नंदिनी और नज़म को आधार बनाया गया है। नज़म का पति उसे देखना ही नहीं चाहता क्योंकि उसके दिमाग में तो उसका अपना पहला प्यार ही छाया हुआ है, फिर वह किसी और के बारे में कैसे सोच सकता है। इस कारण से नज़म की ज़िन्दगी में एकाकीपन, नीरसता भरती जाती है। दूसरी तरफ नंदिनी बहुत कोशिश करके अपने पति के रंग में खुद को रंगती है परन्तु बावजूद इसके, उसका पति उसे फूटी आँख भी नहीं देखता।

कुसुमजी ने इस नाटक के माध्यम से यह दिखाने का भी प्रयास किया है कि आज के इस भूमण्डलीकरण के दौर में भी लाइफ-पार्टनर चुनने का हक़ सिर्फ और सिर्फ पुरुषों को ही है। सलीम के माध्यम से लेखिका ने एक ऐसे शख्स का चित्रण किया है जो हृदयहीन है, जिसके लिए भावनाओं का कोई मोल नहीं है। स्त्री का अपना भी तो कोई वजूद होता है, उसके सपने भी होते हैं और जब उसके ये सपने टूटते हैं, तो उसके टूटने की आवाज़ तो नहीं होती परन्तु दर्द बहुत होता है। इस तरह की भावनाओं ने इस नाटक में जगह बनाई है।

नारी को जन्म के साथ ही तिरस्कृत होना पड़ता है और यह तिरस्कार मृत्यु पर्यान्त रहता है। देव और नंदिनी भी जब बच्चा गोद लेने जाते हैं तो उनकी भी तमन्ना लड़के की ही होती है परन्तु उन्हें लड़की ही लेने के लिए कहा जाता है। जब दोनों इसका प्रतिवाद करते हैं तो नन का व्यंग्य महत्त्वपूर्ण हो जाता है- 'पता नहीं हर हिन्दू औरत लड़का ही माँगती है, हम क्या करें जितना बच्चा आता है सब लड़की, लड़की किसी को नहीं चाहिए होता है न। उसकी माँ को, न एडाप्ट करने वाली पार्टी को...।'' कैसी विडम्बना है कि एक माँ जो कि स्त्री ही होती है परन्तु संतान के रूप में लड़का चाहती है। इस तरह के प्रश्नों को कुसुमजी ने इस नाटक में उठाया है।

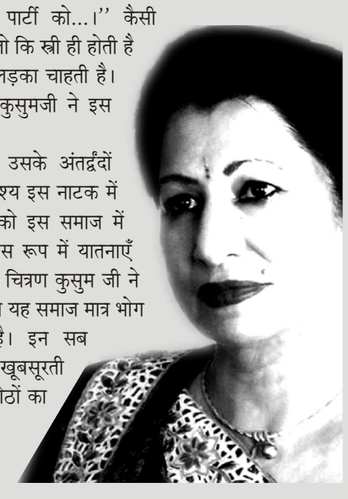

स्त्री के मनोभावों, उसके अंतर्द्वंदों आदि का एक विहंगम दृश्य इस नाटक में दिखाया गया है। नारी को इस समाज में कहाँ-कहाँ और किस-किस रूप में यातनाएँ मिलती हैं, इसका सफल चित्रण कुसुम जी ने किया है। स्त्री को आज भी यह समाज मात्र भोग की ही वस्तु मानता है। इन सब विडम्बनाओं को बड़ी ही खूबसूरती से कुसुम जी ने 'उसके होठों का चुप' में दिखाया है। स

शब्द के विरूद्ध खड़ा अस्तित्व

रमेश दवे

विधवा, भारतीय समाज का शाश्वत दुर्भाग्य है। स्त्री का समूचा सौन्दर्य, शील, सुख, संतोष और संवेदन सब कुछ इस 'विधवा' नामक शब्द में तिरोहित हो जाता है और बच जाता है स्त्री का एक वीभत्स विद्रूप, जिसे समाज, धर्म, मंदिर, तीर्थ और मुट्ठी भर पंडे (या गुण्डे) मिलकर रचते हैं। क्या इस आत्महन्ता वैधव्य के विद्रूप से स्त्री की कोई मुक्ति है? क्या ये विधवाएं किसी तीर्थ-भूमि में ईश्वर की मृत्यु को सही साबित नहीं करतीं? क्या वृंदावन जैसी ललित भूमि का लीला वन अपनी लावण्य लीलाओं के राधाकृष्णमय रास और महारास की नुपूर-ध्वनियाँ गँवा कर केवल विधवा-वृंदाओं का विरूप-वन बनकर नहीं रह गया है?

कुसुम अंसल का उपन्यास 'तापसी' ऐसे प्रश्नों के साथ स्त्रीत्व की अस्मिता की स्थापना का उपन्यास है। 'तापसी' एक स्त्री-विधवा ही नहीं है, बल्कि वह धर्म, तीर्थ, समाज और मनुष्य होने के दावों के विरुद्ध किसी घोर संदेह से उपजा एक जटिल किन्तु ज्वलंत प्रश्न है। कुसुम अंसल 'तापसी' में तीर्थ की अवमानना, तीर्थ का तिरस्कार, तीर्थ का अस्वीकार कर रही हों, ऐसा नहीं लगता, बल्कि कुसुम जी ने तीर्थ और तापसी के पारस्परिक विलोम इस प्रकार रचे हैं कि तीर्थ ही नहीं, ईश्वर तक 'तापसी' के अस्तित्व के समक्ष तिरोहित हो जाते हैं। उपन्यास एक प्रकार की रोमण्टिक सेण्टीमेण्टेलिटी व्यक्त करता है, एक अस्थायी आक्रोश और आवेश उत्पन्न करता है, जिन संदेहों को श्रद्धा के ऊपर रख कर तापसी और तीर्थ के प्रश्न, उपन्यासकार ने रचे हैं, वे भी भावुकता-जन्य अधिक हैं, लेकिन तीर्थ तो हैं ही एक प्रकार की भावुकता का प्रतीक, जहाँ जाकर विवेकवान से विवेकवान व्यक्ति अंधश्रद्धा का असहाय दास-सा नज़र आता है। कुसुम अंसल ने तीर्थगत इस भावुकता को शांति निकेतन और विश्व भारती के एक बौद्धिक और कलात्मक विकल्प से खंडित करने का प्रयत्न तो किया है, लेकिन भावुकता से कथा-तत्व में जो अनावश्यक हस्तक्षेप उभरते हैं, उससे शांति निकेतन का समूचा पर्यावरण वृंदावन का विकल्प बन नहीं पाता! यह सच है कि विधवा 'तापसी' के वैधव्य का विकल्प बौद्धिक-अध्यात्म की साधना-भूमि-निकेतन हो सकता है, लेकिन 'तापसी' में केवल एक तापसी तो है नहीं, और हजारों क्षीण-काय, मृतप्राय, भिक्षुणी बनी, इन तिरस्कृत नारियों के लिए भले ही एक वृन्दावन काफी हो, मगर एक शांति निकेतन पर्याप्त नहीं हो सकता। उनके लिए देश के हर गली-मोहल्ले को एक-एक शांति-निकेतन बनना होगा, तब कहीं वृंदावन की अभिशप्त विधवाओं के विद्रूप तापसी बन कर स्वयं नारी ही उठेगी और अपने इस बेबस वैधव्य से मुक्ति का मार्ग तलाश सकेंगीं।

कुसुम अंसल का यह उपन्यास अपनी भूमिका से ही प्रकट होने लगता है और ऐसा लगता है जैसे उपन्यास न बोलकर, तापसी बोल रही है, तापसी न बोल कर कुसुम बोल रही हैं या कुसुम न बोलकर वह यथार्थ बोल रहा है, वह काया बोल रही है, वह मानस बोल रहा है, जो यदि प्रश्न ही नहीं है तो नारी की अस्मिता की खोज का एक समाजशास्त्रीय दस्तावेज भर है और अगर संदेहों की बुनावट में से निकलता संवेदन है, तो कथा ही कथा है- एक निर्मम कथा, निष्ठुर कथा, नकार की कथा, यहाँ तक कि स्त्री के समूचे मनुष्यपन के लाचार अपमान और तिरस्कार की कथा। तापसी इस कथा की विषय भी है, वस्तु भी, चरित्र भी, घटना भी और विधवा होने या न होने के विरुद्ध स्त्री होने का संघर्ष भी। इस दृष्टि से यह उपन्यास कई आबसेशंस, कई पूर्वराग और कई धर्मगत आश्वस्तियों को खंडित करता, चिन्ता का उपन्यास भर नहीं बल्कि चेतना का उपन्यास है। 'तापसी' एक थीम-विशेष पर आधारित सामाजिक उपन्यास है। कुसुम अंसल यहाँ तापसी नाम से किसी व्यक्ति विशेष के आन्तरिक विक्षोभ और विद्रोह को अभिव्यक्त नहीं करतीं, बल्कि तापसी के माध्यम से भारतीय समाज में स्त्रीत्व की समूची व्यथा और विडम्बना को उजागर करती हैं। जो भारतीय समाज, धर्म और अध्यात्म के नाम पर अपने रूहानी उत्कर्ष की गौरव गाथाएं गाता हुआ थकता नहीं, वहाँ स्त्री का अस्तित्व क्या है, उसकी एक स्वाधीन, स्वयत्त और सर्वतंत्र स्वतंत्र अस्मिता क्या है, उसकी आवाज क्या है, उसके आक्रोश की अभिव्यक्ति क्या है? यह तो केवल पीड़ाओं का चीत्कार बन कर रह गई है, पुरुष वर्चस्व, पुरुष निर्भरता और पुरुष अनाचारों की अकथ कहानी बनकर रह गई है। वह घर में है, तो घर के घमासान में उसे जीना है, और बाहर है तो बाहर की बदनीयत और वहशत में उसे जीना है। वह सौभाग्यवती है तो पातिव्रत्य की दासता उसका सौभाग्य है, और वह विधवा है, तो किसी वृन्दावन की लीला भूमि में उसे वैधव्य की भूख लीला, भिक्षा-लीला और प्रपंच-लीला का साक्षी एवं सेवक होना होता है। वह विधवा के रूप में एक गृह-परित्यक्ता की तरह निकाली जाती है और वृन्दावन के राधा-गोपी लोक में उसकी देह को एक निर्बल कंकाल में बदल कर उसे प्रतिदिन, प्रतिक्षण मृत्यु जीने की कातरता दी जाती हैं।

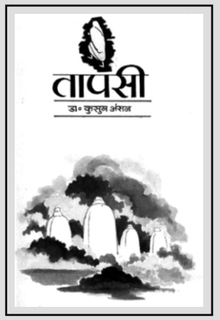

कुसुम अंसल ने देवालयों के बीहड़ में मनुष्यता, प्रेम, आस्था और विश्वास के वृन्दावन को उजड़ते, बिगड़ते और बिगाड़ते देखा है। नारी से नारी का विद्वेष, अपमान, शोषण और सेवा के नाम पर, धर्म एवं तीर्थ के नाम पर, ईश्वर एवं मंदिर के नाम पर जो पाखण्ड प्रतिदिन रचा जाता है, उसे कुसुम जी ने इतनी मार्मिकता, इतनी संवेदनशीलता और इतने मानवीय मनोराग के साथ चित्रित किया है कि वृन्दावन की विधवा दासियों में भारतीय नारीत्व की समूची सांस्कृतिक आभा कलंकित होते दीखती है। आश्रमों के संगठित पाखण्ड, चाहे अम्बिका रचें या सेठानी जैसी पुरस्कार-प्रिय तथाकथित दानशीलाएं, स्त्री के अस्तित्व के विरुद्ध कितनी-कितनी और कैसी-कैसी साजिशें हैं- इन्हें शोध परक ढंग से कथावस्तु के शिल्प में इस प्रकार रचा गया है कि इस उपन्यास को एक नारी की असहाय कथा के रूप में भी पढ़ा जा सकता है और एक सामाजिक नृतत्व शास्त्रीय दस्तावेज के रूप में भी।

स्त्री अपने भ्रूण से लेकर आधुनिक भूमण्डल तक या तो भोग-वस्तु रही है, या त्याग-वस्तु। उसे अपना सुख दूसरों में जीना है और अपना दुख स्वयं भोगना है। दुख का न कोई साथी, न सहयोगी, न परिजन और न अध्यात्म! सारा अध्यात्म पुरुष-सुख और पुरुष मुक्ति की रासलीला और जिसमें नारी का समूचा रस-सौन्दर्य का, शील का, चरित्र का, स्वाभिमान और त्याग का, ममता और वात्सल्य का इस कदर निचोड़ लिया जाता है कि वह जब तक देह के सौन्दर्य में है, तो केवल भोग ही भोग है, राग ही राग है, और जब व्यथा के वृन्दावन में है, तो केवल त्याग ही त्याग! भिक्षा के अन्न तक का बंटावारा खाती है वह, भिक्षा के वस्त्र तक उसके शरीर को बाँट कर ढाँकते हैं। उसके लिए कोठरी नहीं, उसके लिये पेयजल नहीं और दान में आए कम्बल, धोती, वस्त्र, अन्न सब कुछ सेवा के नाम पर संगठनों का व्यवसाय करने वाले धन-लोलुप लोग (फिर चाहें वे पुरुष हों या अम्बिका जैसी स्त्री) बाजारों में बेचकर अपने बैंक अकाउण्ट का पेट भरते हैं। धर्म, अध्यात्म और तीर्थ या तो पंडों के मोटे

पेटों के लिए हैं या संगठनों की उन मोटी कोठियों के लिए जहाँ अध्यात्म की आत्मा क़ैद है।

कुसुम अंसल ने संपूर्ण उपन्यास में कथागति और कथा-प्रवाह को कहीं अवरुद्ध नहीं होने दिया है। उपन्यास में अनेक स्थल इतनी मार्मिकता से वर्णित हैं और उनमें इतने सूक्ष्म विवरणात्मक डीटेल्ज़ हैं कि लगता है जैसे बंगाली संस्कारों और शांति निकेतन के पर्यावरण की आभा में दीक्षित कुसुम ने अपने अन्दर एक 'तापसी' खोजी हो, अपने अन्दर एक तापसी जी हो और अपने अन्दर के उस भद्र नारीत्व को ललकारा हो जो समूची भद्रताओं के दावों के बावजूद तापसियाँ पैदा करने के लिए जिम्मेदार हैं।

कुसुम ने भूमिका के जरिए ही उपन्यास को इतना खोल दिया है कि विषय और वस्तु के प्रति जिज्ञासा अपने आप जाग्रत हो जाती है। अनेक वाक्य तो सूत्र की तरह बन पड़े हैं, जैसे-

''.....मेरा विश्वास था कि खोज संदेह से होती है, श्रद्धा से नहीं।'' (6) ''हमारे यह तीर्थ भारत का कौन-सा रूप, कैसा क्लासिक डिजाइन गढ़ने में जुटे हैं।'' (धार्मिक कट्टरतावाद की सडांध मारती गलियों, मनुष्य की अविरचना, सामाजिक राजनीति की घातक निष्क्रियता और उपभोक्तावाद के खरीद फरोख्त से भरेगोरख धंधे के संदर्भ में) (6-7)

''यात्रा की यांत्रिकता में चलती मैं जिन नर-कंकाल जैसी भिखमंगी विधवाओं के बीच ठहर गई थी, वह माहौल मुझे बेहद परेशान कर रहा था...मैं तय नहीं कर पा रही थी कि क्या करूं...हम आकृतियों की दुनिया में जीने के लिए विवश हैं। हम भूल गए हैं कि कभी कोई वास्तविक आकाश भी था। वास्तविक आहार था। कोई वास्तविक वस्तु थी।'' (वृन्दावन की पैदल यात्रा और अमरीकी पुराकथा लेखक मार्शल ब्लावस्की के संदर्भ में)

''हम तीर्थों पर क्यों जाते हैं? शायद इसलिए कि तीर्थ पृथ्वी पर इमोशंस की डेन्सिटी का स्थल है, तीर्थ की धरती पर पैर रखते ही हमारी चेतना में एक अद्भुत-सी ऊर्जा का संचार होता है...परन्तु कहाँ है वैसा तीर्थ...कहाँ?'' (7-8)

''मंदिरों के भीतर भगवान की प्रतिमाओं का सौन्दर्य, पण्डों की सुविधानुसार टुकड़े-टुकड़े विभाजित, सिकुड़ते दृश्यों में बँधा दर्शन, मन में किसी भक्ति भावना को नहीं उकसाता...मुझे लगता है आज के तीर्थ अपना गंतव्य, अपनी भव्यता, कलात्मकता यहाँ तक की अपनी आत्मा भी खो चुके हैं।...हमारे सबसे मूल्यवान शब्द ही नकारात्मक हैं जैसे हमारे तीर्थ।'' (8 से 13)

इतनी सशक्त और उकसाने वाली भूमिका से जब उपन्यास के मनोलोक में प्रवेश करते हैं तो लगता है जैसे एक स्त्री तापसी बन कर हमारे समूचे अध्यात्म, धर्म, तीर्थ, श्रद्धा सबका मजाक उड़ा रही है। पोटली के भीतर लिपटे चार कपड़े-उसके शरीर का एक मात्र अस्तित्व और साथ में एक कॉपी जिसमें वह अपने अनुभवों का दस्तावेज लिए काँपते कदमों से कभी चलती है तो कभी दरवाजों की दस्तक पर सांकल खोल ऐसे खड़ी हो जाती है जैसे, हवा के बेहया झोकों के विरुद्ध एक प्रश्न? इसलिए उपन्यास की 'तापोशी' प्रश्ना है- विधवाओं में भी एक विधवा के विचलन और विद्रोह की तरह। कैसा विलोम है वृन्दावन का अपने ही नाम का, जो राधा कृष्ण के संयोग-शृंगार की मनोरम मिलन भूमि है- वह विधवाओं की वीभत्सता की व्यथा भूमि भी? कविता दी हो, या जितेन दा, नरेनदा हो या विधवा 'तापोशी', अम्बिका हो या काली बदबूदार लार टपकाती मोटी औरत, कुसुम मानती हैं- औरत ने औरत को इस स्थिति तक पहुँचा दिया था कि जहाँ उसकी समूची शारीरिक शक्ति और उसका कमजोर विद्रोह उसे बेहोशी की स्थिति तक छोड़ कर चला गया था और ऐसे में तापोशी एक स्त्री के रूप में यदि वैसी ही विधवा हो जाती, तो उसमें आश्चर्य ही क्या होता क्योंकि वृन्दावन की विधवा या इस देश की पतिविहीन स्त्री का रूपक तो बनता है 'भिखारिन, विधवा और भूख' के रूप में। फिर वह औरत वृन्दावन की हो या जिबूती, सोमालिया, कीनिया और युगांडा की। स्त्री के माँ न हो पाने की व्यथा को सूखे-स्तनों की कातरता में जिस प्रकार चित्रित किया गया है- उससे ऐसा लगता है जैसे मातृत्व, स्त्रीत्व और माँ होने से जुड़े सारे संवेदन ही मर गए हों। तुलसी अहीर की विधवा नूराबाई हो या वृन्दा और मोशाय बाबू की नपुंसकता की नृशंसता भोगती तापसी सब विधवा होकर दो रोटी, दो धोती, मंदिर का जाप और संतुष्टि के शून्य के हवाले हो जाती हैं जहाँ रोना, कलपना, तड़पना और बरौतियों के अनाचार में जीना उनकी नियति बन जाती है।

कुसुम अंसल ने वृन्दावन के विलोम में शिक्षा भूमि, कला और संस्कार-भूमि रवीन्द्रनाथ के शांति निकेतन या विश्व भारती को चुना है जहाँ रवीन्द्रनाथ सद्गुरु की तरह हैं- ऋषि यानी कवि हैं। रवीन्द्रनाथ में रवीन्द्रनाथ का विलोम हैं। वे जिस सौन्दर्य में कविता रचते हैं, जो काव्य-लीला करते हैं, वृन्दावन जाकर वह सारी कविता पराजित हो जाती है, समूची काव्यलीला काली पड़ जाती है। तीर्थों के मंदिर तरह-तरह के कुकर्मों व पाखण्डों के प्रयोग-स्थल में बदल गए हैं। वहाँ का नृत्य, संगीत, सुगंध, मंत्र, भक्ति सब कुछ रहस्यात्मक चढ़ावों की बलि चढ़गया है। इस तीर्थस्थलीय प्रश्नों के साथ नारी के चिरंतन अभिशाप से बंधे कुछ प्रश्न आधुनिकता से भी करती हैं उपन्यासकार, जब वे कहती हैं- ''कौन मार रहा है औरत को ? कौन गला घोंट रहा है जन्म लेती नन्हीं कलियों का? कौन कर रहा है बलात्कार छोटी बच्चियों के साथ? कौन?''

कुसुम अंसल ने तथाकथित अध्यात्म और तथाकथित सेवा के पाखण्ड को भी अनावृत किया है। एक ओर नूरा है, मरियम है, तापसी है, वृन्दा है और कई-कई विधवाएँ हैं जो मंदिर-सेवा के लिए हर तरह का ग़लत काम करने के लिए विवश की जाती हैं और दूसरी ओर आश्रमों और संगठनों की सिरमौर बनकर धन की तपस्या करती वह अम्बिका, जिसका तप केवल आश्रम की दान सामग्री बेंच कर धन कमाना है। धन उसकी तपस्या है- जिसके लिए वह अपनी समूची मनुष्यता और नारीत्व तक को विसर्जित कर रही है। नारी ही द्वारा नारी की कितनी-कितनी वीभत्सताएं रची जाती है। मनुष्य के संसार में नारी एक संस्कार है लेकिन धर्म, तीर्थस्थल और मंदिरों ने उसे क्या बना दिया है, आश्रमों और संगठनों ने उसमें किस प्रकार का भौतिक पशुत्व जाग्रत कर दिया है। एक ओर विधवाओं का दैन्य और दूसरी ओर धर्म के नाम की पाखण्डी दिव्यता! यथार्थों से उपजती विडम्बना का यह सर्वाधिक मार्मिक प्रसंग है जिसे उपन्यासकार ने अपने अनुभवों की भट्टी में पकाया है।

मंदिर, आश्रम, बैंक, जुगल कुण्ड, किल्लोल कुण्ड, पंचतीर्थ कुण्ड, मानसी-गंगा और इन सबसे यात्रा करते हुए स्कूल की यात्रा, मानस में ज्ञान के दर्शन की यात्रा और सबके बीच बंगाल, बरौता, भीख मांगती विधवाएँ, स्त्री-विवशता आदि सारे दृश्य कुसुम अंसल ने अनेक विडम्बनाओं में रूपायित किए हैं। एक तरफ दूध पीते मंगल पाण्डे और आश्रमों के संचालक और दूसरी तरफ दूध के बिना बिक जाते या मर जाते बच्चे, ये सब किस धर्म के प्रतिफल हें, किस 'हरिनाम-सम्प्रदाय' का पुण्य है? एक तरफ मरे हुए बाबा की समाधि से जुड़ी परिकल्पना और उनके श्राद्ध का भण्डारा और दूसरी ओर श्रद्धा की इतनी वीभत्स मौत का महाभण्डार! वृन्दा की गोद में रखी मृत देह और अम्बिका देवी की हँसी-कितना क्रूर आतंक रचता है यह धर्म और ये तीर्थ स्थल? मनुष्य की शरण में मनुष्य जी नहीं सकता और ईश्वर की शरण में जाकर मरने को मजबूर कर दिया जाता है। हर मनुष्य के अंदर उसका अपना विद्रूप है, वीभत्स है, उसका अपना एक खलनायक है फिर वह राखाल का हो या मोशाय बाबू का! तीर्थ और धर्म की एक वितृष्णामयी छवि के बीच कुसुम जी नीत्शे की तरह ईश्वर की मृत्यु घोषित नहीं करतीं बल्कि उस ईश्वर का एक रूप विद्यालय, शिक्षा और शिक्षा से मुक्ति खोजने निकली हैं। वहाँ प्रकृति है, वातावरण है, और उसकी आश्रम जैसी ऐसी पावनता है कि लगता है जैसे विद्यालय में पहुँचकर भगवान के राज्य की अलौकिक नागरिकता प्राप्त हो गई हो। महापुरुष की साधारणता के प्रतीक टैगोर बाबू का साधारण-सा विश्राम-स्थल और दूसरी तरफ पाखण्डी पंडों व व्यवसायी धूर्तों के असाधारण दुराचार और लूट गृह! विश्वभारती का यह चित्र और वृन्दावन का वह चित्र-साधना, तपस्या के दो अलग-अलग शिखर। एक ज्ञान की रस भूमि तो दूसरी प्रेम की रास भूमि! प्रेम की रास भूमि विधवाओं की पीड़ा और करुणा में विलीन होकर सारे वृन्दावन को मलिन कर रही है तो शिक्षा भूमि से कला, संगीत, छलक रहे हैं। कहीं 'बाउल-गीत' की आंचलिकता है तो कहीं मुक्त प्रकृति का सौन्दर्य और इन सबके साथ-साथ एक स्त्री की अस्मिता में 'तापसी' का वह तप, जो अब शिक्षा बन गया है, और जो एक प्रकार से हर विधवा की मुक्ति का मार्ग बन सकता है। उपन्यास में गीतों, कविताओं व पदों आदि का प्रयोग सुरम्य तो है लेकिन वे कथा की अपनी स्वाभाविक गति को शिथिल बनाते हैं।

वृन्दावन की तपोभूमि से जयमाला के प्रकरण तक आते-आते कथा में एक प्रकार का स्थूलपन उभरने लगता है। ऐसा लगता है जैसे कुसुम जी अपने अनुभवों का समूचा संसार एक ही कथा में रच डालना चाहती हैं। उज्जैन और जयमाला, अकेलेपन के अभिशाप में जन्मी नन्दिता और उसकी आत्मविभोरता से घटित होती कविता के साथ जतिन दा की बौद्धिक गोष्ठियाँ, घरानों का संगीत, नृत्य और नाटकों की प्रस्तुति के साथ 'श्याम ची आई' के चरित्र की चर्चा इन सबसे एक कथाकार के व्यापक सांस्कृतिक फलक की झलक तो मिलती है, लेकिन 'तापसी' की कथा में जो विषय-केन्द्रित निर्बाधता थी, वह भंग होती दिखाई देती है। उद्धवजी और मौनी बाबा का क्षेपक भी इसी तरह कथा-भंग करता है। फिर अचानक कर्वे साहब जैसे मिस्टिकल जीनियस के सिनेमाई जीवन के प्रति आकर्षण का उद्रेक और नन्दिता की सिने तारिकाओं, अभिनेता, नायक, खलनायक सबमें रुचि, कचहरी, विटनेस बॉक्स के दृश्य और अंत तक जाते-जाते 'काबा-शरीफ' और सुनो दिल जानी का सूफियाना गीत-यह सब कुछ उपन्यास को शीर्ष तक पहुँचाकर किसी फिल्मी कथा की तरह बदलता है। मलय और तापोशी के चुप्पी-तोड़ आग्रहों में भी फिल्मीपन उतर आया है। इन सबसे कथा के अनेक संस्करण उभरते हैं। डॉक्टर, मरीज, इलाज, अस्पताल, स्टेशन, स्कूल ये सब धर्म के प्रतीक मंदिरों और तीर्थों के मानवीय विकल्प हो सकते हैं लेकिन उनके लिए भी तापसी बनना आवश्यक है। ये भी मनुष्यता के मर्म की तपोभूमियाँ हैं। यदि इन्हें सचमुच के मंदिर या तीर्थ बना दिए जाएँ, तो सचमुच तीर्थ और मंदिर मनुष्यता के मंदिर हो जाएँ जहाँ तापसियों को विधवा बनकर न आना पड़े।

स्त्री के उत्पीड़न को लेकर उपन्यास लिखे गए हैं। देवदासियों के देह शोषण, वेश्यालयों और वेश्या बनाते समाज पर उपन्यास पूरे संसार में अपनी श्रेष्ठतमता में लिखे गए हैं- लेकिन वृन्दावन की विधवाओं और स्त्री का विधवा के रूप में एक भौतिक देह-वस्तु बना देने का ऐसा प्रयोग शायद कुसुम जी ने ही किया है। उड़िया लेखिका प्रतिभा राय ने 'याज्ञसेनी' (द्रोपदी) लिखकर नारी अस्मिता के प्रश्न उठाए हैं- वे भी जगन्नाथ मंदिर के पंडों के विरूद्ध लड़ी हैं- इसलिए यह कहा जा सकता है कि मंदिर, तीर्थ, धर्म और पण्डे-पुजारी एक कथाकार के लिए अच्छा कच्चा माल हैं। इस दृष्टि से यह उपन्यास एक प्रकार का साहसी दस्तावेज भी है।

स्त्री का स्त्री होना विश्वभर के समूचे धर्म-समाज में एक प्रकार के अनादर से देखा जाता है। वह कहीं प्रवेश-वंचित है, तो कहीं निष्कासित और निर्वासित। वह नियंत्रणों में कैद एक भौतिक-भोगवस्तु है या फिर प्रताड़ित और पीड़ित मनुष्य की असहाय नियति। पश्चिम के चर्च अपने समूचे अध्यात्म का अनाचार उस पर करते रहे हैं, इस्लाम में उसे पुरुष-वर्चस्व से पराधीन बनाकर पर्दों के तम्बू में कैद कर दिया है और मंदिर एवं तीर्थों के सबसे विराट कहे जाने वाले धर्म में वह सबसे विकराल शोषण, उत्पीड़न और अपमान की शिकार हैं। स्त्री माँ के रूप में जितनी पवित्र है, विधवा होते ही उसका मातृत्व एक अपवित्र करार दे दिया जाता है। उसका त्याग, उसका तप, उसका जीवन-राग सब कुछ वैधव्य की पीड़ा में समा जाता है। ऐसा लगता है जैसे धर्म, तीर्थ, मंदिर, ईश्वर सबके सब ईश्वर स्त्री के अस्तित्व के विरोधी शब्द हों। जो बंगाल सुधारों, क्रांति व क्रांतिकारियों, विचारों और विचारकों, और कला, संगीत, साहित्य के मनोरम संस्कारों की भूमि रहा है, वहीं से निकलती है ये विधवाएं जो वृन्दावन की लीला भूमि द्वारा लील ली जाती हैं। तापसी का होना, इन सबके विरुद्ध एक स्त्री के अस्तित्व का होना है, उसके स्त्रीत्व का होना है, उसके मनुष्य का होना है। इसलिए यह उपन्यास एक ऐसा उपन्यास कहा जा सकता है जो तप और ताप दोनों के नए अर्थ रचता है उस तापसी में, जो अपने नारीत्व और वैधव्य दोनों का युद्ध लड़ती है उस समाज से, जो नारी की नैतिकता का नृशंस कर्मकाण्ड रच रहा है। तापसी के लिए वे तमाम शब्द उसके अस्तित्व के समक्ष निरर्थक हो गए हैं। ईश्वरीय शब्दों का मनुष्य के अस्तित्व के तप में इस प्रकार अर्थ-विहीन हो जाने की ही कथा है 'तापसी' और तापसी का केंद्रीय चरित्र '-तापोशी'। स

सह्ययाद्रि परिसर
भदभदा रोड, भोपाल
मो.94065-23071

प्रख्यात उपन्यासकार डॉ.कुसुम अंसल के बहुचर्चित उपन्यास 'तापसी' का नाट्य रूपान्तरण

नाट्य रूपान्तर : हरदीप दायले **संपादन : श्रीराम दवे**

पात्र परिचय

1. **तापसी -** मजूमदार की विधवा उम्र लगभग 18 से 22 के मध्य
2. **बरौता (काली औरत) -** आश्रम की विधवा महिला
3. अम्बिकादेवी- आश्रम की वार्डन (अधेड़ स्त्री) रौबदार लेडी डॉक्टर
4. **वृंदा - औरत (1)** - तापसी की साथी (विधवा) जयमाला
5. **नूराबाई - औरत (2) -** तापसी की साथी (विधवा) नन्दिता (स्कूल टीचर)
6. **मरियम - औरत (3) -** आश्रम में तापसी की मित्र नर्स + मेम औरत
7. **आश्रम की महिला - औरत (4) -** तापसी की साथी (विधवा)
8. **रखाल काका -** तापसी का मामा (मूर्ति बनाने का कारीगर) - मौनी बाबा
9. **जितेन दा -बोलपुर के बड़े आदमी / उद्धव -** जयमाला का भरोसेमंद
10. **कनिका दी -** जितेन दा की पत्नी
11. **मलय -** जितेन दा का बेटा + पत्रकार युवा भाषण देने वाला
12. **भोलानाथ -** जितेन दा के घर का नौकर

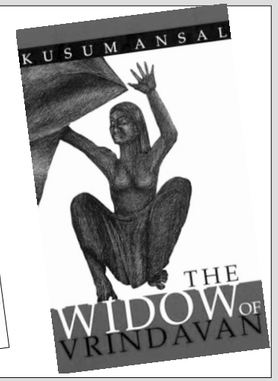

अंक एक सीन -1

मंच पर अंधकार, धीरे-धीरे स्पॉट समूह दीवार पर टँगे बोर्ड पर पड़ती है जिस पर लिखा है ''श्री राधाकृष्ण विधवा आश्रम''। (तापसी का प्रवेश) जिसे नेपथ्य से धक्का देकर मंच पर फेंक दिया जाता है, पोटली समेत।

तापसी - अरे-अरे यह कहाँ छोड़कर जा रहे हो मुझे ? यह कहाँ आ गई हूँ मैं ?

नेपथ्य से स्वर (पुरुष) - आज से यही तेरा ठिकाना है श्री राधाकृष्ण विधवा आश्रम।

(बरौता का प्रवेश)

तापसी- नहीं ऽऽऽ (आस-पास नजर घुमाते हुए) कौन.....कौन हो तुम ?

बरौता - (भद्दे तरीके से हँसती रहती है) बरौता..... (फिर हँसती है) (सो जाती है)

तापसी - (स्वगत्) इस कमरे की दीवारें कितनी काली हैं, बदरंग धुएँ-सी धुँधली, (इधर-उधर देखते हुए) कहीं कोई खिड़की नहीं, न खुली हवा । (इशारे से बताते हुए) बस एक दरवाजा है, जिसकी टूटी-फूटी दरारों के बीच एक जंग खाई काली-सी साँकल लटक रही है। पता नहीं वो दरवाजा बंद है या खुला। (कुछ सोचकर) (अचानक) अरे यह कहाँ आ गई मैं परन्तु मुझे कुछ याद क्यों नहीं आ रहा है। हाँ रेल का सफर याद है मुझे दो दिन के सफर के बाद यहाँ पहुँची थी मैं। यह कौन-सा शहर है ?

आखिर क्यों लाई गई थी मैं यहाँ ? स्मृतियों के फलक पर कोई भी अक्षर, नाम, कुछ भी नहीं उभरता, सब कुछ खाली था, स्मृतिविहीन मस्तिष्क के गहरे सन्नाटे-सा घुमड़ता शून्य। मेरे साथ सोने वाली ये काली-सी लम्बी औरत कौन है ? कौन है ये दूसरी औरतें भी ? क्या सम्बन्ध है इनका मुझसे, इस परिवेश से ? (पोटली के पास जाकर) बस यह पोटली और इसके भीतर लिपटे चार कपड़े - मेरे शरीर का यही एकमात्र अस्तित्व है और कुछ नहीं.....। नहीं....(पोटली खोलकर टटोलती है और उसमें से नीली कॉपी निकालकर) हाँ यह नीली कॉपी, इसी में तो समय-समय पर कछ-न-कुछ लिखती रही हूँ मैं, यही तो है मेरे अनुभवों का दस्तावेज। (तापसी पेज पलटती है इतने में (काली औरत) बरौता जागकर उसे पीछे से आकर पकड़ लेती है।)

बरौता - (भद्दी हँसते हुए) आ तुझे बताती हूँ कौन हूँ मैं ! (हँसी पुनः)

तापसी - छोड़ो मुझे.....। (छुड़ाने का प्रयास करती है।)

बरौता - इतनी जल्दी भी क्या है (उसे सूँघते हुए) अभी परिचय बाकी हैं जैसे यह रात.....!

तापसी - (घबराकर) छीः, यह क्या कर रही हो ?

बरौता - शिकार.....जैसा तेरे पति ने किया था पहली बार.....कुछ वैसा ही करूँगी मैं तेरे साथ।

(मंच पर अँधेरा हो जाता है केवल आवाजें आती हैं।)

तापसी - नहीं ऽऽ बचाओ-बचाओ।

बरौता - कोई नहीं बचाएगा तुझे मुझसे इन सबका भी ऐसे ही शिकार किया था मैंने।

तापसी - आह ऽऽ ....छोड़ो मुझे.....नहीं.....(धीरे-धीरे मंच पर नीली रोशनी का प्रकाश पड़ता है। नेपथ्य से आलाप के स्वर उभरते हैं, जिसके मध्य तापसी का संवाद चलता है।) (कम्बल लपेटे हुए बरौता चली जाती है।) (दर्द महसूस करते हुए उठने का प्रयास करती है, दीवार थामकर उठती है। काँपते कदमों से धीरे-धीरे चलते हुए दरवाजा खोलकर कमरे से बाहर आ जाती है) आखिर आ ही गई मैं उस कमरे की घुटन से बाहर। (गहरी साँस लेती है) (ठण्डी हवा का झोंका महसूस करती है।)

बाहर की हवा कितनी ठण्डी है, उस कमरे की घुटन से तो अच्छी है (आगे देखकर) कितना लम्बा बरांडा है पर ये आँगन तो बहुत छोटा-सा ही है। नल भी लगा है (महसूस करते हुए) पर इस जगह कितना कूड़ा, थक्केदार मैल, (सँभलते हुए अचानक) टूटा हुआ फर्श जैसे अपने बदरंग दाँतों से मुझ पर हँस रहा हो। (अचानक नल चलने की आवाज) बरांडे में कोई नहीं था फिर ये आवाज कैसी ? (पीछे घूमती है नल पर एकाएक औरत आकर नहाने लगती है। नीला प्रकाश सुबह के दृश्य में परिवर्तित हो जाता है। आश्रम की अन्य सभी महिलाओं का प्रवेश होता है।)

सीन- 2

(एक औरत नल पर नहा रही है जो वहाँ खड़ी तापसी को देखकर खड़ी हो जाती है, जिसे देख आश्रम की

अन्य औरतें भी आ जाती हैं।)

औरत एक - 'ओह.....तू है नयी वाली.....? (हँसते हुए)। नहीं छोड़ा न तुझे भी'

तापसी - (मौन रहती है संगीत के माध्यम से मौन मुखर होता है।)

औरत दो - अरे गूँगी है क्या.....? या जुबान नहीं है मुँह में.....

तापसी - (पुनः मौन)

बरौता - कल रात को तो बड़ा चिल्ला रही थी.....।

(आस-पास की सभी औरतें हँसने लगती हैं।)

बरौता - (उसका अभिनय करते हुए) कौन हो तुम ? यह क्या कर रही हो.....मेरे कपड़े (बेशर्मी से हँसती है सभी तापसी पर)

औरत एक - (बरौता से) लगता है इसे भी नहीं छोड़ा तूने.....? पूरे गन्ने की तरह चूस लिया है।

औरत दो - हाँ.....देख तो इसके टूटे हुए बालों के गुच्छे, बाँहों पर दाँतों के निशान जखम, खरचि....! ऐसा लगता है जैसे पूरी रात की कहानी कह रहे हो ! (फिर सभी हँसती है।)

तापसी - (रूँआसे स्वर में आक्रोश के साथ) नरभक्षी हो क्या ?

कौन-सी जगह है यह ? यह कहाँ आ गई हूँ मैं ? (रोते हुए नीचे बैठ जाती है। और एक को छोड़ बाकी सब दूसरी औरतें वहाँ से चली जाती हैं।)

औरत एक - (ढाँढ़स बँधाते हुए) मत रो.....ऐसा होता है.....इस आश्रम में ऐसा ही होता है, खासकर नई औरतों के साथ कोई नयी बात नहीं है, धीरे-धीरे सब सीख जाएगी.....। चल नहा ले।

(तापसी पोटली लेने चली जाती है।)

औरत एक - (आवाज लगाते हुए) चल, अब जल्दी कर, औरों को भी नहाना है।

तापसी - हाँ (पोटली में से मैली-सी साड़ी निकालती है।) (इस बीच औरत एक - आश्रम की साड़ी लाकर उसे देती है।)

औरत एक - ले यह पहन ले। (आश्रम की साड़ी है, इसे ही पहनना पड़ता है। सुबह के वक्त प्रार्थना होती है, फिर नाश्ता मिलेगा।)

तापसी - जी.....ठीक है।

(तापसी और औरत दो विंग्स में चली जाती हैं।)

सीन- 3

(नेपथ्य से भजन के स्वर गूँजते हैं, जिसके साथ ही अन्य सभी आश्रम की महिलाओं का प्रवेश जो सभी भजन गा रही होती हैं, भजन समाप्त होते-होते तापसी भी वहीं पर आ जाती हैं।)

मेरो तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोयी,
जाँके सिर मोर मुकुट, मेरो पति सोही - 2

मेरा तो.....

(भजन के बाद अधेड़-सी स्त्री सीटी बजाती है। सभी औरतें भजन आदि बंद कर लाईन लगाकर खड़ी हो जाती हैं। दूसरी सभी को खाना बाँटने लगती हैं। अधेड़ स्त्री के हाथ में डण्डा है, उसकी आवाज रौबदार है। एक औरत उसके पास रजिस्टर लेकर खड़ी हो जाती है। तीसरी औरत चाय बाँटती है।)

अधेड़ स्त्री - (रजिस्टर लेकर) वृंदा !

वृंदा - उपस्थित है। (वो जाकर नाश्ता-चाय ले लेती है।)

अधेड़ स्त्री - नूराबाई

नूराबाई - उपस्थित है। (वो भी जाकर नाश्ता-चाय ले लेती है।)

अधेड़ स्त्री - कमला.....विमला । (तापसी का नम्बर आता है।)

अधेड़ स्त्री - सीधी खड़ी हो.....। क्या नाम है तेरा ?

तापसी - (घबराते हुए) त.....तापोशी !

अधेड़ स्त्री - तापसी कह ना.....। ये बंगालिनें भी न, पता नहीं हर अक्षर को गोल-गोल घुमाकर क्यों कहती हैं ? तापसी विधवा है क्या ?

तापसी - हाँ ! (पीछे वाली स्त्री से) ये लोग पुलिस है क्या ?

औरत एक - नहीं ! लगता है तूने कभी पुलिस नहीं देखी.....?

अधेड़ स्त्री - ये क्या पीछे खुसर-फुसर चल रही है ? (दोनों सीधी खड़ी हो जाती हैं।) तू विधवा है तो तेरे बाल, काटे नहीं उन लोगों ने ? चल आगे बढ़! यहाँ के कायदे-नियम जान ले.....सुना ?

तापसी - जी.....हाँ ! (आगे सरक जाती है जहाँ कागज में लिपटी दो-दो रोटी सभी को मिलती है, उसके आगे भाजी और चाय अभिनय द्वारा)

तापसी - (अधेड़ स्त्री से) और दोगी ? (हाथ फैलाते हुए)

सभी औरतें (हँसने लगती हैं।)

अधेड़ स्त्री - (ऊँचे स्वर में घूरकर) चोप्प.....! (एक पल का सन्नाटा) पता नहीं तुझे ? बस इतना ही मिलेगा - हर रोज, अब चलो जल्दी करो मन्दिर जाना है। (सब जाने लगते हैं।) (औरत एक तापसी के पास आकर)

औरत एक - (आधी रोटी हाथों में रखते हुए तापसी के) चल खा ले और मेरे साथ आ..... सब समझा दूँगी तुझे क्या करना होता है। (तापसी रोटी खाने लगती है) रजिस्टर में नाम दर्ज हो गया तेरा?

तापसी - हाँ, हो गया।

औरत एक - क्या नाम बताया था गाँव का ?

तापसी - बोलपुर, बंगाल !

औरत एक - और पति का नाम ?

तापसी - पति का नाम.....वो.....(सोचकर) हाँ नरेन मजूमदार!

औरत एक - कब मरा ?

तापसी - कभी का.....!

औरत एक - कैसे मरा ? (नेपथ्य से हल्के अलाप के स्वर)

तापसी - बीमारी और उखड़ी साँस के साथ कितने दिन जी सकता था कोई ? साल - दो साल ! माँग में भरा सिन्दूर, हाथ में शंख की चूड़ी, रंगीन साड़ी काका को ढ़ेर सारे पैसे....! बस इतना भर देकर क्या कुछ शरीर तो गया ही। मेरी पढ़ाई, मेरा भविष्य, मेरे सपने.....सब ?

औरत एक - दिल छोटा मत कर.....संभाल अपने-आपको.....अभी मैं चलती हूँ।

तापसी - कहाँ ?

औरत एक - अरे भई मन्दिर और कहाँ.....। तू नहीं चल रही ?

तापसी - चलूँगी न !

औरत एक - अच्छा ठीक है, मैं बाहर खड़ी हूँ। (और चली जाती है।)

तापसी - (स्वगत) कभी-कभी तो सोचती हूँ राधा-कृष्ण तो युगल प्रेमी थे, फिर उनके नाम के साथ विधवा आश्रम ? असंगत-सा लगता है ? खैर जितेन दा कहते थे सवाल बहुत पूछती है तू तेरा नाम तापोशी नहीं प्रश्ना होना चाहिये था।

नेपथ्य से स्वर - तापसी !

तापसी - अभी आई (और विंग्स में चली जाती है।)

सीन- 4

(मंच पर अँधेरे के बाद दृश्य परिवर्तन, तापसी, औरत एक और बरौता का प्रवेश मंच पर गन्दी नालियों को फलाँगती हुई, बदबू भरी सँकरी-सी गली से गुजरने का अभिनय करती हुई)

तापसी - यह कौन-सी जगह है ?

औरत एक - वृन्दावन, तुझे नहीं मालूम ?

तापसी - नहीं तो । पर यहाँ क्यों है ?

औरत एक - यहाँ रहने से विधवाओं को वैकुण्ठ मिलता है। बस यूँ समझो कि भगवान का घर है यह जगह।

बरौता - इस पवित्र भूमि पर वास करने से अगले-पिछले पाप सब धुल जाते हैं।

तापसी - क्या सचमुच ?

बरौता - ऐसा मानते हैं । पुराणों में लिखा है।

तापसी - (तापसी इधर-उधर आश्चर्य से देखती हुई) तो काकी यह आस-पास के गली-चौराहों पर कहीं 'राधाकृष्ण चौक', कहीं 'गोकुलधाम', 'राघव हलवायी', 'बद्री गौशाला' लिखा है, क्या बैकुण्ठ में सब ऐसा ही होता है ?

बरौता - अब मैं क्या बताऊँ तुझे .....? (आगे विंग्स में निकल जाती है सभी, केवल तापसी मंच पर)

तापसी - (स्वगत) (कुछ याद करते हुए) बैकुण्ठ.....ये नाम पहले भी सुना है कहीं.....? (विराम)

हाँ याद आया.....दादा गुरू ने बताया था - स्वर्ग वो स्थान है जहाँ भगवान का वास होता है जिसे बैकुण्ठ भी कहा जाता है।

(दृश्य परिवर्तन) (तापसी फ्रिज हो जाती है।)

सीन-5

(अचानक शंख और घण्टों की जोर-जोर से बजने की आवाजें आने लगती हैं। कुछ रेशमी पीले कुर्ते पहने आकर्षक वेशभूषा में पण्डितों का प्रवेश जिनके पीछे आश्रम की महिलाओं का झुण्ड और उनके पीछे पण्डित लोग आरती कर रहे हैं, संगीत के साथ आश्रम की विधवा महिलाएँ मंजीरें और तालियों को एक लय में बजा रही हैं। महिलाओं के पीछे खड़ी भीड़ भी वैसा ही कर रही है तापसी विधवा महिलाओं में सबसे आगे है। पण्डित मंच के इस कोने से उस कोने में घूम रहे हैं आरती लेकर, जिनके कटे हुए बालों के बीच चोटी लटक रही है और माथे पर बड़ा-सा तिलक लगाये हुए हैं। आरती का संगीत तीव्रता से मंद होकर थम जाता है।)

पण्डित - बोलो बाँके बिहारीलाल की !

सभी - जय.....

पण्डित 2 - मोर मुकुट बंसी वाले की.....

सभी - जय..... (तापसी एक पलक मूर्तियों को देखती रह जाती है और बाकी पात्र फ्रिज हो जाते हैं।)

तापसी (स्वगत) - मैंने इतना सौन्दर्य, इतने वस्त्रों को और आभूषणों को जीवन में पहली बार देखा था। मैं भौचक्की-सी देखती रह गई। ऐसा तो अपने बोलपुर के गाँव का काली माँ का मन्दिर है जहाँ माँ की प्रतिमा की तेजस्विता के सम्मुख अपलक देख पाना मेरे जैसी दुर्बल स्त्री के बस में नहीं था। पूजा के अवसर पर बनती मूर्तियाँ पानी में विसर्जित होती माँ की प्रतिमाएँ ! उन पर श्रद्धा तो की थी, परन्तु ऐसा खिंचाव ऐसा अनुपम सौन्दर्य कभी नहीं जाना था!

बस झोल भात, नमक उसके पश्चात् काम। पसीने से लथपथ थका हुआ शरीर, शराब की बोतल में विसर्जित होता अस्तित्व हर दिन का यही तो था कार्यक्रम ! शब्दहीन उस सूने घर की कोठी में घर के काम समेटती झाड़ू-बुहारी करती स्कूल जाती गुड़ीमुड़ी होकर सोती। भगवान या उसके बनाये संसार से साक्षात्कार पुस्तकों के माध्यम से था या स्कूल की सुबह की प्रार्थना से, जिसे ''वैतालिक'' कहते हैं या फिर जितेन दा और कनिका दीदी से बात करके जान पाती थी सांसारिक बातें! (झुण्ड में से एक स्त्री तापसी को मंजीरें थमा देती है। मन्दिर का वही कोलाहल प्रारम्भ हो जाता है भजन के रूप में)

भजन के स्वर - मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई .....

तापसी - (अचानक मंजीरें फेंकते हुए, एक पल के लिए सन्नाटा हो जाता है।) (उच्च स्वर में मुझे नहीं आता बजाना।) (सभी स्त्रियाँ उसे पलटकर देखती हैं।)

बरौता - (उसे घूरते हुए) बजाती है या मैं तुझे बजाऊँ.....समझ जा तू। (कुछ इशारा करते हुए.....और तापसी डर-सी जाती है और ताल-बेताल मंजीरें बजाने लगती है) (तापसी के मंजीरें बजाते ही नेपथ्य से एक करूणामय आलाप सितार के तीव्र संगीत के साथ) धीरे-धीरे वह दृश्य फ्रिज हो जाता है और स्पॉट लाईट तापसी पर और तापसी उस दृश्य के बाहर आकर दर्शकों से (स्वगत संवाद) जिसके मध्य नेपथ्य से धीरे-धीरे मंजीरों, घण्टियों का स्वर गुँजायमान हो रहा है।

तापसी (स्वगत) - मैं मंजीरें बजाने लगी थी। ताल-बेताल होती किसी लय में जा मिली जैसे नदी लहराकर बहती हुई सागर की उत्ताल तरंगों में लीन हो रही थी। यह सिलसिला यूँ ही अनवरत् चल पड़ा था और मैं खोती जा रही थी, जैसे मेरे भीतर कुछ वाष्पीभूत होता जा रहा था, दीयों का धुआँ, सुगन्ध, स्वर मुझे बेसुधी में बहाए ले जा रहे थे।

(फ्रिज पात्र समूह के पास जाकर)

तापसी (स्वगत) - मेरे होश में आते ही देखती हूँ एक काली औरत मुझ पर झुकी हुई थी जिसके कपड़े शरीर से दूर जा पड़े थे। निर्वस्त्र उस तगड़ी औरत का शरीर मुझ पर किसी काली प्रेतात्मा-सा तना था। (चीखते हुए) नहीं.....नहीं.....मैं चीखती रही, चिल्लाती रही, कोई मेरी मदद करने नहीं आया (उस दृश्य को देखते हुए आश्रम की औरतों के झुण्ड का प्रवेश जो मजे से यह दृश्य देख रहा है।) आस-पास की सभी औरतें मेरे साथ होते इस बेहद क्रूर, अमानवीय व्यवहार को किसी तमाशे की भाँति देखती रही। उस काली औरत के दाँत, उसकी बदबूदार टपकती लार, मेरे सारे शरीर पर जैसे कालिख-सी पोत रहे थे। नहीं ऽऽऽ बचाओ.....ऽऽ (सब चले जाते हैं तापसी को छोड़) औरत ने औरत को इस स्थिति तक पहुँचा दिया था । और मुझे इस स्थिति तक पहुँचाने वाली वो काली भयानक औरत और कोई नहीं ये बरौता ही थी तब मैं नाम नहीं जानती थी। उससे डरने लगी थी मैं और यही डर मेरी कमजोरी बन गया था और उसकी ताकत जिसके बल पर हर रात वो मेरे साथ ऐसा ही व्यवहार करने लगी थी। (मंच पर अँधेरा)

सीन-6

(अधेड़ स्त्री गले में लगी सीटी बजाती है, जिसकी आवाज सुन आश्रम की सभी महिलाएँ मंच पर आकर इकठ्ठी हो जाती है। अधेड़ स्त्री रौबदार आवाज में)

बरौता - कान खोलकर सुन लो री सब। आज शाम को सेठानी जी आ रही हैं, जिनके स्वागत में हमारे आश्रम की ओर से कोई कमी नहीं होना चाहिये। इसलिये जिसको जो काम बताया है वो काम वो ही करेगी। समझ लो कोई भी बहाना नहीं चलेगा। ठीक है।

सभी - जी दीदी !

बरौता - सबको अपने-अपने काम पता है न.....या वो भी मैं ही बताऊँ ?

तापसी - नहीं-नहीं हम सब अपना काम कर लेगें।

बरौता - (घूर के देखते हुए) जुबान तो बहुत चलती है तेरी, बिल्कुल कैंची की तरह। (अन्य औरतों से) झाड़ू पकड़ाओ इसे। (तापसी से) सुन पूरे आश्रम का झाड़ू अच्छे से लग जाना चाहिये। अच्छे से मतलब अच्छे से। (एक औरत तापसी को झाड़ू पकड़ा देती है।)

तापसी - जी ! (तापसी झाड़ू लगाने लगती है, कोई आलू छिल रही है, कोई प्याज काट रही है। तापसी झाड़ू लगाते-लगाते एक कोने में पहुँचती है, जहाँ पहले से ही एक औरत दर्द से कराह रही होती है, जिसकी तीन-चार साल की एक बच्ची है जो रो रही होती है जिस कारण आराम भी नहीं कर पाती, उसकी हालत देखकर तापसी थोड़ा रूक जाती है और फिर वापस झाड़ू लगाने लगती है। उस स्त्री का नाम वृंदा है, बच्ची का नाम चुनियाँ है।)

वृंदा - (दर्द से काँपते हुए) ऐ.....! थोड़ा पानी ला दे।

तापसी - हाँ ! (उसके पास पड़े प्लास्टिक के जग को उठाकर नल पर जाती है। इस बीच बच्ची के रोने का स्वर जारी है। तापसी जग माँज-धोकर भरती है।)

वृंदा - (जोर-जोर से कराहने लगती है।) हे भगवान, हे भगवान क्या हो गया है मुझको ? (तापसी पानी लेकर आ जाती है।)

तापसी - (उसके पास बैठते हुए) बहुत दर्द है ? माथा दबा दूँ ?

वृंदा - नहीं।

तापसी - (उसकी पीठ सहलाते हुए) कोई दवा ली क्या ?

वृंदा - दवाई ?

नेपथ्य से स्वर - ए. सारा कूड़ा छोड़कर यहाँ क्यों बैठी है। उठ सफाई करके दफ्तर में जा। बड़ी बहन जी बुला रही हैं।

तापसी - जी ! (कूड़ा समेटकर मुड़े-तुड़े एक थैले में डालकर बाहर दरवाजे के पास रखे ड्रम में फेंककर विंग्स में चली जाती है।)

(लाईट ऑफ)

सीन-7

(दफ्तर का दृश्य - एक टेबल, दो कुर्सी मंच के मध्य अग्र भाग पर लगे हैं। पास में एक सोफा है। टेबल के सामने वाली कुर्सी पर अम्बिकादेवी बैठी हैं। सोफे पर फैलकर सेठानी जी बैठी हैं, जिनके पास में नये कम्बलों का ढेर लगा है जो बँधे हुए हैं। अचानक तापसी का प्रवेश।

तापसी (स्वगत) - अरे यह तो वही संतरे वाली सेठानी जी हैं। (दफ्तर के बाहर खड़ी हो जाती है।)

सेठानी - अम्बिकादेवी जी, आप प्लीज ये कम्बल अपनी विधवा औरतों में बँटवा देना। देखना पूरे साठ कम्बल हैं। आज सेठ जी की साँठवीं वर्षगाँठ है ना। देखिये दे दीजियेगा। मैं अभी जल्दी में हूँ, नहीं तो अपने हाथों एक-एक कम्बल सबको पकड़ाती। (सेठानी उठ खड़ी हो जाती हैं।)

अम्बिका - आप बेफिक्र रहिये सेठानी जी। आप जैसे लोगों की दया से ही तो चलता है ये आश्रम (तापसी को देखकर बनावटी हँसी के साथ) अरे बाहर क्यों खड़ी हो ? अन्दर आओ बेटा (तापसी आती है।) इनसे मिलो यह है कि हमारी सेठानी जी !

तापसी - जी नमस्ते (पैर छूने लगती है।)

सेठानी - अच्छा बस...बस.....ठीक है। बड़ी प्यारी बच्ची है इत्ती-सी उमर में विधवा हो गई बिचारी ! हाँ तो क्या नाम है तुम्हारा बेटी ?

तापसी - जी..तापोशी !

सेठानी - बड़ा अच्छा नाम है तापोशी.....!

अम्बिकादेवी - (तापसी के सिर पर हाथ फेरते हुए) पता है सेठानी जी.....जब ये विधवाएँ यहाँ आती हैं तो इनके पास कुछ नहीं होता। आप जैसों के दान से इतना मिलता है इन्हें कि ये बक्से भर-भरकर अपने घर ले जाती हैं।

सेठानी - आपने भी तो.....जीवन लगा दिया है, भई.....सेवा-भाव तो कोई आपसे सीखे।

अम्बिकादेवी - बस एक छोटा-सा निवेदन था आपसे।

सेठानी - अरे कहिये न ।

अम्बिकादेवी - बस सेठ जी को कहियेगा कि.....इस बार सोशल वर्कर का पुरस्कार मुझे ही दिलवायें।

सेठानी - (हँसते हुए) अरे ठीक है अम्बिका जी आपसे ज्यादा डिजर्विंग और कौन होगा ? (फिर दोनों हँसती हैं।) अच्छा तो मैं चलती हूँ।

अम्बिका - आईये मैं आपको बाहर तक छोड़ देती हूँ।

(अम्बिका सेठानी जी को लेकर विंग्स में चली जाती है।)

तापसी (स्वगत) - (टेबल साफ करते हुए) यह अम्बिकादेवी जी तो बहुत अच्छी मालूम होती हैं ?

(अम्बिकादेवी का प्रवेश जो आकर सोफे पर भद्दे तरह से बैठ जाती है।)

अम्बिका - अरे तू गई नहीं अभी तक ?

तापसी - वो सफाई करना थी न.....!

अम्बिका - अच्छा-अच्छा ठीक है (चॉबी देते हुए) यह चॉबी ले, वह भंडार खोल और उसमें यह सारे कम्बल रखकर ताला बन्द कर दे। ठीक है.....अब जा।

तापसी - जी अच्छा । (तापसी कम्बल लेकर विंग्स में जाती है। बाहर आकर)

तापसी (स्वगत में) बाप रे.....भंडार कमरे में तो बहुत सामान है नये बर्तन, नये कपड़े, खाने-पीने के पैकेट (कुछ सोचकर) उसके लिये कुछ माँग लेती हूँ। (अम्बिकोदवी से) आप आज्ञा दें तो एक कम्बल उसे दे दूँ ?

अम्बिका - किसे ?

तापसी - वो.....औरत बहुत बीमार है। उसका कम्बल फट गया है।

अम्बिका - (अचानक गुस्से में ऊँची आवाज से) ओह, कल की आई छोकरी, बहुत बोल फूट रहा है तेरा ? क्यों देगी कम्बल.....? मुफ्त का है क्या ? जाने कहाँ-कहाँ से आ जाती है मेरा खून पीने। सुन छोकरी क्या नाम है तेरा ? हाँ जो भी हो, यहाँ आश्रम के नियम हैं कुछ। सिर्फ मन्दिर में सेवा करने वाली महिलाएँ ही यहाँ रहती हैं। छह घण्टे जाप के लिये जाना होता है। दो रोटी, दो धोती बस और कुछ भी नहीं। समझी ? एक हफ्ता बर्तन माँजना, एक हफ्ता रोटी बनाना, समझी? और हाँ खिसकने की कोशिश मत करना । वो तेरा सगा वाला, जो छोड़ गया है तुझे खत-किताबत करेगा तेरे बारे में। फिर जवाब भी तो मुझे ही देना है। अब जा.....खड़ी-खड़ी मेरा मुँह क्या देख रही है ?

(लाईट ऑफ) (टेबल, कुर्सी, सोफा वापस विंग्स में पात्रों द्वारा रख दिया जाता है।)

सीन -8

(धीरे-धीरे बीमार औरत के कराहने का स्वर जारी है। डायरी लिखते हुए तापसी का स्वगत संवाद)

तापसी (स्वगत) - इंसान का ऐसा रूप शायद पहली बार देखा था उस दिन ! अम्बिकादेवी जिसे मैं पहले इस अजनबी, अंजान जगह में एक आशा की किरण और रेतीले मरूस्थल में पानी का सरोवर समझी थी, पर थोड़ी देर में ही समझ गई थी कि रेतीले मरूस्थल में सरोवर नहीं होता, छलावा होता है, भ्रम होता है, होती है एक प्यास और मरीचिका (बीमार औरत के कराहने का स्वर जारी है तापसी सो जाती है। मंच पर अँधेरा हो जाता है तभी अचानक बरौता आकर सोती हुई तापसी को दबोच लेती है। अब तापसी के कराहने के स्वर के साथ मंच पर नीली रोशनी।)

तापसी - नहीं.....नहीं (लेटी अवस्था में ही) नहीं ऽऽ.....ऽ

बरौता - चुप.....आवाज मत कर बस हो गया (अपनी लार साफ करते हुए भद्दी हँसी के साथ)

(कम्बल लपेटे हुए मजा नही आया अभी।)

तापसी - (काली औरत को धक्का मारकर गिरा देती है।) (ऊँचे स्वर में) खबरदार अगर मुझे हाथ भी लगाया तो हाथ तोड़ दूँगी। समझी ? (सभी औरतें इकठ्ठा हो जाती हैं।)

बरौता - (उतना ही चिल्लाकर) मेरे हाथ तोड़ेगी, मेरे ? जो अपने घरवाले के दोनों हाथ दँराते से चीरकर भाग आई है। हिम्मत है तुझमें ? अरे मुझसे तो इनमें से कोई नहीं बची, तू किस खेत की मूली है ?

तापसी - (बरौता के बढ़े हुए हाथों को झटकते हुए चीखते हुए) चल हट.....भाग जा यहाँ से.....नहीं तो अभी तेरा सर फाड़ दूँगी। (हाथ में डण्डे जैसा कुछ उठा लेती है। कमरे की सारी औरतें तापसी के पीछे आकर खड़ी हो जाती हैं, बरौता सहम जाती है।)

बरौता (स्वगत) - कुछ समझ में नहीं आ रहा है। अगर ये सारी-की-सारी औरतें इसकी तरह मुझ पर टूट पड़ीं तो ? बाप रे.....अभी चुपचाप यहाँ से निकलने में ही भलाई है। (बरौता चली जाती है।)

(लाईट ऑफ)

सीन-9

नूराबाई - बहुत दुःखी हूँ मैं ! रोकर जी हल्का कर लेती हूँ और करूँ भी क्या ?

तापसी - मुझे तो काका के घर से चले आने का, मजूमदार बाबू के परलोक सिधारने का, विधवा हो जाने का कोई दुःख नहीं था। मेरी आँखों में आँसू भी नहीं आते थे तब। हाँ, एक कुलबुलाती इच्छा, एक बेचैनी अवश्य थी, वह भी अपनी पढ़ाई छूट जाने की, नाराजगी जैसी थी परन्तु किससे ? जिसका अपना कोई भी नहीं था, काका, जितेन दा, कनिका दीदी कोई भी नहीं !

मैं वृंदा को हर रोज दर्द से कराहते हुए देखती थी। बहुत दुःख होता था। वो अपनी तड़पन के बीच लगातार अपनी चार-पाँच साल की बेटी की टेढ़ी-मेढी टाँगों पर मालिश करती रहती थी तो उसके भीतर कुछ पसीजता था - ''क्या यही होता है दुःख ?'' (बरौता का प्रवेश बातें सुनते हुए)

नूराबाई - हाँ शायद उतना ही अंजान.....! मुझे तो सिर्फ दुःख का पता है ये सुख क्या होता है ? मैं नहीं जानती। शायद पेट भर खाना, अच्छे कपड़े पहनना, आराम से सोना ?

बरौता - पागल हो.....! सुख क्या होता है मैं बताती हूँ इधर आ (नूराबाई उसके पास जाती है बरौता उसके शरीर को सूँघते हुए) सुख होता है देह का - खूब बदबदा शरीर - मौजमेला - जो मजा देता है। वो देता है सुख ! आ तुझे और अच्छे से बताती हूँ। (बरौता नूराबाई को विंग्स में ले जाती है।)

तापसी (स्वगत) - अब नूराबाई उसकी शिकार थी। पण्डित भी बता रहा था ना, रासलीला कृष्ण भगवान की अंतरंग लीला है। देखा नहीं रास-लीला के समय कैसा रस बरसता है, कैसी गुदगुदी होती है, जब राधिका और कान्हाजी का मिलन होता है

(विंग्स में झाँकने के बाद) बरौता के हाथ नूराबाई की साड़ी के अन्दर सक्रिय हैं। छि.....। मुझसे तो नहीं होता यह सब मुझे तो नहीं देता यह शरीर कुछ भी। न सुख- न दुःख। कभी-कभी तो सोचती हूँ कैसी चिढ़-सी उठती थी उस समय जब मोशाय बाबू हर रात शरीर को निर्वस्त्र करके उस पर हाथ फेरता था। (रोमांचित होकर) पहले थोड़ा कौतूहल हुआ था, फिर एक अजीब-सी सिहरन, गुदगुदी, फिर विवश मोशाय का मुझे थप्पड़ों-घूँसों से मारना, सिगरेटों से जलाना। अपनी शारीरिक दुर्बलता को हर तरह से छुपाकर मुझे ही दोषी ठहराना। बहुत दिनों तक कुछ समझ नहीं पायी थी, फिर एक दिन (झाड़ू लगाने वाली जमादारीन का प्रवेश)

जमादारीन - बाबू बीमार हैं तभी तो खरीदकर लाया है तुम्हें बोई दी !

तापसी - तुम्हें कैसे पता ?

जमादारीन - कई सालों से हूँ यहाँ। जब मुझ पर हाथ डाला था, तो जान गई थी। तभी तो इतने पैसे देता है। साड़ी देता है, मैं कहीं भेद न खोल दूँ। पर तुम तो चुपचाप सहती हो, सब कुछ.....? क्यों बोई दी ? (निर्लज्ज हँसी के साथ चली जाती है।) (लाईट ऑफ)

सीन-10

(आश्रम का दृश्य) (आश्रम की महिलाएँ आपस में बातें करते हुए)

बरौता - मैं सात साल से हूँ यहाँ। इस आश्रम का कोई भी राज मुझसे छिपा नहीं है, बस यूँ समझो की सबकी कुण्डली है मेरे पास। ऐसा कौन है जिसका कच्चा चिठ्ठा, अतीत मैं नहीं जानती।

वृंदा - अच्छा.....तो.....अम्बिकादेवी के बारे में कुछ बता न.....?

बरौता - अपनी उम्र में फिल्मी हीरोइनों के जैसे कपड़े पहनने का बहुत शौक था इसे।

नूराबाई - अच्छा.....। मैंने सुना है डॉ. यादव इसका दूसरा पति है। पहले पति को धोखा दिया इसने।

बरौता - हाँ.....। इसका पहला पति दवाइयों की दुकान चलाता था, जिसका हाथ बँटाती थी यह।

औरत एक- सुना है उनका एकमंजिला मकान भी अब दो मंजिला हो गया है ?

बरौता - सही सुना है। अब तो किरायेदार भी आ गये हैं।

औरत - डॉ. यादव का क्या हुआ ?

बरौता - डॉ. यादव ! व्हीलचेयर पर लटके रहते हैं। अपने टेढ़े चेहरे और मुड़े-तुड़े हाथ-पाँव के साथ। अधिकतर एक ही कमरे में बंद रहते हैं। आश्रम की नौकरानी निकालकर अपने घर पर रख ली है, वही डॉ. साहब की देखभाल करती है।

औरत तीन - अच्छा.....!

बरौता - हाँ ! बड़ा जानवरों जैसा व्यवहार करती है ये अम्बिका अपने पति डॉ. यादव के साथ। ऊपर से यहाँ का इस आश्रम का माहौल। बिना गाली-गलोच के कैसे रह लेगी ? बस यूँ समझो घर का गुस्सा आश्रम में और आश्रम का गुस्सा घर पर निकालती है, वो भी बिना कारण। किसी पर भी डण्डे बरसा देती है।

औरत दो - जब भी गुस्से में बोलती है तो ऐसा डर लगता है मानो !

बरौता - मानो ? मानो क्या ? सभी डरती हैं मैं भी.....। किसी को बताना मत पर डरती तो अम्बिकादेवी भी हैं अपने झूठ के पकड़े जाने के डर से !

(मंच पर अँधेरा वो सभी चली जाती है, स्पॉट लाईट तापसी पर)

तापसी (स्वगत) - डर ! इस संसार में ऐसा कोई है क्या ? जो किसी भी प्रकार के भय से त्रस्त नहीं ? इस संसार में है क्या.....कोई ऐसी स्थिति, जहाँ हम भयहीन होकर जी सकते हैं ? है कोई ऐसी अवस्था ? हर कोई डरा हुआ है। मैं बरौता के व्यवहार से, वृंदा अपनी बेटी के लंगड़ेपन से, नूराबाई भूख से। हमारी तरह और भी हैं कई जो किसी न किसी भय में बस जीये जा रही थी। कोई भी अपने आप में इतनी बहादुर नहीं है। तभी तो उस दिन जब अम्बिकादेवी ने मरियम और मुझे अचानक बुलाया मैं तो एक पल के लिए डर ही गई थी कि कहीं मरियम के माध्यम से मेरी पढ़ाई-लिखाई की बात किसी ने अम्बिकादेवी को तो नहीं बता दी.....? पर बात कुछ और ही थी, क्योंकि हमसे ज्यादा तो अम्बिकादेवी डरी हुई थी।

सीन-11

(मरियम का प्रवेश जो तापसी के साथ खड़ी हो जाती है। दूसरी विंग्स से अम्बिका आकर उन दोनों के सामने। अम्बिका के ऑफिस का दृश्य)

मरियम - आप बहुत परेशान दिखाई दे रही हैं ? क्या बात है ?

अम्बिका - परेशानी की ही तो बात है। यह देखो (पत्र देते हुए)

मरियम - क्या लिखा है इसमें ? तापसी जरा पढ़कर तो बताना। (पत्र तापसी को देती है।)

तापसी - ठीक है। (पत्र पढ़ते हुए) - लिखा है सिंगापुर (संभल) के मन्दिर में एक पुजारी पूजा कर रहा था तो अचानक एक सर्प निकला। उसे देख पुजारी डरने लगा, तो अचानक सर्प देवता ब्राह्मण के रूप में प्रकट हो गये और कहा डरो मत, डरने की कोई बात नहीं है। जो मैं कहता हूँ उसे ध्यान से सुनो। मैं कुछ दिनों बाद पृथ्वी पर अवतार लूँगा और जो धर्म का नाश करते हैं, मैं उनका संहार करूँगा। और जो व्यक्ति मेरे नाम के पर्चे छपवाकर बाँटेगा, उसकी 24 दिनों के अन्दर मनोकामना पूरी होगी और जो 24 दिनों में नहीं बाँटेगा, उसको काफी नुकसान होगा। इतना कहकर सर्प रूपी देवता तीन कदम पीछे हट गया और अंतर्धान हो गया। इस खबर को सुनकर मुम्बई के एक आदमी ने एक हजार पर्चे बँटवाए तो उसे 62 लाख रूपये की लाटरी निकली। धनबाद के एक रिक्शा चालक ने 650 पर्चे बाँटे तो उसको अपने घर में अशर्फियों से भरा घड़ा मिला, इसी प्रकार एक आदमी छपवाने की सोच ही रहा था तो उसे एक अच्छी नौकरी मिली तब उसने भी एक हजार पर्चे छपवाकर बाँटे !

एक आदमी ने झूठ समझकर उसे फाड़ दिया तो उसका लड़का मर गया, बाबूलाल गुप्ता आगरे वाले को पर्चा मिला, परन्तु उसने एक माह तक पर्चे नहीं बाँटे तो उन्हें व्यापार में हानि हुई, उसकी पत्नी चल बसी। इस बात को सही मानकर शंकर जी का प्रचार करना।

जिस किसी सज्जन को यह पर्ची मिले, उनसे यह निवेदन है कि वे इस पर्चे को छपवाकर बाँट दें। इसे झूठ समझकर आपत्ति मोल न ले। इससे होने वाले चमत्कार का लाभ उठायें।

इसमें तो पत्र भेजने वाले का नाम, पता कुछ भी नहीं है।

मरियम - अच्छा.....तो यह कारण है आपकी परेशानी का ? अम्बिकादेवीजी आपको घबराने की या चिन्ता करने की कोई जरूरत नहीं है। ये सब झूठ है, बकवास है, किसी ने मजाक किया है, आपके साथ।

अम्बिकादेवी - तुम्हें क्या मैं शकल से बेवकूफ नजर आती हूँ ? जो कोई मुझे इतनी आसानी से मूर्ख बना देगा। मैं जानती हूँ पर तुम नहीं जानती हमारे शंकर भगवान की .पा या कोप को.....वैसे भी तुम ईसाइ हो न यह सब तुम्हारी समझ से बाहर है। खैर, तुम दोनों पढ़ी-लिखी हो। यह 650 पत्र लिख डालो।

दोनों - (आश्चर्य से) क्या ? 650 पत्र ?

अम्बिका - हाँ.....जल्दी से लिख डालो मेरे पास समय नहीं है और तुम समय बिल्कुल भी बर्बाद मत करो।

तापसी - जी.....। (मरियम, अम्बिका फ्रिज हो जाती है।)

तापसी (स्वगत) - वैसे भी बहस बेकार थी और डण्डों के नीचे बहस की भी नहीं जाती। मैंने और मरियम दोनों ने मिलकर रात-दिन लगा दिये और पूरे 650 पत्र लिख डाले तीन-चार दिनों में।

अम्बिका - सारे पते सही से तो चिपका दिये थे न ?

तापसी - जी

अम्बिका - (चैन की साँस लेते हुए) चलो तुम दोनों ने मेरा बहुत बड़ा काम किया है। मैं तुम दोनों से बहुत खुश हूँ, इसलिए तुम्हें ईनाम देना चाहती हूँ। (पर्स निकालकर दोनों को दस-दस रूपये देती है।) ये लो। (दोनों जाने लगती हैं।) तापसी तुम रूकना.....मरियम तुम जाओ।

मरियम - ठीक है। (और चली जाती है।)

अम्बिका - इतने पत्र भेजने के बाद भी मन में शान्ति नहीं है। मतलब डर पूरी तरह से गया नहीं अब तक। (पत्र हाथ में लेते हुए) चल तापसी तू मेरे साथ चल, गोवर्धन वहाँ बड़े पहुँचे हुए बाबा रहते हैं। पता करते हैं इस चिठ्ठी का असली भेद क्या है ? मैं बाहर खड़ी हूँ, तू तैयार होकर जल्दी आ।

तापसी - जी....! (अम्बिका विंग्स में चली जाती है। तापसी स्वगत)

मुझको उस पत्र के बेमानी होने का पूरा विश्वास है, परन्तु मेरी बात अम्बिकादेवी भला क्यों सुनने लगी ? और मैं समझाने वाली होती भी कौन हूँ? खैर आश्रम से बाहर जाने का अवसर भी क्यों खोया जाये ?

सीन-12

आश्रम का दृश्य एक बच्ची के जोर-जोर से रोने की आवाज आ रही है। उसकी माँ वृंदा चुप कराने का प्रयास कर रही है, धीरे-धीरे आश्रम की औरतों का हुजूम इकठ्ठा हो जाता है।

तापसी - न....न.....न..चुप हो जा.....। कहाँ चली जाती है वृंदा ? कब से रो रही है तेरी बेटी (बच्ची वृंदा को देती है।)

वृंदा - क्या करूँ तापसी कोई शौक थोड़े ही है मुझे जाने का। इसी के लिए दूध भी नहीं तो कैसे पालूँ इसे। अम्बिका बहनजी तो एक रोटी भी फालतू नहीं देतीं। कोई भी मदद नहीं है। सब कहते हैं यह मर जाए.....पर मैं तो माँ हूँ तापसी ! ऐसे कैसे मर जाने दूँ इसे ? (रोने लगती है) कैसे मर जाने दूँ ?

तापसी - लोगों का क्या है कुछ भी कहते हैं.....तू संभाल अपने आपको और इस बच्ची को, इसकी यह हालत कैसे हुई? इलाज नहीं करवाया...?

वृंदा - अगर मेरी सास इसके पैर पर चिमटा न मारती तो यह लंगड़ी थोड़े ही हो जाती। तापसी यह बिल्कुल ठीक-ठाक पैदा हुई थी। अरे दो महीने की बच्ची पर जोर से चिमटा मारो तो हड्डी तो टूटेगी ही। उसी बीच इसका बाप कच्ची शराब पीकर मर गया। कौन कराता इलाज ? हड्डी जुड़ी नहीं। लड़की लंगड़ी तो होनी ही थी।

डॉक्टर कहता था, बड़ा ऑपरेशन करें तो ठीक हो सकती है चुनिया, पर कहाँ से हो पाएगा वह महँगा इलाज ? कौन करेगा इसका इलाज ? (फिर रोने लगती है।) (और चुप कराते हुए खिलाने लगती है।) (बरौता का प्रवेश)

पीर बाबा कहते हैं तू ठीक हो जाएगी चुनिया । ज्योतिषीजी कहते हैं तू बिल्कुल ठीक हो जाएगी। आ तेरे पैरों पर तेल मल दूँ। ''मालूम है आज पीपल वाले बाबा ने यह चमत्कारी तेल दिया है। कहा है बस महीने भर में मेरी चुन्नी पैरों-पैरों चलने लगेगी।

बरौता - मुफ्त में दिया तेल ? कितने पैसे लगे ? या फिर रात सो ली उसके साथ ? तेरी खिड़की खुली थी । रोज ही तो कूदती है साली। इसी खिड़की से कूदकर जाती है न अपने देह व्यापार को ? और सुबह होने से पहले वापस भी आ जाती है। आखिर चुनिया की टेढ़ी टाँगों के लिये पैसा कहाँ से आता ?

वृंदा - यहीं से आया था। वह खिड़की तो खुली रहती है। बंद खिड़की में तो मैं सो ही नहीं सकती। जरूर उसी ने बंद की होगी। जलाना तो था मुझे.....हाय यह तो मुझे मारकर ही छोड़ेगा.....। (जोर-जोर से रोने लगती है।)

बरौता - (धमकाते हुए) यह क्या बक-बक लगा रखी है ?

वृंदा - वह आता है। परछाई-पहुँचते साँप में बदल जाता है। फुँफकारता है, आग के गोले निकलते हैं मुँह से। मुझे पूरा जला डाला कमबख्त ने। हाय! मेरी चुनिया का क्या होगा ? (फिर रोने लगती है।)

बरौता - (जोर से एक तमाचा वृंदा के गाल पर मारती है।) आधी रात को हाय-तौबा मचा रखी है मर साली। तेरे मर जाने से धरती खाली नहीं होगी। मरती है तो मर। इस जून से छुटकारा तो मिलेगा। स्याली, यह भी कोई जिन्दगानी है ? चुनियाँ-चुनियाँ लगा रखी है। लंगड़ी छोकरी। जी भी गई तो क्या जनम होगा उसका ? अपने साँप को बोल इस जनम-जली को भी डँस ले।

वृंदा - भूत है मेरे घरवाले का! मुझे खाएगा, सताएगा, अपनी बेटी को थोड़े ही।

बरौता - चल, बकवास बन्द कर। भूत-भूत लगा रखा है। सारी नींद खराब करके रख दी। अब भी चुप नहीं हुई तो जला डालूँगी तुझे समझी। (धीरे-धीरे तापसी को छोड़ सभी औरतें विंग्स में चली जाती हैं।) (तापसी विंग्स की तरफ देखकर)

तापसी - अरे यह क्या बरौता और नूराबाई एक-दूसरे को साड़ी उठाकर अपने-अपने गुप्तांग दिखा रही हैं ? और वहाँ वृंदा अपनी लटकी हुई छाती में तेल मल रही है। नग्नता का कितना दरिद्र चित्र है यह! सुबह नल पर नहाते समय भी कोई पर्दा नहीं था। पता नहीं, यह सामूहिक नग्नता किसी वर्दीधारी जत्थे की एकरूपता जैसी थी या ग्लानिपूर्ण बेइज्जती का एक परिदृश्य ?

(लाईट ऑफ)

सीन-13

(अर्थी ले जाने की तैयारी चल रही है, कुछ लोगों का कोलाहाल वे सब आपस में बातें कर रहे हैं।)

संन्यासी नेपथ्य से आत्मा अमर है !

सभी - शरीर नश्वर है !

संन्यासी - आत्मा अमर है !

सभी -शरीर नश्वर है !

(अर्थी निकलने के बाद)

एक -सचमुच बहुत प्रेम से रखा था बाबा ने उसे।

दो - तभी तो इतनी धूम-धाम से अर्थी निकाल रहे हैं।

तीन - वो भी एक बन्दर की.....!

तापसी (स्वगत्) - अजीब बात थी राम-नाम सत्य है, के स्थान पर यह भिन्न जीवन सिद्धान्त। वह भी एक बन्दर के लिए ? इतना बड़ा भण्डारा ?

वृंदा - (खाना लाते हुए) अरे तापसी ! तू नहीं गई वहाँ ? भण्डारे में बहुत अच्छा खाना बना है। असली घी की पूड़ियाँ हैं और आलू-गोबी की सब्जी मैं तो खा आई और अपनी चुनियाँ के लिए भी ले आई देख। (प्लास्टिक की थैली दिखाती है।) भगवान भला करे उस बन्दर का जिसके मरने से हमें यह खाना नसीब हुआ।

(तापसी उसे देखती रह जाती है और वो चली जाती है।)

तापसी - बन्दर.....! शरीर.....बन्दर का रहा हो या मनुष्य का, जो भी रहा हो इतना महत्त्वपूर्ण नहीं होता जितना उसका कर्म या संस्कार होता है।

(लाईट ऑफ)

सीन-14

(भगवती और वृंदा स्टोर (विंग्स) से मंच पर कम्बल, बर्तन आदि ढेर सारा दान किया हुआ सामान लाकर रख रही हैं। नूराबाई गिनती लगा रही है। तापसी रजिस्टर में लिख रही है। जिसमें मरियम तापसी को हिसाब-लगाने में मदद कर रही है। अम्बिकादेवी हाथ में डण्डा लिये रौबदार स्वर में निर्देश दे रही हैं। सामने एक कुर्सी पर धोती-कुर्ताधारी दलाल टाईप आदमी आराम से बैठा पर्ची बना रहा है और वृंदा की तरफ लालच भरी दृष्टि से देख रहा है। पास में ठेला खड़ा है।)

अम्बिका - जल्दी-जल्दी इतनी देर लगती है क्या ? (नूराबाई से) हाँ.....कितने हुए ?

नूराबाई - पाँच सौ कम्बल !

तापसी - पाँच सौ कम्बल ! (लिखते हुए)

मरियम - दो सौ साड़ियाँ !

तापसी - दो सौ साड़ियाँ !

नूराबाई - सौ गरम शॉल ! पचास स्टील के गिलास ।

तापसी - सौ गरम शॉल ! पचास स्टील के गिलास ।
मरियम - दो सौ दस थालियाँ।
तापसी - ये.....दो सौ दस थालियाँ!
वृंदा - (याचना करते हुए) बहन जी एक कम्बल मुझे दे दो न.....!
बहुत फट गया है.....मेरा कम्बल।
रात को ताप चढ़ता है तो काँपती रह जाती हूँ।
अम्बिका - चौप्प ! (घूरते हुए गुस्से से) बहुत जुबान चलती है तेरी। लंगड़ी छोकरी के साथ यहाँ रहने दे रही हूँ, यही क्या कम है ? रोटी देती हूँ, सर पर छत है और तिस पर तेरे कु-करम! कुछ छिपा थोड़े ही है मुझसे। चल भाग यहाँ से, नहीं तो पीटूँगी तुझे।
(और डण्डा उसकी पीठ पर दे मारती है।) (लाईट ऑफ)
आदमी - अच्छे से गिन लेना मेमसाहब पैसे पूरे हैं। (ठेले में सामान रख रही वृंदा को देखते हुए)
नेपथ्य से - अम्बिका हाँ, हाँ ठीक है अब तुम जाओ।
आदमी - ए सुन..... (धीरे से एक कम्बल देता है।)
वृंदा - (खुशी के मारे) ठीक है.....।
आदमी - (एक कागज का टुकड़ा देता है) ये पर्ची रख इसमें मेरा नाम, पता लिखा हुआ है, कल रात को आ जाना.....(हँसते हुए) ठेला लेकर चला जाता है। (वृंदा कम्बल लेकर चली जाती है।)
(लाईट ऑफ)
(अम्बिका देवी के कमरे का दृश्य अपना मेकअप ठीक करते हुए / मरियम और तापसी का प्रवेश)
तापसी - हम अन्दर आ जायें ?
अम्बिका - हाँ, आ जाओ।
(दोनों अन्दर आ जाती है।)
सुनो, तुम दोनों, इस सामान के बारे में या सौदे के पैसों के हिसाब-किताब के बारे में किसी को कानो-कान खबर न हो। समझी ?
दोनों - जी !
अम्बिका - मरियम, अब चलो मेरे साथ बकि में यह पैसा जमा कर दूँ। अरे भई, तुम्हीं लोगों की हारी-बीमारी में काम आएगा। मुझे क्या है ? मैं तो सारा जीवन तपस्या ही कर रही हूँ। तुम लोगों की सेवा में मैंने अपना जीवन लुटा दिया। मैं.....मैं, मेरा जीवन.....मेरा सर्वस्व, सब कुछ जन-सेवा को ही तो अर्पित है.....जानती हो ही तुम सब ?
मरियम - जी.....। (मुस्कुराते हुए)
अम्बिका - (दोनों को एक-एक कम्बल और पचास-पचास रूपये देते हुए) लो, यह रख लो, तुम्हारे लिए है। मैं तुम्हें खुश रखना चाहती हूँ। समझी ? (चालाक मुस्कान के साथ) चलो मरियम देर हो रही है।
मरियम - बहन जी, मुझे तो स्कूल पहुँचना है। आजकल इम्तहान चल रहे हैं। मैं पहले ही लेट हो गई हूँ। आप प्लीज तापसी को ले जाएँ। यह मुझसे भी ज्यादा पढ़ी हुई है। संभाल लेगी सब कुछ।
अम्बिका - वैसे तो मैं अकेले ही कर सकती थी, पर चलो, तापसी।
तुम लोगों की ही तो अमानत है। मेरा क्या ?

सीन-15

टीले पर एक युवक खड़ा होकर भाषण दे रहा है, पब्लिक अर्थात् कुछ लोगों का हुजूम उसका भाषण ध्यान से सुन रहा हैं लोग बीच-बीच में तालियाँ बजा रहे हैं। उस युवक ने धोती-कुर्ता पहना हुआ है और मिट्टी के रंग की जैकेट पहने हुए है। रंग गोरा-चिट्टा है। (उस भीड़ में अम्बिकादेवी और तापसी भी रिक्शे से उतरकर फँस जाते हैं।)

युवक - आजादी के पचास वर्ष बाद भी हम सब गुलाम के गुलाम हैं। हम सब वोटों के खरीदे हुए गुलाम है। हम पर कोई न कोई राज करता ही रहता है। पहले अंग्रेज करते थे। अब यह महास्वार्थी अनपढ़डाकू टाईप नेता करते हैं।
सभी - (तालियों की आवाज)
युवक - हमारी अपनी स्वायत्तता और ईमान को लकवा मार गया है। जब भी चुनाव आते हैं, हमारे ये मक्कार नेता हमें इन्द्रधनुषी सपने दिखाकर, हमारे भूखे पेट में थोड़ा-सा भोजन डालकर, हमारे नंगे बदन पर चादर ओढ़ाकर हमारे जमीर को हमसे चुरा लेते हैं। हमें सब्जबाग दिखाकर बताते हैं कि फुटपाथ नहीं, अब तुम अपने घर में रहोगे। हम उनके किये वादों पर विश्वास कर लेते हैं और उनके दिखाए सपनों में चलने लग जाते हैं, परन्तु जैसे ही वे अपनी गद्दी पर बैठते हैं, हमारी वोटों की अहमियत, हमारे वजूद को भूल जाते हैं। हमें क्या मिलता है ? फिर से वही दलित जिन्दगी, वही भूखा पेट, वही फटे हुए चिथड़े, वही पेट के लिए भीख माँगते हाथ।
सभी - (तालियाँ बजाते हुए)
एक - यह बिल्कुल सच कह रहा है।
अम्बिका - (मुँह सिकोड़ते हुए) कम्बख्त बुरा-भला कह रहा है नेताओं को, देश के शासकों को। हिम्मत तो देखो इसकी, भड़का रहा है। इस भिखमंगी जनता को। क्या मिलेगा ऐसी बातें करके ? पुलिस पकड़कर जब डण्डे बरसाएगी तो पता चलेगा। आये दिन पिटता है पर अपनी बकवास बंद नहीं करता।
चल तापसी जल्दी से निकल चल। बकि का काम खत्म कर लेते हैं। मार-कुटाई शुरू हुई तो भीड़ में फँस जाएँगे।
तापसी - (भाषण सुनने में मगन है।)
अम्बिका - अरे वहाँ क्या रखा है, चल बकि इधर है। (और हाथ पकड़कर बैंक ले जाती है (विंग्स में) और वही भीड़ बकि के दृश्य में परिवर्तित हो जाती है।)
तापसी - अच्छा इसे कहते हैं बैंक काफी बड़ा है ये !
अम्बिका - अच्छा इधर-उधर देखना छोड़ केश काउण्टर कहाँ लिखा है ? देख !
तापसी - वो रहा उस कोने में.....
अम्बिका - (जमा पर्ची देते हुए) अब चल ये जमा पर्ची भर दे फटाफट और ये ले इसमें से एकाउंट नम्बर देख लेना। मैं तब तक लाईन में लगती हूँ।
तापसी - जी ! (जमा पर्ची भरती है।) ये इधर हस्ताक्षर कर दीजिये।
अम्बिका - (हस्ताक्षर करती है।)
तापसी - कितना पैसा जमा करवाना है ? रकम भर देती हूँ।
अम्बिका - (ब्लाउज में से मरियम की पर्ची निकालते हुए) लिख पचास हजार आठ सौ तीस रूपये (तापसी लिखकर देती है।)
तापसी - जी ! ये लीजिये।
अम्बिका - तू यहीं खड़ी रह मेरे साथ काउण्टर पर।
तापसी - जी!
(अम्बिका अपने बड़े पर्स से नोटों की गड्डियाँ निकालकर केशियर को देती है और तापसी देखती रह जाती है।)
(स्वगत् संवाद) - बाप रे! इतना रूपया मैंने आज तक नहीं देखा। हो न हो यह सारा रूपया चढ़ावे का है या दान की गई वस्तुओं को बेचकर जमा किया गया लगता है। पर इस धन पर तो हम जैसी आश्रम की औरतों का अधिकार है और मेरे ही सामने अम्बिका यह धन अपने निजी खाते में जमा कर रही हैं ?
एकाउण्टेंट - (हँसते हुए) (पासबुक लौटाते हुए) काफी बढ़गया है आपका बैंक बैलेंस, बहन जी! अच्छी कमाई हो रही है आजकल।
अम्बिका - हाँ....हाँ.....घर किराये पर चला रखा है न। कई महीनों से इधर आना ही नहीं हुआ सो एक साथ जमा करवा रही हूँ। (पासबुक रखते हुए) (तापसी से नजर चुराते हुए)
एकाउण्टेंट - (हँसते हुए) अरे आप ही का बकि है बहन जी कभी भी आइये हमारा तो काम ही है पैसे जमा करना।
अम्बिका - चल तापसी वापिस चलें।

तापसी - वापिस.....?
अम्बिका - हाँ.....काम हो गया न । चल (तापसी अम्बिका के पीछे-पीछे विंग्स में चली जाती है। बकि वाला दृश्य पुनः वही भीड़ और युवक के भाषण वाले दृश्य में बदल जाता है।)(पुनः प्रवेश करने पर अम्बिका और तापसी के)
युवक - आप लोग जानते हैं, क्या जगह है यह ?
द्वादशटीला, वह ऐतिहासिक टीला जिस पर सदा लीला करने वाले भगवान .ष्ण ने अपनी ऐश्वर्य शक्ति का प्रसार करके बड़े-बड़े दैत्यों का वध किया था। यहीं खड़े होकर देश के बड़े-बड़े नेताओं ने भाषण दिये थे। हमें बड़े-बड़े सब्जबाग दिखाए थे। हमसे वायदे किए थे, परन्तु अब यह टीला हमारे टूटे हुए सपनों का खण्डहर है और खण्डहर पर तो कोई दीया नहीं जलाता। खण्डहर तो बारिश और धूप झेलते हैं जैसे हम और आप। आपको नहीं लगता, हम और आप भी धीरे-धीरे खण्डहर में बदल रहे हैं।
(दो-चार लोग तेजी से भीड़ चीरते हुए उसकी तरफ भागते हैं।)
गुण्डा एक - (उसको कँधे से पकड़ते हुए) हमारे नेताजी के खिलाफ जनता को भड़काता है ? (मारता है) ये ले।
गुण्डा दो - कहता है हम धीरे-धीरे खण्डहर में बदल रहे हैं ? आदमी को खण्डहर कैसे बनाया जाता है अच्छी तरह आता है हमें। (वो मारता है।)
गुण्डा तीन - (पब्लिक से) ऐ ऽऽ क्या प्रसाद बँट रहा है यहाँ ? चलो फूट लो यहाँ से। (जनता इधर-उधर भागने लगती है पिटते हुए युवक)
युवक - (चिल्लाते हुए) ये है किराये के टट्टू, भडुए, साले नामर्द, पैसे के लिए बिके हुए। (मार खाते हुए) सच्चाई सुनना ही नहीं चाहते।
तापसी - अरे ये तो उसे मार रहे हैं। (बचाने को जैसे ही होती है अम्बिका हाथ पकड़कर पीछे खेंचती है।)
अम्बिका - अरे मरने दे उसे.....तू चल यहाँ से। (पब्लिक इधर-उधर भाग रही है।)
(पिटाई का क्रम जारी है उसके कुर्ते को फाड़ दिया गया है।) लगता है रिक्शा आगे से मिलेगा चल। (विंग्स में चली जाती हैं।)
युवक - कौन सुनता है सच को ? झूठे और बेईमान शासक हो तो सच को पिटना ही पड़ता है। मेरे भाई, और मारो। (वो और मारते हैं।)
गुण्डा एक - ये ले (लात मारता है।)
युवक - मैं तो सच फिर भी बोलूँगा, क्योंकि सच डरता नहीं है। तुम मारो, क्योंकि इसी के तो पैसे खाते हो तुम लोग। और आता भी क्या है तुम्हें ? (और युवक गिर जाता है।)
गुण्डा दो - इसका करना क्या है ?
गुण्डा तीन - बहुत जुबान चलती है इसकी (हाथ में चाकू लिये) फेंक दो साले को।
(तीनों गुण्डे उसे उठाकर विंग्स में ले जाते हैं।)
(तापसी अम्बिका का रिक्शे में बैठे हुए प्रवेश)
(उसी समय गुण्डे उसे लहुलुहान अवस्था में फेंकते हुए) एक भिखारिन बूढ़ी औरत उसके घाव पोंछकर उसे पानी पिलाती है और तापसी यह सब रिक्शे से देख रही होती है। वहाँ देवदासी गा रही होती है, अचानक रिक्शा रोककर)
तापसी - रिक्शा रोको - 2 (उतरकर मतली करने लगती है।)
अम्बिका - (गुस्से से) क्या हुआ तुझे ? ठीक तो है न ?
तापसी - (पानी पीकर) हाँ अब ठीक लग रहा है।
अम्बिका - बड़ी नाजुक निकली तू ! घबरा गई इत्ते से। यहाँ तो रोज ही होता है। तमाशा ! साले सब नाम के सोशल वर्कर हैं। काम-धाम कुछ नहीं बस भोली-भाली जनता को भड़काते हैं। अखबार में उल्टा-सीधा छपवाते हैं। यह तो बड़ा ही बेशर्म है। मार खाता है फिर उठ खड़ा होता है। इसी चौराहे पर आकर बोलता है, पगला गया है।
(अजीब चेहरे वाली औरत उनके सामने आकर खड़ी हो जाती है जिसके हाथ पर लिखा है देवदासी भीख माँगते हुए)
देवदासी - भगवान के नाम पर कुछ दे दो.....प्रसाद चढ़ाना है।

अम्बिकादेवी - (गुस्से से) अरे, रे, कहाँ से आ गई मरी रे कम्बख्त हिंजड़ा ! भीख माँगने के अलावा और कोई काम नहीं है क्या ?
देवदासी - हिंजड़ा कहा तूने .....(भयानक स्वर में) मैं भिखारिन नहीं हूँ, देवदासी हूँ। पूजा करती हूँ। शराप जी रही हूँ और तुझे क्या जानती नहीं हूँ। इतना घमंड अपने औरत होने का। एक खसम छोड़ दूसरा करके बैठी है। सूरत तो देखो इसकी। कैसी सती-सावित्री बनी फिरती है.....स्याली।... बहन जी.....सौ...चूहे खा के बिल्ली हज को चली।
गरीब विधवाओं का पैसा खाकर कैसी मुटा रही है, स्याली !
अम्बिका - रिक्शा तेजी से चलाओ भईया ! (अम्बिका के चेहरे की रंगत बदल गई।)
देवदासी - (जोर-जोर से ऊँचे स्वर में) धन्धे करवाती है तू। कौन नहीं जानता ? आश्रम नहीं तेरा तो वह रंडीखाना है। (विंग्स से आवाज) स्याली, मुझे हिंजड़ा कहती है मुझे जिसे भगवान की भक्ति करनी है बस.... (लाईट ऑफ) (रिक्शे से उतरकर पैदल चलते हुए)
अम्बिका - (तापसी से) पागल है वो, उसकी बातों को ध्यान में नहीं लेना तू, समझी, और किसी को बताना भी नहीं। सुना.....? नहीं तो।
तापसी - नहीं तो। (और भागते हुए नल पर चली जाती है और उल्टी करने लगती है फिर हाथ-मुँह धोकर लेट जाती है और सोचने लगती है।)
तापसी (स्वगत्) - नहीं तो दो रोटी.....वो भी न मिलती। रात को अपने नये कम्बल में चुपचाप आकर लेटी तो नींद नहीं आई। बार-बार उस पिटते हुए आदमी के चेहरे पर जड़ी वे दो आँखें उसके सामने विशाल विस्तार-सी फैल जाती!
नेपथ्य से पिटते हुए आदमी के स्वर। तापसी अपने कान पर हाथ रख लेती है।
क्या था उनमें जो बेचैन कर रहा है मुझे, क्या थी वह तटस्थता, जो मार खाने के बावजूद उसकी आँखों में स्थायी थी, जमे हुए गहरे काले बादल की तरह, जिसे वह बेधड़क कहे भी जा रहा था ? क्या था वो ? (सोचती है) हाँ.....उसका सच हो सकता है, उसका सच ही है वो जो उसे हारने नहीं दे रहा था इतनी मार खाने के बावजूद भी। तो क्या सच इतना प्रभावशाली होता है कि मनुष्य के इतने शारीरिक-मानसिक कष्टों के बीच भी उसे तटस्थ रखे हुए था। (सोचते हुए) हाँ, याद आया मरियम ने कहा था एक बार।
(स्पॉट लाईट मरियम पर)
मरियम - सच तो हरेक के पास है तापसी। सच के बारे में सब जानते भी हैं, परन्तु सच के साथ आस्थावान होकर जीना बहुत कठिन है।
(स्पॉट लाईट के ऑफ होते ही मरियम चली जाती है और तापसी पर स्पॉट लाईट पड़ती है।)
तापसी - सच के नाम पर मार खाते आदमी की फटी-फटी वो दो आँखें मेरे सामने फैलकर मुझे सिहरन से भर रही हैं और फिर वह हिंजड़ा देवदासी ? उसके अक्खड़ स्वर के जलते हुए अँगारे ? पता नहीं क्यों मुझे लगता है उस देवदासी की मुखा.ति, उसका बेहूदा शरीर, मजूमदार बाबू से कुछ-कुछ मिलता-जुलता था। नहीं
(लाईट ऑफ) (सीन समाप्त)

सीन-16

(आश्रम का दृश्य) (मंच पर अँधेरा) (विलाप करते हुए वृंदा अपनी मरी हुई बेटी को लेकर जो उल्टी में सनी हुई है।)
वृंदा - चुनियाँ ऽ ऽ उठ बेटा.....उठ न..... हे भगवान क्या हो गया है इसे ?
(मंच पर धीरे-धीरे प्रकाश पड़ता है हल्का नीला)
हे भगवान.....क्या हो गया है मेरी बच्ची को.....(बरौता से) डॉक्टर बुला दो, बहन जी। डॉक्टर बुला दो.....देखो न मेरी चुनियाँ बेहोश हो गई है।
बरौता - (वृंदा को झाड़ते हुए) अरे हट दूर.....बास मार रही है पूरी की पूरी।
वृंदा - (उसके पैर पकड़ लेती है।) डॉक्टर बुला दो बहन जी.....बिल्कुल आँखें नहीं खोल रही है, ना ही रोती है।
बरौता - ओह ऽ ऽ हो लगता है तू ऐसे नहीं मानेगी। रूक बताती हूँ तुझे (अपने हाथ

से बाल्टी भर पानी उस पर उंडेल देती है।)
उल्टी में सनी पड़ी है कौन छुएगा इसे ?
नूराबाई - (नब्ज देखकर) तेरी बेटी मर गई वृंदा (जोर-जोर से हँसने लगती है।) तेरी बेटी मर गई - तेरी बेटी मर गई !
(एक-एक करके आश्रम की सभी औरतें आ जाती हैं।)
वृंदा - (बरौता से) अरे यह क्या कर दिया तूने ? बाल्टीभर पानी डाल दिया इस पर (बच्ची की धड़कन सुनने का प्रयास करती है।)
अरे इसकी धड़कन बंद हो गई। हे भगवान.....हे भगवान.....मर गई तेरी बच्ची ऽऽ (जोर-जोर से विलाप करने लगती है।)
नूराबाई - तेरी बेटी भी मर गई (फिर रोने लगती है।) मेरे बच्चे गिरवी चले गये। मेरी नन्दा हाय पता नहीं कहाँ होगी ? (फूट-फूट कर रोने लगती है दोनों)
वृंदा - चुनियाँ ऽऽ हाय मेरी चुनियाँ ऽऽ दुनिया में क्या देखा बेचारी ने, क्या सुख पाया ? चली गई मुझे छोड़ के ऽऽ !
मेरा एक ही तो सहारा थी। अब मैं क्या करूँगी ।
किसका इलाज कराऊँगी ? हाय मेरी चुनियाँ.....।
भगवती - क्या देखती चुनिया लंगड़े पैरों से ? बोल ? कौन-सा संसार, तेरा या हमारा ? क्या धरा है यहाँ?
बरौता - शुकर कर..... राधे मैंया का मर गई लंगड़ी। जीकर क्या करती स्याली ? भीख माँगती या भिखारियों के साथ सो लेती और क्या जिन्दगानी मिलती उसको बोल ? अच्छा हुआ जो छुटकारा पा गई। (उसके मृत शरीर पर थूक देती है।) थू ऽऽ
वृंदा - (गुस्से से घूरकर) अपना-जनती तो जानती कमीनी ? मेरी बेटी की मिट्टी पर थूक रही है। मेरी बेटी की मिट्टी पर थूक रही है ? जैसे कुकरम तू करती है, एक दिन कोढ़ फूटेगा तुझ पर.....कोढ़फूटेगा। भगवान किसी को नहीं बख्शाता.....देख लिजियो। (बरौता वृंदा की गर्दन पकड़ लेती है।)
बरौता - मैं बताती हूँ तुझे। कुकरम कौन करती है। कोढ़तुझ पर फूट रहा है और मेरा नाम लेती है कुतिया।
(तापसी छुड़ाने का प्रयास करती है।)
तापसी - बरौता छोड़ मर जाएगी यह।
बरौता - नहीं छोड़ती जा ऽऽ मुझे गाली देती है इसकी इतनी हिम्मत ?
तापसी - (एक जोरदार थप्पड़ उसके गाल पर मार देती है। एक पल के लिए सन्नाटा छा जाता है बरौता उसे छोड़ देती है।) बरौता.....!
बरौता - तूने मुझे मारा तापसी। तेरी यह हिम्मत.....?
(मुँह पर कपड़ा बाँधे अम्बिका हस्तक्षेप करती है।)
अम्बिका - तुम में और जानवरों में फर्क है क्या कोई ? (बरौता का हाथ पकड़ते हुए) कैसी मारपीट और गन्दा मचा रखा है ? चलो पानी डालो, धो डालो सारा कुछ। तुम लोग हर समय लड़ाईयाँ क्यों लड़ती हो ? चलो वृंदा, बाहर निकालो इसे। अभी खबर भेजती हूँ। डोम ले जाएँगे इसे आकर।
वृंदा - (रूँआसे स्वर में) नहीं बहन जी! डोम मत बुलाओ। मैं गोदी में ले जाऊँगी इसे। ब्राह्मण की बेटी थी। गंगाजी में डालूँगी इसकी मिट्टी को। बेचारी को जीते-जी कुछ नहीं मिला।
अम्बिका - पागल है ? (गरजते हुए) इसकी लंगड़ी को गंगाजल चाहिये ? भला हिम्मत तो देखो इसकी। ब्राह्मण की बेटी का हवाला दे रही है ? तो बुला ना उस साले हरामजादे बाप को, अपने पाप की निशानी का विधिवत् करे आकर क्रिया-करम ।
बरौता - (तापसी को देखते हुए) हिम्मत तो यहाँ और भी बहुत लोगों की बढ़गई है। सब शान्त हो जाता है। धीरे-धीरे संगीत तीव्र होता है जिसके साथ ही दो काले बेहद काले बदसूरत आदमियों का प्रवेश जिन्होंने केवल धोती पहन रखी है। वो चिखती-चिल्लाती वृंदा की गोद से चुनियाँ की मृत देह को घसीटकर मैले कपड़े की पोटली में बाँधकर ले जाते हैं। इस दृश्य में संगीत और आलाप अपने चरम पर होगा।)
तापसी - (अम्बिका से) बहन जी, क्या करेंगे यह लोग ? चुनियाँ को जला देगें ? जैसे मजूमदार बाबू को जला दिया था मृत्यु के बाद ? कनिका दीदी के साथ देखी थी मैंने चिता की आग। याद है मुझे।
अम्बिका - पागल है। छोटे बच्चे जलाए नहीं जाते, पत्थर के नीचे दबा दिये जाते हैं, जिनावर-उनावर खा लेते हैं उन्हें। चल अब बातें मत बना, बहुत जुबान चलने लग गई है तेरी। चलो, उठो तुम सब....पानी ले आओ। धो डालो कमरा और आँगन। कैसी बास फैला रखी है।
(तापसी पर स्पॉट लाईट बाकी सब चली जाती है।)
तापसी (स्वगत्) - मौत.....एक शरीर का इस कोठरी से हमेशा के लिए चले जाना। मौत क्या विचलित कर देने वाली घटना नहीं है ? थोड़े से प्यार से, थोड़ी-सी देखभाल से वो घायल कबूतर जी उठा था। फिर चुनियाँ तो इंसान थी.....वृंदा तो इंसान है।
(लाईट ऑफ) (सीन समाप्त)

सीन-17

(नेपथ्य से पानी के जहाज की आवाज के साथ मंच पर तरह-तरह के भिखारियों का प्रवेश लंगड़े-लूले, अपंग जिनमें कुछ इस तरह का ढ़ोंग करते हुए उनके बीच वो पत्रकार भी है जो उस दिन भाषण दे रहा था।) (दूसरी विंग्स से घण्टी के स्वर के साथ मन्दिर से निकलते हुए आश्रम की महिलाओं के साथ तापसी का प्रवेश)
(अचानक भीख माँगकर खाते हुए युवा पत्रकार पर तापसी की नजर पड़ती है जो उसे देखकर अपना मुँह कम्बल से छुपाने का प्रयास करता है। दर्द से कराहते हुए) तापसी के संवाद में उसके चेहरे के भाव दर्शकों की ओर भय, पीड़ा और शर्म व्यक्त करते हुए
तापसी - मुझे लगता है मैंने इसे पहले कहीं देखा है ? (सोचते हुए) कहाँ देखा है ? हाँ, याद आया.....हाँ, वे दो आँखें उन आँखों में कुछ था। प्रभावित करने वाली एक शक्ति थी उनमें। वो तब जब वो चौराहे पर खड़ा था। हाँ यह तो वही था। जब लोग ऊँचे पैडस्टल पर खड़े होते हैं तो उनकी मुद्रा और उनकी आँखों में एक अप्रत्याशित शक्ति-सी आ समाती है.....जो सुनने वाले को अपने आकर्षण में बाँध लेती है.....तो यह ?
(पास जाकर)
आप यहाँ, आप तो इतनी बड़ी-बड़ी बातें करते थे। आपके भाषण में तो कितनी सच्चाई थी ? आप.....? (उसका कम्बल खींच देती है और वो चिल्लाते हुए रोते हुए मंच से दर्शकों के बीच से भाग जाता है, जिसकी हालत देख तापसी भी जोर-जोर से रोने लगती है।) नूराबाई उसे घसीटकर ले जाती है और एक टूटे चबूतरे पर बैठा देती है।
नूराबाई - क्यों काट दी उसकी जुबान.....?
तापसी (स्वगत्) - (उठकर खड़ी हो जाती है) हाँ.....उस आदमी की सोच, उसके सच कह पाने का सामर्थ्य, उसके शब्दों का सच, उसके सच की ऊर्जा क्या व्यर्थ थी ? किसी के काम न आने वाली अनर्गल बकवास ? तो क्या चुप रह जाना चाहिये, शब्दहीन ? (तापसी के सवाद के मध्य धीरे-धीरे आश्रम की महिलाओं का समूह तापसी के आस-पास झुण्ड बनाकर खड़ा हो जाता है जिनमें से एक स्त्री उसे मंजीरे थमा देती है।) दृश्य परिवर्तन होकर मन्दिर के दृश्य में बदल जाता है।

सीन-18

तापसी - (मंजीरें फेंकते हुए) छोड़ दो मुझे (चीखकर) मुझसे नहीं होगा। (सन्नाटे में केवल तापसी का स्वर)
नहीं होगा मुझसे - थक चुकी हूँ यह ढ़ोंग करते-करते खुद भूखे रहकर भगवान का भोग अब नहीं लगा सकती मैं.....थक चुकी हूँ बस अब और नहीं होता।
बरौता - (हाथ में डण्डा उठाकर) तेरी यह हिम्मत ठहर बताती हूँ तुझे.....। (बरौता उसे मारने के लिए जैसे ही डण्डा उठाती है दृश्य फ्रिज हो जाता है।) (लाईट ऑफ)
धीरे-धीरे मंच पर प्रकाश पड़ता है। लेटी हुई तापसी पर नूराबाई सिकाई कर रही है, वृंदा व अन्य महिलाएँ पास में खड़ी हैं।
नूराबाई - दर्द कम हुआ क्या ?
तापसी - (कराहते हुए) दर्द कभी कम होते हैं क्या ?
(लाईट ऑफ) सीन समाप्त

अंक दो

सीन-19

(तापसी का अतीत)

(एक साधारण-सा घर जिसके बाहर दालान पर कुछ मूर्तियाँ रखी हैं और एक बड़ा-सा बरगद का पेड़ है। घर के भीतर हल्का-सा प्रकाश है, जिसके भीतर से मूर्तियों को ठोंकने की आवाजें लगातार आ रही हैं जो संवाद के क्रम में उतार-चढ़ाव होता है, जिससे ध्वनि कम-ज्यादा होती रहेगी। मकान के बाहर तापसी खिलौनों से खेल रही है। छोटी तापसी जो अभी 10 से 12 साल की है लगभग। दूसरी ओर जितेन दा का मकान है। प्रकाश परिवर्तन द्वारा आश्रम उनके घर में परिवर्तित हो चुका है। बंगाली परिवेश बोलपुर का दृश्य।)
रखाल - तापोसी ऽऽ, पानी !
तापसी - अभी लाई काका (पानी लाकर देती है) यह पानी।
रखाल - (इशारे से) वहाँ रख दे ले लूँगा।
तापसी - जी ! (काका के चेहरे पर लार देखकर उधर मुँह फेर लेती है।)
तापसी (स्वगत्) - रखाल काका के पास वार्तालाप शब्द जैसा कुछ नहीं था। उस सन्नाटे से भरे घर में जब भी वह कुछ कहता उसके होठों से शब्द बेढ़ंगी लोटे से लुढ़कते हुए मुझ तक आ पहुँचते। बोल कड़वे भी होते हैं। सोचना भी पड़ता था। भूख लगने पर काका घर के रसोई वाले कोने में एक खास लकड़ी की चौकी पर आलथी-पालथी मारकर बैठ जाता था। मैं जो भी बना पाती थी भात, मच्छी, झोल, थोकर डालना या कुछ भी थाली में परसकर ले आती थी।
खा-पीकर वो कोठरी के एक कोने में चटाई बिछाकर सो जाता था, मक्खियों के प्रहार से बचाने के लिए मैं ही उसे चादर ओढ़ा देती थी। नहीं तो अपनी दिनभर की थकान और ताड़ी के नशे में डूबा रखाल पूरी रात, बिना हिले-डुले एक पत्थर की तरह पड़ा रह जाता था। रात होती तो सो जाती थी, नहीं तो बाहर आँगन के बीचों-बीच उगे विशालकाय बरगद की घनी छाया के नीचे आ बैठती। वो बरगद उस घर का एक केन्द्र-बिन्दु था। वह वितान की तरह पूरे घर पर फैला था, जैसे बाँहों में उठाये हो उस नन्हें परिवार को और मैं हिल-डुलकर कभी परछाइयों का एक संसार रचती जिनके साथ आँख-मिचौनी खेलती और अपनी एकांतिक स्थिति को भूल जाती। घर की गहरी संवाद-शून्यता के बीच पेड़ पर फुदकती चिड़ियों की चहचहाहट मेरी मानसिकता का नन्हा-सा पलायन बन जाते और मैं उन स्वरों में बहकर कभी टीचर-दीदी या स्कूल की सहेलियों की बातें दोहराती थी। कभी अपनी किताबी पढ़ाई को याद कर लेती थी। माँ, बाबा जैसा कोई नहीं था, जीवन में कोई नहीं। था तो बस नितान्त अकेलापन। पानी में बहती अकेली मछली जैसा अकेलापन! कोई क्यों होता है इतना अकेला ?
जितेन दा - बस इस घर में कला के साथ कुछ और खूबसूरत है तो तापोशी.....ऐसी मेधावी बच्ची जाने कहाँ से पा गया यह पगला, रखाल।
तापसी - रखाल काका ने कहा था मेरी दीदी की बेटी है, रातोंरात न उठा लाता तो यह भी पाठशाला में पढ़ने की जगह पैरों में घुँघरू बाँधकर नाच रही होती।
जितेन दा..... हम आदमी ना सही.....दीदी का जनम तो चला गया, सोचता हूँ इसे तो पढ़ा-लिखाकर इंसान बना दूँ बस!
तापसी (स्वगत्) - अपने जन्म, अपनी माँ के अस्तित्व की इतनी-सी कहानी को, मन के भीतर अमूल्य निधि-सा सहेजकर रखती थी मैं। अपनी रोज की दिनचर्या और टीचर-दीदी की बताई बातों के साथ या पुस्तकों के साथ अपने नन्हें-से कद से जैसे आगे बढ़गई थी। कनिका दी और जितेन दा ही तो मुझे स्कूल में पढ़ने बैठा आये थे। घर के जीवन के बाद वही मेरे सब कुछ थे।
जितेन दा कॉलेज में पढ़ाते थे, कनिका दी घर चलाती थी.....और उनका बेटा मलय ऐसा लगता जैसे उड़ना सीख रहा हो, परन्तु उड़ने के लिए पहले खड़ा होना सिखाना पड़ता है। मैं तो खड़े होने के प्रयास में थी कि मलय उड़कर विदेश चला गया। जितेन दा रखाल की प्रतिमाओं की खरीद-फरोख्त में शामिल थे, कमीशन जो तय होता था। तभी तो उनका रखाल के घर में आना-जाना और कारोबारी संवाद हुआ था। मुझे नाक पोंछने से लेकर कपड़े पहनने का सलीका कनिका दी ने ही सिखाया था।
(तापसी आईने के सामने बैठी है, पास में कनिका) (कनिका का प्रवेश)
कनिका - पता नहीं वहाँ कैसा होगा मेरा मलय ? (यादों में खोई-खोई-सी)
तापसी - दीदी ! क्या विदेश जाकर लोग कभी पीछे मुड़कर नहीं देखते ? क्या उन्हें यहाँ की याद नहीं आती ? आपकी याद नहीं आती ?
कनिका - आती होती तो विदेश छोड़कर फौरन यहाँ नहीं आ जाता.....मेरे पास। खैर.....। (स्वर बदलकर) अब तुझे तारापीठ नहीं चलना है क्या ?
तापसी - क्यों नहीं चलना है पहली बार बस में बैठना किसे अच्छा नहीं लगता ?
कनिका - तो जल्दी कर बस निकल जाएगी।
तापसी - बस हो गया दीदी । (दोनों चली जाती हैं विंग्स में मंच पर अँधेरा)

सीन-20

नेपथ्य से स्वर - तारापीठ आ गया.....चलो जल्दी उतरो.....। तारापीठ में हमारी मुलाकात एक साधु से हुई जिसने हमें बामखेपा के बारे में बताया। कनिका दी की उत्सुकता देख मैं भी अपने आपको वहाँ जाने से रोक नहीं सकी और हम चल दिये उस संन्यासी के साथ।
तापसी (स्वगत्) - फिर हम उस संन्यासी के साथ चल दिये। हमने देखा संगमरमर का बड़ा-सा दालान जिसके चारों ओर कमरे बने हुए थे। सचमुच जीवन में पहली बार इतना साफ फर्श देखा था उस दिन। जमीन पर बैठकर बार-बार उस सफेद चमकते हुए फर्श को छूने का जी चाह रहा था। हमारे लिए एक कोठरी का ताला खोलकर वो गेरूए वस्त्र वाला संन्यासी चला गया था। वहाँ भीतर लकड़ी का एक तखत लगा था, जिस पर एक रंगबिरंगी फूलों वाली चादर बिछी थी, एक कुर्सी भी थी। आश्चर्य ! कोठरी में भी कोई यह सब रखता है ? मैं सोच ही रही थी कि.....(कनिका की आवाज नेपथ्य से)
कनिका - तापसी जल्दी चलो साधु बाबा आ गए हैं।
तापसी - अभी आई दीदी ! (तापसी भी विंग्स में चली जाती है। मंच पर रात्रि का अंधकार गहरी नीली रोशनी हाथ में मशाल या लालटेन लिये साधु का प्रवेश जिसके पीछे-पीछे तापसी और कनिका हैं और नेपथ्य से तरह-तरह की आवाजें आ रही हैं।)

सीन-21

(भयानक दृश्य जंगल का)
कनिका - (डरते हुए) तापोसी.....तुझे डर तो नहीं लग रहा ?
तापसी - डर.....? (कुछ सोचकर) दीदी यह डर क्या होता है - क्या होता है यह डर ?
कनिका - फिर सवाल ! तापोसी तुझे कुछ समझ क्यों नहीं आता ?
कनिका - तुझे तो कुछ भी पता नहीं होता। खैर, ...वो चिता है। (चिता के जलने का स्वर)
तापसी - (कनिका को काटती हुई) चिता क्या ?
कनिका - मैं जानती थी, तू प्रश्न पूछने वाली है। तेरे दादा ठीक ही कहते हैं तेरा नाम प्रश्ना होना चाहिए। खैर,
''जब मनुष्य की मृत्यु हो जाती है तो उसके शरीर को इस जगह लाकर जलाया जाता है, लकड़ी की चिता पर रखकर। ठहर-ठहर.....अब यह मत पूछना की मृत्यु क्या होती है। जो लोग मरते हैं वो सदा के लिए दुनिया छोड़कर चले जाते हैं, जैसे तेरी माँ, तेरे बाबा।
तापसी - दीदी आपने देखा था उन्हें ?

कनिका - नहीं। (उनसे दूर खड़ा संन्यासी जाने लगता है दूसरी लालटेन लेकर) अरे यह संन्यासी बाबा तो वापस जा रहे हैं ? वो भी हमें अकेला छोड़कर ?

तापसी - दीदी, लालटेन तो एक ही थी फिर यह उसके हाथ में दूसरी लालटेन ? (अचानक जोरों से हवाओं का स्वर व पुनः बिजली चमकना प्रारम्भ कनिका पुनः डर के मारे जाप करना प्रारम्भ कर देती है।)

कनिका - नमो-नमो, अम्बे दुःख हरणी.....नमो-नमो अम्बे सुख करनी, निरंकार है ज्योति तुम्हारी तिहूँ लोक फैली उजियारी.....2

(एक पल का सन्नाटा जिसके बाद नेपथ्य से बामखेपा का स्वर)

बामखेपा स्वर - हे माँ, ऽऽ हे तारा माँ

कनिका- (काँपते हुए) सुना.....तापसी.....सुना.....तूने.....यह बामखेपा का स्वर है.....यह बामखेपा का स्वर है। तापसी (आँखों से अश्रुधारा बहने लगती है।) (और बेहोश हो जाती है।) (मंच पर अँधेरा होकर दिन का प्रकाश हो जाता है और संन्यासी भी आ जाता है।)

तापसी - दीदी.....दीदी.....उठो दीदी.....बहुत दूर जाना है। (कनिका उठते हुए)

कनिका - (संन्यासी से) आप हमें बस तक पहुँचा देगें ?

साधु - हाँ.....हाँ ! क्यों नहीं। चलो (लाईट ऑफ) (सीन समाप्त)

सीन-22

(कनिका, बस का दृश्य, जिसमें अन्य लोग भी बैठें हैं नेपथ्य से बस के चलने का स्वर)

कनिका - तापसी जल्दी आ बस निकल जाएगी। (नीली कॉपी लेकर तापसी का प्रवेश)

तापसी - दीदी यह देखो पूरे दस रूपये की आयी है।

कनिका - पर इतनी महँगी कॉपी का क्या करेगी ?

तापसी - मैं.....। मैं लिखूँगी दीदी !

अपने अनुभव में उन सब यादों को सहेजकर रखने के लिए कॉपी की आवश्यकता पड़ेगी दीदी। मैं लिखूँगी दीदी हर वो सवाल जिसका उत्तर जाना है मैंने। डर, मृत्यु, शमशान और चिता।

क्यों पहनते हैं कुछ लोग ये गेरूए वस्त्र ? कौन-सी यात्रा उत्तम थी ? बस का सफर, तारा माँ के दर्शन या मेरे भीतर चलता एक सफर ? सड़क से उठता, पुजारी से होता, माँ की अलौकिकता से वशीभूत होकर मुझे कुछ का कुछ बनाता हुआ वह बस का सफर। मुझे सब लिखना है दीदी मैं सब लिखूँगी।

सीन-23

(जतिन दा के घर का दृश्य घर में उत्सव जैसा माहौल - मलय के स्वागत की तैयारियाँ चल रही हैं। हाथ में हल्दी की थाली लिये हुए कनिका का प्रवेश)

कनिका - अरे.....भोलानाथ जल्दी करो.....वो लोग किसी भी पल आते ही होगें। और यह तापोशी अभी तक आई क्यों नहीं ?

(भोलानाथ का प्रवेश साथ में तापसी है।)

भोलानाथ - आ गई। उसी को लेने गया था घर.....।

कनिका - अरे तापोशी इधर आओ....जल्दी.....। इतनी देर.....क्यों लगा दी ?

तापसी - इतनी देर ?

कनिका - हाँ देर.....? खैर छोड़ो, यह हल्दी की थाली लो और आँगन में रख दो जल्दी करो।

तापसी - ठीक है दीदी.....। (जल्दी-जल्दी में तापसी बाहर से आते मलय से टकरा जाती है, जिससे थाली गिर जाती है। हल्दी से मलय के वस्त्र खराब हो जाते हैं।)

अरे.....बाप रे.....ये क्या हो गया.....। आपके तो सारे कपड़े खराब हो गये।

मलय - लगी तो नहीं.....आपको ?

कनिका - अरे क्या हो गया ऽऽ ? (अचानक मलय को देखकर) मलय आ गया.....।

तापसी - मलय.....? (एक पल के लिए मलय को आश्चर्य से देखती रहती है। स्पॉट लाईट दोनों पर वही संगीत बजने लगता है। कनिका के टोकते ही स्पॉट लाईट खत्म हो जाती है।)

कनिका - तापोशी, देखकर नहीं चलती ? ध्यान कहाँ है तेरा ? (मलय से) मलय बेटा, यह तापोशी है रखाल मूर्तिवाले की गोद ली बेटी।

मलय - ओह ! (आश्चर्य से) इतनी बड़ी हो गई यह ? (रास्ते से हटते हुए) जो भी हो माँ है बहुत सुन्दर। बिल्कुल मूर्ति के जैसी। कैसी हो तापोशी पहचाना ?

तापसी - हाँ.....पहचाना (बात करते हुए कनिका अवहेलना करते हुए)

कनिका - चल-चल तापोशी, साफ कर फर्श। मलय के कपड़ों पर सारी हल्दी फैला दी तूने।

तापसी - गलती हो गई दीदी, अभी पछि़ा लगा देती हूँ।

(पोंछे की बाल्टी लाने जाती है।)

कनिका - (मलय से) मलय जा बेटा तू तब तक कपड़े बदल आ। और वो.....?

मलय - बस आ गई गाड़ी। माँ प्लीज आप देख लेना। मैं कपड़े बदलकर आता हूँ।

कनिका - ठीक है।

(दोनों विंग्स में चले जाते हैं तब तक तापसी बाल्टी ले आती है और पोछा लगाने लगती है।)

तापसी (स्वगत्) - कितना सुन्दर दिखता है मलय.....बिल्कुल सपनों के राजकुमार जैसा।

(फिर पोछा लगाने लगती है नेपथ्य से मेम जैसी औरत का कनिका के साथ प्रवेश, जो गीला फर्श खराब कर देती है।)

मेम औरत - (तापसी से) ओह.....वेरी सॉरी..... मैंने तुम्हारा गीला फर्श खराब कर दिया।

कनिका - (बनावटी मुस्कान के साथ) ठीक है, ठीक है फिर साफ हो जाएगा फर्श। तुम्हें घर के नौकरों से सॉरी बोलने की कोई जरूरत नहीं है। आखिर तुम इस घर की बहू हो, हमारे मलय की पत्नी हो। चलो तुम्हें बाकी मेहमानों से मिलवा दूँ। (लाईट ऑफ एवं ऑन होते ही)

(मंच पर एक कोने में पार्टी का दृश्य जहाँ मलय और उसकी मेम पत्नी घर आये मेहमानों से हाथ मिलाते हुए, दूसरे छोर पर तापसी मेले कपड़ों में बर्तनों के ढ़ेर के बीच, भोलानाथ मेहमानों को पार्टी में शर्बत आदि पिलाते हुए)

तापसी (स्वगत्) - कनिका दीदी का अहंकार, दर्प और उसके साथ मलय की मेम पत्नी, जिसे देखकर मेरी अँधी भविष्यदर्शिता भीतर ही भीतर पिघल गई। जीवन में पहली बार जी चाह रहा था कि जोर-जोर से रोऊँ-चिल्लाऊँ, परन्तु मेरी यह इच्छा.....कमजोर-सी चाहत की लहर मेरी अपनी थी। सागर बिना लहर के भी रह सकता है। हाँ, लहर बिना सागर के अस्तित्ववान नहीं हो सकती ? और फिर उस लहर में सागर की चाहत तो कहीं शामिल ही नहीं थी। लहरें तो सागर की छाती पर ही दम तोड़ देती है। लहरों का होना उनका खोना भर है और मैं भी तो कुछ खो चुकी थी। तो फिर.....क्या था वह कहाँ जान पायी थी मैं ? हाँ उस आयोजन में भोजन परोसते, बर्तन उठाते-धोते लगने लगा था कि उस घर में मैं केवल एक नौकरानी भर हूँ। मेरा स्कूल पढ़ता अस्तित्व जतिन दा की महफिलों में सारे वार्तालाप समझता-बूझता व्यक्तित्व, केवल भोलानाथ जैसा था और कुछ भी नहीं।

कनिका दी की सभ्य ठोस दीवार को शायद भेद नहीं पाऊँगी कभी ? मलय के साथ हँसती अतिथियों से हाथ मिलाती उसकी मेम पत्नी बहुत सन्दर जोड़ी थी और दूर से देखती मैं, बदरंग साड़ी में लिपटी, मैले हाथों से जूठे बर्तन उठाए, वि.त कुरूपता में अटी बहुत दूर खड़ी हुई। उन सबकी दृष्टि से ओझल। एक अकेले से कोने में जो मेरे लिए उस समाज में नियत कर दिया था। आज पहली बार मुझे अपनी स्थिति का बोध हुआ था। अपने कुछ नहीं होने का, अपने जन्म की अस्तित्वहीनता का, रखाल काका की बेकार होती सामाजिक स्थिति का।

(लाईट ऑफ)

सीन-24

(तापसी के घर का दृश्य)

रखाल काका - (तापसी को आवाज लगाते हुए) तापोशी.....जतिन बाबू के घर से भोला आया है, तुझे बुलाया है तेरी कनिका दीदी ने.....।

नेपथ्य से - ठीक है.....भोलादादा से कहो मैं आती हूँ। (लाईट ऑफ)

(कनिका दी, जतिन दा, तापशी का प्रवेश उनके घर का दृश्य)

कनिका दी - (हाथों में साड़ी पकड़े हुए) अरे तू उस दिन बिना बताये चली गई तापोशी ! भोलानाथ ने बताया कुछ खाकर भी नहीं गई। तेरे जतिन दा पूछ रहे थे तुझे और देख तो तेरे लिए साड़ी रखी थी मैने, (देते हुए) मलय की शादी का तोहफा तेरे लिए। ले, पहन ले। मलय की बहू तो साड़ी पहनती नहीं, मेरा अरमान रह गया, ले तू पहन ले। (पुरानेपन में लौटते स्नेह के साथ)

तापसी - (चुपचाप साड़ी हाथों में लेते हुए इधर-उधर उदास आँखों से देखते हुए कमरे के भीतर से जतिन दा का प्रवेश)

जतिन दा - (हाथ में कागज पकड़े हुए) कनिका मलय का फैक्स है। ठीक-ठाक पहुँच गया।

तापसी - (पीछे मुड़ते हुए) अच्छा मैं अब चलती हूँ।

कनिका दी - तापोशी ! (अपने आँसुओं को पल्लू से पोंछते हुए) तू भी तो अब बड़ी हो गई है। अब तेरा विवाह भी कर देना चाहिए। तेरा रखाल काका बता रहा था मजूमदार मोशाय ने तेरा हाथ माँगा है।

तापसी - (आश्चर्य के साथ) क्या.....? परन्तु मुझे तो अभी पढ़ना है कनिका दी। मेरी पाठशाला की पढ़ाई? अभी परीक्षा देनी है, मुझे और फिर मेरा सपना। मेरा विश्व भारती में पढ़ने का सपना। (हाथ जोड़ते हुए रूँआसे स्वर में) मुझे पढ़लेने दो कनिका दी, आप ही मुझे समझ सकती हो। आप ही मेरा सहारा हो। मुझे बचा लो

कनिका दी - काका, आपकी बात कभी नहीं टालेगा, मैं जानती हूँ। मुझे कोई शादी-वादी नहीं करनी है, कनिका दी।

कनिका - (समझाते हुए) देख तापोशी, तेरे जैसे हालात हैं, उन्हें समझने - जानने का प्रयास कर। तेरे जन्म का इतिहास, सोनागाच्छी में बैठी तेरी माँ, उसका कलुष और रखाल का अपना चरित्र ? यह संसार और कुछ नहीं, एक सौदेबाजी की धरती है, बाजार है, जहाँ सब कुछ बिक जाता है, इस हाथ नहीं तो उस हाथ सही।

तू समझने का प्रयास कर। एक संभ्रान्त आदमी, पैसे वाला आदमी तुझे नाम दे रहा है, तेरे बेसहारा जीवन को एक ठोस अस्तित्व में बदल रहा है, तू उसे सिर झुकाकर स्वीकार कर ले। हम स्त्रियों का धर्म यही है तापोशी। इसी रास्ते चली जा, नहीं तो किसी दिन तेरा काका तुझे भी पकड़कर सोनागच्छी छोड़ आएगा, वैसे ही जैसे बहन को छोड़ आया था।

तापसी - क्या होता है सोनागच्छी कनिका दी ?

कनिका - मैं जानती थी, तू पूछेगी ?

तापोशी, सोनागच्छी कलकत्ता में एक मोहल्ला है जहाँ देह व्यापार करने वाली औरतें बैठती हैं। वहाँ एक ऐसा अँधेरा है जहाँ जाकर कोई भी औरत वापिस अपनी दुनिया में नहीं लौट पाती, वहाँ का कुत्सित अँधेरा उसे निगल लेता है। तेरे पास भी और कोई विकल्प नहीं है तापोशी। तू चुपचाप लगन करा ले। यही ठीक होगा तेरे लिए।

तापसी - मेरी पढ़ाई कनिका दी। मेरे सपने का क्या होगा ?

कनिका - बड़ी भोली है तू तापोशी। इतना भी नहीं जानती हमारे बंगाल में सपने देखने का अधिकार औरतों के पास नहीं है। तुझे भी सपने नहीं देखने चाहिये। इतना पढ़लिया, इतना जान लिया पर्याप्त नहीं है क्या ?

तापसी - नहीं मुझे और पढ़ना है कनिका दीदी।

जितेन दा - तापोशी, तेरा यह विवाह तेरा रूपान्तरण है, देख तू कुछ बन रही है, समाज की आँखों में तेरी एक पहचान उभर रही है श्रीमती तापोशी मंजूमदार.....।

(तापसी मंच के अग्रभाग पर आ जाती है। धीरे-धीरे लाईट ऑफ होकर तापसी पर स्पॉट हो जाती है और तापसी के ठीक पीछे पंक्ति में जितेन दा, कनिका, काका मजूमदार व अन्य कोरस पात्र खड़े हो जाते हैं।)

तापसी (स्वगत्) - तापोशी मजूमदार ? जहाँ तक मैं जानती हूँ काका तो किसी भी नैतिकता, सामाजिक नियम या नियमितताओं के बीच जिया ही नहीं था। तो फिर विवाह जैसी बात कहाँ से आई ?

(नेपथ्य से उभरते संगीत के साथ तापसी के पीछे पात्रों की लाईन में से एक-एक कर माईम अभिनय करते हुए पात्र निकलते हैं, सबसे पहले मजूमदार पैसे गिनते हुए उसके पीछे जतिन दा, जिसे वो पैसे देता है। फिर जतिन दा के पीछे कनिका का प्रवेश, उसे भी मजूमदार पैसे देता है और वो दोनों तापसी को समझाने का अभिनय करते हैं और मजूमदार तापसी के पीछे से काका को लाता है और ताड़ी की बोतलों की माला उसके गले में डाल देता है। अब यह बाकी कोरस पात्रों के साथ तापसी के चक्कर काटने लगते हैं। और मजूमदार गोले के बाहर से तापसी के ऊपर जाल फेंकने का अभिनय करता है और तापसी मछली की भाँति मजूमदार के इशारे पर गोले के बाहर आ जाती है और गोले के पात्र एक पंक्ति में खड़े होकर मंत्र पढ़ने लगते हैं।)

कोरस पात्र - मंगलम् भगवान् विष्णु मंगलम् गरूढ़ध्वजा,

मंगलम् पुण्डरीकाक्षम् सः मंगलाय तनयोहरि।

(लाईन बने कोरस पात्र एक गेट बनाते हैं जिसमें से लाल साड़ी पहने प्रतीकात्मक रूप से घूँघट डाले तापसी जो मजूमदार (दूल्हे) के साथ विंग्स में चली जाती है। पीछे-पीछे बाकी पात्र मंच पर अँधेरा।)

सीन-25

(आश्रम का दृश्य जहाँ वृंदा, नूराबाई, मरियम, बरौता खड़ी हैं। अधमरी अवस्था में तापसी पड़ी है, उसे समझाते हुए)

नूराबाई - क्यों भागी मंदिर से ? चलने देती जैसा चल रहा था ? तापसी.....तू तो जानती है अम्बिकादेवी को ? और अभी बुलाया है तुझे ऑफिस में।

मरियम - ओह गॉड ! कितना मारा है ! क्या जरूरत थी उनकी हेरा-फेरियों और हिसाब में खोये पैसे गिनवाने की ?

बरौता - तू तो पढ़ी-लिखी है। चुप रहती। इतना क्या कम अहसान है उनका कि हमें वैश्या नहीं होने दिया उन्होंने।

नूराबाई - हाँ ! (रोने लगती है) तभी तो.....तभी तो.....(बात काटते हुए मरियम)

मरियम - और फिर, अम्बिकादेवी का अपनी कमजोरियों को छुपाने के लिए किया गया अत्याचार कैसे बर्दाश्त करे कोई ? तापसी तो उन्हें एक आँख नहीं भाती।

तापसी - आपने बुलाया दीदी ?

अम्बिका - (नाटकीय अंदाज में तापसी का हाथ पकड़ते हुए बनावटी मुस्कुराहट के साथ) हाँ.....। इनसे मिलो तापसी। यह जयमाला देवी हैं। (जयमाला से) जयमाला जी यह तापसी है, बहुत पढ़ी-लिखी है। मौका मिले तो बहुत आगे जा सकती है।

तापसी - जी नमस्ते !

जयमाला - नमस्ते बेटा !

अम्बिका - तापसी, जयमालाजी एक स्कूल खोल रही हैं और इन्हें अध्यापिकाओं की आवश्यकता है, हमारे आश्रम में तो तू ही पढ़ी-लिखी है। जाना चाहेगी इनके साथ ?

तापसी - मैं.....? (अपने-आपको संभालते हुए) हाँ.....हाँ क्यों नहीं!

जयमाला - सोच लो बेटा ! जगह बड़ी मामूली-सी है, कठिनाइयाँ और अड़चनें भी काफी हैं, पर तुम चिंता मत करो मैं हूँ न साथ में और यह नन्दिता भी है। साथ में उद्धव जी भी हैं।

नन्दिता - हाँ.....हम सब मिलकर काम करेंगे। (तापसी को छोड़ बाकी पात्र वहीं फ्रिज हो जाते हैं।)

तापसी (स्वगत्) - बातचीत चलती रही, परन्तु मैं वहाँ जैसे नहीं थी। सोच रही थी आगे क्या है ? इन सबके भीतर की बात कौन जानता है? कौन कितना सच्चा है ? पता नहीं किस भूमिका के लिए चुना जा रहा था मुझे ? हाँ एक मधुर शब्द भीतर तक झं.त कर गया था। बेटा.....! (फ्रिज अवस्था समाप्त)

जयमाला - क्या सोच रही हो तापसी बेटा ! मैं हूँ न.....। सेतु तो बाँधने पड़ते हैं तभी पार उतरा जा सकता है।

तापसी - मैं.....मैं अभी आई.....। (विंग्स से अपनी पोटली लेकर आ जाती है तब तक मंच पर आश्रम की महिलाएँ भी आ जाती हैं उसे बिदायी देने।) (आश्रम की महिलाओं से तापसी गले मिलकर जयमाला, नन्दिता के साथ विंग्स में आ जाती है।)
(लाईट ऑफ)

सीन-26

तापसी (स्वगत्) - पहले दिन ही पाठशाला की सेविका को साथ लगाकर क्लास में पढ़ाने से पहले उन सब बच्चों को रगड़-रगड़कर नहलाया। उद्धव जी से मनुहार करके साबुन की चक्कियों का जुगाड़ किया, नाई बुलवाकर उनके बाल कटवाये, बेतरतीब बढ़े नाखून काटे गये, दो-तीन दिन में बच्चों के कपड़े भी धुले, सूखे और नन्हें-से स्कूल में अब एक कायाकल्प पसर गया है।
(साफ-सुथरी ड्रेस व अवस्था में बच्चों का मंच पर प्रवेश) (पढ़ाई करते हुए, खेल आदि खेलते हुए संगीत सीखते हुए, माईम अभिनय) (स्कूल की टीम तापसी समेत अपने-अपने काम पढ़ाने में व्यस्त है दूर से निहारती हुई जयमाला)
नेपथ्ये से गीत -
हम होगें कामयाब - हम होगें कामयाब..
हम होगें कामयाब एक दिन
हो हो मन में है विश्वास - पूरा है विश्वास
हम होगें कामयाब एक दिन,
होगी शान्ति चारों ओर - होगी शांति चारों ओर
होगी शान्ति चारों ओर - एक दिन। हो-हो मन में है विश्वास.....
पूरा है विश्वास, होगी शान्ति चारों ओर एक दिन.....
हम होगें कामयाब ।।.....2
तापसी - (ब्लेकबोर्ड पर लिखा पढ़ाते हुए) ??पढ़रहे हैं हम''
तापसी (स्वगत्) - मात्र पढ़लेने भर से जान पाता है कोई संसार, संसार की घूम-घूमैंया के कौन-से दाँवपेंच ? और केवल किताबी ज्ञान से कितना बदलता है संसार! क्या यह जानना उतना सरल है ? और जानने से उपलब्ध प्रसन्न्ता पर्याप्त है क्या कुछ भी परिवर्तित कर पाने के लिए ?
(लाईट ऑफ)

सीन-27

(उद्धव जी कथावाचक की भूमिका में बैठे कथा सुनाने की मुद्रा में। सुहागिन की वेशभूषा में जयमाला जी सलीके से बैठी हैं तथा स्कूल का पूरा स्टॉफ कोरस के रूप में बैठा है, नन्दिता, तापसी भी साथ में बैठी हैं।)
उद्धव - (कथा सुनाते हुए) रणभूमि में आकाशवाणी को सुनकर जब देवेश्वर शम्भू ने श्रीहरि को प्रेरित किया, तब वे तुरन्त ही अपनी माया से ब्राह्मण वेश धारण करके शंखचूड़ के पास पहुँचे।
तापसी - (हैरानी से) नन्दिता यह तो उद्धव जी हैं, कथावाचन भी करते हैं ?
नन्दिता - मैंने कहा था न ..... जयमाला जी की सारी व्यवस्था यही देखते हैं, कथावाचन भी उनमें से एक है।
(उद्धव जी आरती करने की मुद्रा में घण्टी बजाते हैं। लोग खड़े हो जाते हैं। लाईट ऑफ। लाईट ऑफ होते ही आरती समाप्त हो सभी चले जाते हैं। मंच पर केवल नन्दिता और तापसी हैं।)
तापसी - नन्दिता यह प्रेम क्या होता है ? क्या प्रेम ही है जीवन की सबसे उत्तम भावना ?
नन्दिता - अरे, इतना भी नहीं जानती तापसी ? प्रेम स्त्री-पुरूष के मध्य उठती एक इच्छा है, जिसे अंग्रेजी में ??इनर्जी'' और हिन्दी में ऊर्जा कहते हैं। वैसे ही मन्द-मन्द बहती ऊर्जा, जो किसी पेड़ और फूल, श्वास और वायु, वर्षा और नदी, घाटी और पर्वत के मध्य बहती है और उसे रस से सराबोर भी करती है और बगावती होकर बाँध भी तोड़ डालती है।
तापसी - मतलब ?
नन्दिता - मतलब प्रेम में मनुष्य अपनी सुध-बुध खो देता है।
तापसी - ऐसा कब होता है नन्दिता ?
नन्दिता - तब जब हमें अपने सपनों का राजकुमार या अपनी चाहत का पुरूष प्राप्त हो जाता है।
तापसी - पर मैंने तो अधिकतर पति-पत्नी को लड़ते-झगड़ते देखा है, बस। प्रेम करते हुए नहीं। प्रेम इस संसार में है क्या कहीं भी ?
नन्दिता - प्रेम है तापसी । प्रेम हमारी हर क्रिया में गूँथा हुआ है। प्रेम हमारी आत्मशक्ति है। प्रेम जब होता है तो सारे संयमों के बाँध टूट जाते हैं। सच में मैं अनुभव करती हूँ अपने रणबीर की बाँहों में। तब मैं, मैं नहीं रहती कहीं खो जाती हूँ और वो भी।
तापसी - शायद आप ठीक कह रही हैं। मैं ही प्रेम को नहीं जानती। यह भी सच है मेरे हिस्से में प्रेम लिखा ही नही भगवान ने।
(खिसियाईसी हँसी हँसते हुए)
नन्दिता - शरीर की एक भाषा होती है तापसी। एक डगमगाती हुई वासना जो जीवन के लिए उतनी ही आवश्यक है जितना पेट भरने के लिए भोजन या पानी। हर खालीपन एक भराव चाहता है। शरीर भी।
तापसी - आपने अनुभव किया है जीवन में या किताब से पढ़कर बोल रही हैं नन्दिता जी ?
नन्दिता - मैंने उस प्रेम के अनन्त सुख को अनुभव किया है और शायद इसी कारण एक परितृप्ति मेरे मन में हमेशा हर समय समाई रहती है।
तापसी - हो सकता है, परन्तु उद्धव जी का हर समय का गाली-गलोच, अपनी घरवाली को मारना-पीटना। उनकी पत्नी का आँसुओं से भीगा चेहरा सामने खड़ा पाती हूँ। जो कपड़े धोती, सुखाती, काँपते होठों में गालियाँ बुदबुदाती उनकी घरवाली हर समय भन्नाई रहती है। है न असंगत जोड़े भी इस दुनिया में ?
नन्दिता - परन्तु उनके होने से प्रेम की परिभाषा तो नहीं बदली जा सकती, प्रेम सदा ताजी, सदा जीवंत रहते जाने की अनुभूति है।
(अचानक रूककर) तू भी तो विवाहित थी तापसी, फिर क्यों ?
(तापसी धीरे-धीरे गम्भीर होते हुए)
तापसी - कुछ लोग जन्म से अकेले पैदा होते हैं, नन्दिता जी ! मैं भी थी, माँ तो थी नहीं। केवल एक काका था। फिर काका, कनिका दी और जतिन दा ने मुझे ऐसे बेच दिया जैसे मैं परछाई थी उनके लिए। मैं जैसे कुछ नहीं थी, अस्तित्वहीन पत्थर की एक शिला। बस। और फिर मेरी नियति मुझे जिसके पल्ले बाँधी गई थी वो पुरूष भी कहाँ था। अपनी शारीरिक असमर्थताओं की सारी खीज, कुण्ठा मेरे शरीर पर उतारता हुआ मुझे टॉर्चर करना उसका अपना सुख बन गया था।
नन्दिता - (उसकी पीड़ा समझते हुए) बहुत सहा तूने तापसी! विद्रोह नहीं किया ? बस बर्दाश्त करती रही चुपचाप।
तापसी - सत्रह-अठारह साल की अबोध लड़की को क्या पता होता है विद्रोह और फिर मैं भी ड्रग्ड रहती थी। पता नहीं क्या-क्या पिलाता था मुझे दूध में घोलकर, गुलाबी-सी पुड़ियाँ ? जैसे ही मुझे होश आया, बस एक अहसास जागा मन में और तब अधिक अपमान सहने की मेरी शक्तिहीनता मेरा बल बन गई। मुझे लगा बामखेपा माँ चामुण्डा मुझे चेता रही थी। बस, मैं भी उसी विश्वास में सम्मोहित होती चली गई। मेरे अपने आपमें उठ खड़े होते ही, वो मेरा पति, कमजोर पड़ गया और अपनी ही कुण्ठाओं में ग्रस्त बीमारियाँ झेलता चल बसा। सुहाग तो था भी नही फिर भी वैधव्य ओढ़ना पड़ा मुझे। सारे नाते रिश्तेदार सब पैसे के थे और किसी के पैसे पर मेरा कोई अधिकार नहीं था।
नन्दिता - (तापसी का हाथ कसकर पकड़ लेती है, डबडबायी आँखों से) ओह तापसी ! चल छोड़, पीछे मुड़कर नहीं देखते।
तापसी - वह भी शाश्वत सत्य था और आपका बताया प्रेम शाश्वत झूठ। मेरा अनुभव तो यही है नन्दिता जी इस संसार में केवल स्वार्थ बड़ा है, मनुष्य नहीं, उनकी भावनाएँ भी नहीं। शादी-ब्याह बस व्यवस्था है जिसमें हम औरतों को बाँध दिया जाता है और कुछ नहीं।
नन्दिता - ओह ! (तापसी को अपनी बाँहों में भर लेती है जो अब फूट-फूटकर रो रही है।) रो ले - रो ले तापसी, अपने भीतर की सारी कटुता को बहा दे इन आँसुओं में। अपने भीतर की ऊर्जा को संचित करके, अपनी इस साधारणता से उठकर विशेष हो जा तापसी। तेरी ऊर्जा तेरे पास है। वह दैहिक राजनीति का शिकार होने से बच गई है। उसे ही मार्जित करके, उसे ही तू अपनी क्षमता में ढाल ले तापसी।
तापसी - आप कविता लिखती हैं नन्दिता जी ?
नन्दिता - जब आत्मविभोर होती हूँ तब कविता मेरे भीतर अपने आप ही उग आती है।
तापसी - आत्मविभोर ? आत्मविभोरता घटना है क्या, जो हमारे भीतर घटती है कभी या कोई मन का विकार इच्छाओं का फैलाव, वैसा विस्तार जिसकी कोई सीमा नहीं होती ?
नन्दिता - नहीं तापसी । आत्मविभोरता समय का वो पल है जो हमारे भीतर ठहर जाता है। वह पल सुख का होता है, आनन्द का होता है। वह पल विस्मृति का पल होता है। हमें उस पल कुछ याद नहीं रह जाता, अपने दो शरीरों के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं। उस क्षण बाहर का वास्तविक जगत्, सब शून्य हो जाता है।
तापसी - (अपने आपको कुरेदकर) एक बात बताऊँ नन्दिता जी ?
तापसी - जतिन दा के यहाँ अक्सर शाम को बहुत प्रकार के लोग जमा होते थे या यों कहूँ सो काल्ड इंटेलैक्युअल्स बुद्धिजीवियों का जमघट्टा-सा लगा रहता था। हर प्रकार की चर्चाएँ होती थीं, रवीन्द्र संगीत से लेकर बाऊल गीत तक, मेरे लिए वह सब एक माध्यम था एक परिचय का, संसार की वस्तु-स्थितियो को जानने का या शायद अध्ययन का। एक बार उर्दू के एक शायर आये थे। जब उनकी कविताएँ या शायरी किसी को समझ नहीं आई थी तब उन्होंने हल्के-फुल्के शेर पढ़ने आरम्भ किये - अर्ज किया है -
नन्दिता - इरशाद-इरशाद !
तापसी - (नकल करते हुए) मेरे जनाजे के पीछे सारा जहाँ निकला। सिर्फ वो न निकला जिसके पीछे सारा जनाजा निकला।। उर्दू कविता को श्रोतागण दोहराते हैं, ऐसा रिवाज है तो हमारे एक बंगाली बाबू ने ऐसे दोहराया - (बंगाली स्टाईल में नकल करते हुए) मेरे जनाजे के पीछे सारा जहाँ निकला। केवल वो शाला नहीं निकला, जिसके पीछे मेरा जनाजा निकला। बेचारा शायर सिर पीटता चला गया।
(दोनों खिलखिलाकर हँसते हुए) (लाईट ऑफ)

सीन-28

(नन्दिता, तापसी, गायत्री बच्चों को गीत सिखाते हुए अचानक घनश्याम का प्रवेश)
गायत्री - हाँ स्टार्ट करो.....। (हारमोनियम बजाते हुए)
तापसी - देश की माटी, देश का जल
हवा देश की देश का फल
सभी बच्चे - देश की माटी, देश का जल
हवा देश की देश का फल
नन्दिता - इसे एक बार फिर से दोहराओ.....
बच्चे - *देश की माटी देश का जल*
हवा देश की देश का फल
(घबराये हुए घनश्याम का प्रवेश)
घनश्याम (नेपथ्य से) - अरे जल्दी कुसुम सरोवर चलो सब.....जल्दी आओ।
नन्दिता - अरे क्या हुआ घनश्याम जी इतना शोर क्यों ?
घनश्याम (नेपथ्य से) - वो.....म.....मौनी.....बाबा.....को पता नहीं क्या हो गया।
गायत्री - चलो बच्चों आज के लिए बस इतना ही!
तापसी - क्या हो गया मौनी बाबा को.....मुझे वहाँ ले चलो।
नन्दिता - तापसी हम भी चल रहे हैं।
(सब चले जाते हैं विंग्स में)

सीन-29

(तापसी और नन्दिता जयमाला जी का पुराना एलबम देखते हुए)
तापसी - नन्दिता जरा इधर आना!
नन्दिता - हाँ बोल तापसी!
तापसी - (एलबम में फोटो दिखाते हुए) क्या यह अपनी जयमाला जी ही है न?
नन्दिता - अरे हाँ..... यह एलबम तुझे कहाँ से मिला?
तापसी - जयमाला जी की अलमारी साफ कर रही थी तो इस बक्से के नीचे दबा हुआ था। उस जमाने में कितनी सुन्दर दिखती थी न..... अपनी जयमाला जी!
नन्दिता - हाँ.....! अरे भई फिल्म की हीरोइन रही है सुन्दर तो होंगी ही।
(जयमाला जी का प्रवेश)
तापसी - क्या जीवन रहा होगा इनका, ओटोग्राफ लेने के लिए लोगों की कतार सुन्दरता के चर्चों से भरे पड़े अखबार, बड़े पर्दे पर देखते ही तालियों की गड़गड़ाहट ऐसा ही होता है न सिने-तारिका का जीवन?
जयमाला - सिनेतारिका का जीवन बहुत ही अकेला होता है तापसी।
तापसी - मैं कुछ समझी नहीं?
जयमाला - तापसी! यह जो हम अभिनेत्रियों का प्रेम है न, वह केवल चित्रपट पर ही उभरता है।
नन्दिता - और वास्तविक जीवन में?
जयमाला - वास्तविक जीवन.....। हमारे वास्तविक जीवन में होती है एक चुप्पी, उदासी, अकेलापन। तभी तो बाहरी संसार से हमारा सम्पर्क विच्छिन्न-सा हो जाता है। हम जाना भी चाहे तो कही नहीं पहुँचते। जीवन की वास्तविकता हवाओं के हाथों में थमी रह जाती है। हमारे घर, हमारे कमरों की घुटन में प्रवेश नहीं करती। पत्रिकाओं में छपती है, हमारे अभिनय की प्रशंसाएँ हमारे सम्मान और पुरस्कार सब सतही होते हैं, नन्दिता। अन्दर के मन और शरीर की इच्छाओं का गला घोंटना पड़ता है हमें और मजे की बात तो यह है कि शरीर ही हमारा माध्यम होता है। हमारे समूचे सौन्दर्य, हमारी भीतरी कला प्रदर्शन का। उसे ही सँवारने में, बनाए रखने में सारी ऊर्जा खर्च हो जाती है और उसी की इच्छाओं का गला घोंट देना पड़ता है। है न अजीब बात। शरीर की मिल्कियत में शरीर को ही नकारना पड़ता है।
नन्दिता - मतलब ?
जयमाला - मतलब.....सिने-जगत् में उतर आने के बाद मुझे लगा कि मेरे निकट जो कुछ भी था, परिवेश, मित्र, सम्बन्धी, उन्हें लगता था मेरा शरीर, मेरा सौन्दर्य बिकाऊ है, सस्ता है, क्रय करने की वस्तु है। शायद इस कारण ही वह अभिनय के दौरान एक के नहीं बहुतों के कँधों पर टिका होता था। शायद वैसे टिका होना उसकी मजबूरी थी। निर्देशक, प्रोड्यूसर से लेकर साथ में काम कर रहे अभिनेता, नायक, खलनायक तक, हमें सभी को अपना बनाकर चलना पड़ता था। और मैं उसी प्रपात में बहती हुई कर्वे साहब के प्रति आकर्षित हो गई थी या शायद प्रेम करने लगी थी उन्हें। उनका सहारा लेकर हाथ थामकर मैं सिनेमाई जीवन की गहरी खाई में उतर गई थी, बिना सोचे-समझे, बिना तार्किक अर्थ जाने। शायद इस कारण भी कि कर्वे साहब बड़े सीरियस किस्म के व्यक्ति थे या यूँ कहूँ कि वे मिस्ट्रीकल जीनियस थे। उनकी सभ्य शालीनता के साथ-साथ उनकी लाड़ भरी बातें मेरे भीतर जैसे हर पल टहलती रहती थी। वे बहुत पढ़े-लिखे थे। उनके गम्भीर चिन्तन में एक आकर्षण जैसा था, जो मेरे मन को बाँध ले गया था, परन्तु विवाहित पुरूष से प्रेम करना बहुत खतरनाक भी था, शायद इसलिए कि उनके जीवन में उनका परिवार और बच्चे ही अहम् थे और मेरा प्रेम ? मेरा प्रेम तो भिखारी के भिक्षापात्र में डाले गये सिक्कों के समान था। मेरी चाहत का कोई मूल्य नहीं था। मेरा सारा कैरियर, मेरी फिल्मों का सारा दायित्व, मेरे रोल का चुनाव, क्या, कब, कैसे करना है, कौन-सी फिल्म साईन करनी है, कौन-सी नहीं, वही सुझाते थे। कर्वे साहब ही मेरे बैंक-बैलेंस थे। पैसा कहाँ से आता है, कहाँ जाता है, उनकी जिम्मेदारी थी। मेरा फ्लैट, मेरी गाड़ी, मेरे खर्चे सब उन्हीं के हाथों में होते थे। मेरा दुनियावी न होना उनका हथियार बन गया था, जो वह मेरे लिए प्रयुक्त कर रहे थे। एक बार किसी फिल्म के रोल के लिए मेरे विरूद्ध एक कोर्ट केस बन गया था। मैं बेअक्ल

तो थी ही, वह केस आसानी से हार गई तो कचहरी के उस भरे-पूरे परिवेश में कर्वे साहब ने मेरे मुँह पर एक थप्पड़ दे मारा। एक पल के लिए मैं सकते में आ गई। सभी कुछ ठहर-सा गया, सारी कायनात और उसकी गति। आकर्षण के समूचे तन्तु प्रेम के सतरंगे इन्द्रधनुष, चकनाचूर हो गये। आँसू भरी आँखों से सपने बह निकले थे। पुराने दृश्य अपमान के पल, गले में फँस-से गये थे। (आँसू पोंछते हुए)

तापसी - (पानी देती है) जयमाला जी पानी पी लीजिये।

(पानी पीने के बाद जयमाला)

जयमाला - कचहरी के विटनेस बॉक्स में खड़ी मैं जैसे भक् से जल उठी। मेरा समूचा अस्तित्व अपमान की आग में दहक उठा। पलटकर मैंने भी समूचे साहस के साथ एक भरपूर तमाचा कर्वे साहब के मुँह पर, अपनी चाहत के मुँह पर दे मारा। उनका चश्मा टूटकर दूर जा गिरा। उनके साथ-साथ पूरे कोर्ट रूम में गहरा सन्नाटा छा गयां मैं चुपचाप वहाँ से निकल आई।

बस, तापसी, वह एक पल मेरे जीवन का ''आई-ओपनर'' बन गया था। जैसे कर्वे साहब का वह अंतिम स्पर्श मुझे वास्तविकता के संसार में लौटा लाया था, मेरी आँखें खुल गई थीं। मैं केवल देख ही नहीं रही थी, जान भी गई थी कि इतनी बॉक्स-ऑफिस फिल्में कर लेने के बाद, इतने पुरस्कारों के बाद भी मेरे पास कुछ नहीं है।

न तो वह फ्लैट मेरे नाम था जिसमें मैं रह रही थी और न ही कोई दूसरी छत जहाँ मैं रह सकूँ। बंकि से पता किया तो मालूम हुआ वहाँ मेरे नाम का खाता कभी खुला ही नहीं था।

नन्दिता - फिर क्या हुआ जया जी ?

जयमाला - होना क्या था, पर्दे की ''स्टार क्वीन'' भरे बाजार भिखारिन जैसी खडी थी, खाली हाथ पराजित। मेरे पास चार-छह गहने थे। बस उन्हें बेच-बाचकर मैं चल पड़ी। सब कुछ पीछे छूट जाने दिया। नई फिल्में, नये प्रोड्यूसर जो मेरे पीछे यहाँ तक आये मुझे ढूँढ़ते हुए, वे सब अभिनेता भी जो मुझसे विवाह करने को आतुर थे, लेकिन ग्लैमर के मिथ्यारचित जीवन को तिलांजली दे चुकी थी मैं नन्दिता, परन्तु बहुत कष्टमय था वह समय। मेण्टल ब्रेकडाउन जैसी स्थिति में मैं पता नहीं कब तक रही। उन दिनों कर्वे साहब का सौ रूपये का मनीआर्डर आया था एक बार जिसे मैंने लौटा दिया था।

(कुछ देर आँखें बंद किये बैठे रहने के बाद)

उठते-बैठते एक भयानक अपमान नसों में ताप-सा बहता, टीसता हुआ दर्द, धमनियों में बहता रहता था। मैं बीमार रहने लगी। मैं अपनेपन की निरर्थकता को कोसती कि क्यों किया प्रेम ? क्यों सोचा कि वह भी मुझे प्रेम करता था, परन्तु प्रेम के समय सोच कहाँ साथ देती है। एक विवाहित पुरूष से प्रेम करने का मेरा अधिकार भी क्या था ?

खैर, मेरा उस समय का सच विक्षिप्तता जो भी कहो, बस प्रेम था, प्रेम परन्तु उससे भी बड़ा सच यह है कि तापसी कि इस संसार में कोई भी स्त्री या पुरूष भावनात्मक स्तर पर इतने समृद्ध नहीं होते कि प्रेम जैसी भावना की महानता को समझ सके। यहाँ सब कुछ नाटक है। सच्चाई कुछ भी नहीं है, जीने से बड़ी भूल या अपमान और कोई नहीं है तापसी ! नन्दिता वह अपमान मुझे आज भी हॉण्ट करता है।

(नेपथ्य से गाड़ी के हॉर्न का स्वर)

नन्दिता - लगता है रणवीर आ गया, अच्छा मैं चलती हूँ।

(नन्दिता विंग्स में चली जाती है। घनश्याम का प्रवेश हाथों में कागजों का पुलिंदा लिए हुए)

घनश्याम - दीदीजी आपका दिल्ली का टिकट आ गया है। कल शाम को जाना है। तैयार रहिएगा। गाड़ी का भी बन्दोबस्त कर दिया है।

तापसी - (उदास स्वर में) जया दीदी आप दिल्ली जाकर क्या करती हैं ?

जयमाला - दिल्ली में छत्रपति शिवाजी महाराज की जीवनी, इतिहास उनकी शिक्षाओं को राष्ट्रीय स्तर पर बढ़ावा देना मेरा मिशन है तापसी। बस वही करती हूँ। एक पत्रिका भी छपती है वहाँ से।

तापसी - परन्तु यहाँ का सब तो आपके जाने के बाद तो उजाड़-सा हो जाता है दीदी जी।

जयमाला - मेरे जीवन के दो ध्येय हैं तापसी, आध्यात्मिक और भौतिक। अपनी आध्यात्मिकता में चलती हुई मैं वहाँ चली जाती हूँ। जितना बन पड़ता है काम करती हूँ। पत्रिका के लिए लेख लिखती हूँ। भौतिकता में ठहरकर यहाँ श्री कुंजबिहारी की झाँकियाँ और रासलीला में मग्न हो जाती हूँ। उसमें मुझे रस आता है। और फिर इस स्कूल के लिए पैसा भी इकठ्ठा करना मेरा मिशन है ना।

तापसी - कब तक लौटेंगी आप दीदी ?

जयमाला - जल्दी लौट आऊँगी। संगीत-सम्राट् स्वामी हरिदास की जयन्ती पर लौट आऊँगी।

(स्पॉट तापसी पर)

तापसी - कितनी दुर्बल लग रही थीं जयमाला जी उस वक्त। अपनी .शकाया की तह में छुपे श्री कुंजबिहारी के प्रेम में, कितने तो उपवास रखती हैं। एक बार पूछा था मैंने तो कह रही थीं।

(जयमाला का प्रवेश)

जयमाला - उपवास भूख से मित्रता का एक मनोवैज्ञानिक बोध है तापसी। अगर हम दुःखों के प्रति या भूख के प्रति सचेत हो जाते हैं तो अपने भीतर एक क्षमता आ जुटती है और प्र.ति भी साथ देती है। इसमें भगवान का नाम जोड़ लो तो वह भी ऊर्जा प्रदान करता है और भूख के प्रति और दुःख के प्रति दृष्टिकोण अपने आप बदल जाता है।

(एकाएक) तापसी तेरी उम्र क्या होगी ?

तापसी - क्यों पूछा आपने ? (स्वगत् में हिसाब लगाकर) सोलह की थी तो शादी, दो वर्ष विवाहित रही। फिर विधवां आश्रम में तीन वर्ष, चार वर्ष स्कूल की छत्रछाया में और साथ-साथ बी.ए. तक परीक्षाएँ दे दीं, हाँ चौबीस की हूँ दीदीजी।

जयमाला - हाय इतनी छोटी उम्र है तेरी। क्या यहीं काट देगी इस कोठरी के सूनसान अँधेरे में ?

तापसी - तो क्या करूँ ? पीछे मुड़कर देखती हूँ तो मुझे लगता है मुझे पहली बार अपने लिए जी पाने का अवसर मिला है। मैं पढ़ा रही हूँ, खुद भी पढ़रही हूँ। बचपन में पढ़ना मेरा उन्माद था यहाँ के दुर्बल, गंदे, बीमार बच्चे, जाने कब से मेरी स्मृतियों में अटके हुए थे। कभी भी भूल नहीं पायी थी उन्हें, अब यहाँ इनके साथ रहकर लग रहा है कि यहाँ आना मेरी नियति थी तभी तो इतनी दूर आ गई हूँ।

यहाँ आपका सान्निध्य मुझे जो प्रदान कर रहा है वह अमूल्य है मेरे लिये। बी.ए. का परीक्षाफल आते ही मैं जीमेट की परीक्षा देना चाहती हूँ जया दीदी। आपने इतना किया है मेरे लिये, मुझे वहाँ तक पहुँचा दीजिएगा।

(अखबार हाथ में लिए घनश्याम का प्रवेश)

जयमाला - हाँ, क्यों नहीं। दिल्ली में मेरी भतीजी है। कॉलेज में लेक्चरर है तेरी सहायता अवश्य करेगी।

घनश्याम - तापसी तेरा बी.ए. का परिणाम तो आ गया। मैं कब से अखबार लिए खड़ा हूँ। तू देख ही नही रही है।

तापसी - सच.....! (झपटकर अखबार हाथ में लेकर जमीन पर फैला देती है, काँपती अँगुलियों से परिणाम खोजने लगती है।) (रोने लगती है।)

जया दीदी ! जया दीदी !

जयमाला - क्या हुआ ? रो क्यों रही है ? अरी बता न ?

तापसी - मैं, जया दीदी पूरे विश्वविद्यालय में सबसे अधिक अंक लेकर पास हुई हूँ। उत्तरप्रदेश के सारे कॉलेजों में प्रथम। मुझे तो विश्वास ही नहीं हो रहा है। (तापसी रोती हुई जयमाला जी से लिपट जाती है।)

जयमाला - इतनी खुशी की खबर और तू रो रही है। पगली है न। घनश्याम जा, भागकर मिठाई ला और इसकी भी टिकट करा दे। मैं इसे भी साथ ले जाती हूँ।

तापसी - मैं अभी आती हूँ जया दीदी । मौनी बाबा को बता दूँ।

(स्पॉट लाईट तापसी पर बाकी पात्र चले जाते हैं।)

तापसी (स्वगत्) - मैं भागती हुई कुसुम सरोवर की सीढ़ियाँ फलाँगती जा रही थी। बहुत से लोग नहा रहे थे। अपने-अपने क्रियाकलापों में व्यस्त थे। जिन्दगी अपनी आपा-धापी में बहे जा रही थी। लगा कि मुझे उभरकर वहाँ पहुँचना है जहाँ जीवन साधारणता से उठकर एक ध्येय में परिवर्तित हो जाता है। अचानक देखा एक रंगीन बड़ी-सी तितली हवा में उड़ती सामने आ गिरी। मैं ठहर गई, मैंने तितली को अँगुलियों में उठाया। दोबारा उड़ा देने का प्रयास भी किया, परन्तु वह मर चुकी थी।

जी नहीं चाह रहा था कि उसे यूँ ही फेंक दूँ। फिर मैंने उसे एक खण्डहरी दीवार के आले में उसे बड़े पत्थर से दबा दिया। मिट्टी उकेरकर उसकी कब्र जैसी बना दी, ऐसी जगह जहाँ किसी के पैर उसे रौंद न सके।

मौनी बाबा के आँगन में बहुत भीड़ थी इतनी की मुझे लौटना पड़ा। उद्धव जी के मंदिर के आगे ठिठक गई थी मैं। जी चाहा प्रार्थना करूँ तितली के लिए या शायद अपने भविष्य के लिए ? बुदबुदाया भी कुछ, पता नहीं क्या, जाप के शब्दों को याद ही कब किया था मैंने, बेमानी लगी मुझे अपनी प्रार्थना। मैं कमरे में चुपचाप लौट आई। मेज पर मुड़ी हुई पर्ची पड़ी थी। उसे खोला तो लिखा था - (पर्ची खोलकर पढ़ते हुए) समूचे विश्वास और लगन से किए गये प्रयास विफल नहीं होते। (लाईट ऑफ) तापसी विंग्स में चली जाती है।

सीन-30

स्कूल का दृश्य खेलते हुए साफ-सुथरे बच्चे नेपथ्य से संगीत बज रहा है

'हम होगें कामयाब' हम होगें कामयाब.....
हम होंगे कामयाब एक दिन.....
हो...हो.....मन में है विश्वास
पूरा है विश्वास, हम.....
होगी शान्ति चारों ओर.....
होगी शान्ति चारों ओर एक दिन.....
हो मन में है विश्वास पूरा है विश्वास ।। हम।।
हम चलेंगे साथ-साथ.....
हम चलेंगे साथ-साथ एक दिन.....
हो हो मन में है विश्वास, पूरा है विश्वास

तापसी (स्वगत्) - जीमेट की एग्जाम देकर महीने भर बाद लौटी थी मैं, बहुत आश्वस्त थी जैसे वो परीक्षा-परीक्षा नहीं मेरे विचारों प्रश्नों की भीड़ को छाँटता एक विकल्प थी। स्कूल का काम आरम्भ हो चुका था।

नन्दिता - (अचानक देखकर) अरे तापसी तू ऽऽ ! लगता है दिल्ली का असर हो गया है। कैसी बदली-बदली लग रही है। ऐनीवे, बहुत अच्छी लग रही है एकदम स्मार्ट!

तापसी - (हँसी में) क्यों मजाक कर रही है ?

नन्दिता - पहले से अधिक कान्फिडेन्ट और मोर पालिश्ड सुन्दर भी सलोनी भी।

तापसी - यह सब जया दीदी और उनकी भतीजी का किया धरा है। दिल्ली में उन्हीं के घर तो रही थी मैं, बहुत अच्छी हैं वसुन्धरा जी नाम है उनका कहने लगीं मैं बहुत देहाती लगती हूँ। अगर दिल्ली में रहना है तो यह वेश नहीं चलेगा। साड़ी बाँधने का सलीका भी उन्हीं से सीखा। बस, जबरदस्ती मेरे बाल छँटवा दिये पार्लर ले गईं। पहली बार हल्का-सा मेकअप किया तो लगा मेरा दोष-दर्शी दर्पण किसी नये चेहरे से मेरा परिचय करवा रहा था। मुझे लगा वह मैं नहीं थी, वह पुरानी तापोशी जिसे कभी असभ्य हँसी हँसने के लिए डाँट पड़ती थी। और जिसे कभी मलय के सम्मुख मात्र नौकरानी जैसी स्थिति में नकार दिया जाता था या वह, जो विधवाओं के आश्रम में काली भयंकर औरतों से रेप होती नोची-खसोटी जाती हुई औरत के मुखौटे में प्रतिबिम्बित रहती थी।

(नन्दिता की आँखों में आँसू आ जाते हैं।)

नन्दिता - अब सब भूल जा तापसी। पर क्या अब दिल्ली में काम करेगी तू ?

तापसी - हाँ.....। वसुन्धरा जी कह रही थीं मैं दिल्ली में उनके पास रह सकती हूँ। उनका विवाह नहीं हुआ, बड़ी बीमार-सी लगती हैं जाने क्या बीमारी है। खैर, काम के लिए जहाँ भी रहूँ। और काम तो करना पड़ेगा। मेरा एक सपना था न विश्वभारती का, वह तो पूरा हुआ नहीं, परन्तु यहाँ रहने का मेरा अब जी नहीं चाहता। खैर परीक्षाफल आने पर ही निश्चय कर पाऊँगी। मेरा परीक्षाफल मेरा पलायन बन जायेगा।

नन्दिता - पलायन या प्रगति ?

तापसी - पता नहीं (घड़ी देखकर) ओह मेरी क्लास का टाईम हो गया चलती हूँ।

नन्दिता - ओ.के. तापसी! (बाद में बात करेंगे।) (नन्दिता चली जाती है अपनी क्लास में) (तापसी जाते-जाते अचानक पीछे मुड़कर) तापसी पर स्पॉट लाईट

सीन-31

भोलानाथ - अरे यह तो अपनी तापोशी है। (पास जाकर) तू.....तापोशी है न यहाँ कैसे ?

तापसी - (दर्शकों की तरफ देखकर तापसी के पीछे भोलानाथ है) यह महज बंगाली सलीका नहीं लगता,.....बोलपुर ? (आँखें उठाकर भोलानाथ की ओर देखकर) अरे आप भोलानाथ काका, यहाँ ? और सब घर में कैसे हैं ?

भोलानाथ - पहचानी क्या तापोशी ? अपने छोटे बाबू मलय ?

बचपन में खेली तो थी, मलय बाबू के साथ। (तापसी के संवाद के मध्य बाकी दृश्य फ्रिज हो जाता है)

तापसी (स्वगत्) - कौन-सा बचपन ? (आवेश में) विलायती बाबू मलय.....मेम का पति मलय.....। यहाँ वृंदावन में? विधवाओं की उजाड़ता में कैसे आ पहुँचा ? कैसे (स्वगत् समाप्त)

भोलानाथ - (मलय से) छोटे बाबू, यह तापोशी, रखाल की भांजी। घर में आती-जाती थी न दीदी माँ का हाथ बँटाने। दीदी माँ भी कितना चाहती थी इसे।

मलय - तुम यहाँ कैसे तापोशी ?

तापसी - विधवा जो हूँ। (भागती हुई तापसी सीढ़ियों से ऊपर आ जाती है। वो लोग उसके पीछे-पीछे)

आप लोग कब आये ?

मलय बस कल ही (तापसी के कमरे का दृश्य)

तापसी - आओ भोला काका, भीतर आ जाओ। आप, मलय.....अगर आना चाहो तो.....मैं यहीं रहती हूँ।

(मलय भोलानाथ के पीछे-पीछे चलता हुआ कमरे के भीतर आ जाता है।)

मलय (स्वगत्) - (घर को निहारते हुए) बहुत साधारण-सा कमरा, परन्तु बेहद साफ, एक पलंग साफ-सुथरी चादर से ढ़ँका हुआ। एक मेज, एक कुर्सी पढने के लिए रखा लैम्प, दीवार पर लकड़ी के शेल्फ पर ढ़ेर सारी पुस्तकें। एक कोने में चाय आदि बनाने के लिए छोटा-सा स्टोव, छोटी-सी जाली की अलमारी, छुटपुट सामान बर्तन। सरलता सादगी में भी एक चित्रमयता प्रतिबिम्बित होती हुई। (पलंग पर बैठते हुए) (स्वगत् समाप्त)

मलय - आओ भइया इधर ही बैठ लेते हैं। तापसी, हैरानी तो हुई होगी तुझे ? मुझे यहाँ देखकर।

तापसी - तुम भी तो कल से हैरान हो रहे हो ? (चाय बनाने में व्यस्त)

मलय - खैर, तापसी तुझे इतने दिन बाद देखकर कितना अच्छा लग रहा है मैं बता नहीं सकता।

तापसी - (गिलास में चाय डालकर मलय को देते हुए) यह चाय - अब आपके लायक तो कुछ भी नहीं है, फिर भी, जैसा है, जैसा भी है।

मलय - अरे नहीं। ऐसी कोई बात नहीं है इंफेक्ट इतना अच्छा है तुम्हारा कमरा (चारों तरफ देखते हुए) माई गॉड, इतनी सारी बुक्स और इतना सब तुम पढ़ती हो ? तुम तापोशी।

तापसी - हाँ मैं ही तो पढ़ती हूँ।

भोलानाथ - अरे यह तो पढ़ने में बहुत तेज थी छोटे बाबू। हमेशा अव्वल किलास पास होती थी। वह तो छोटी अवस्था में शादी हो गई, नहीं तो ?

मलय - अच्छा! इतनी इंटेलिजेंट थी तो फिर शादी की जल्दी क्या थी ?

तापसी - चाइल्ड मैरिज।

मलय दादा ने रोका नहीं क्या ?

तापसी - अभी समाप्त नहीं हुआ है पुराना सिस्टम।

भोलानाथ - अरे ! यह कहाँ चाहती थी। वह हरामी पियक्कड़ रखाल इसका काका, पैसे खा गया मजूमदार बाबू के। बस.....करनी पड़ी शादी।

तापसी - (आवेश व उग्र स्वर) भोलानाथ काका, सिर्फ रखाल काका ही नहीं और

लोग भी शामिल थे मेरी दुर्दशा में, मेरी सौदेबाजी में। आप भूल गये क्या मेरा कन्यादान किसने किया था ? बताओ तो ?

भोलानाथ - अब मैं ठहरा सेवक, क्या बोल सकता हूँ तापसी बेटा। और अब क्या अब तो वे दोनों नहीं रहे संसार में। भगवान उनकी आत्मा.....

तापसी - क्या ? (तापसी धम्म से चटाई पर बैठ गई) काका, बताओ ना, जतिन दा, कनिका दी.....?

भोलानाथ - हाँ तापोशी! जतिन दा तो तेरी शादी के बाद ही गंभीर रूप से बीमार पड़ गये थे। पेट में भयंकर दर्द उठता था। आठ-दस महीने डॉक्टर घोष का इलाज चला। बड़े अस्पताल भी रहे। सभी कुछ करवाया दीदी माँ ने, झाड़ा-फूँकी, तांत्रिक, पूजा सब परन्तु दादा बचे नहीं तापोशी, बड़ा कष्ट सहकर गये।

(तापसी का चेहरा आँसुओं में भीग जाता है।)

तापसी - और आप ? आप उन्हें विदेश ले जाते न ? वहाँ तो बड़े इलाज हैं ?

मलय - मैं नहीं आ पाया, तापोशी। माँ ने बुलाया तो था, पर लिलिअन और हमारा प्री-मैच्योर बेबी। उनको अस्पताल में छोड़कर आना संभव नहीं था।

भोलानाथ - दीदी माँ को बड़ा धक्का पहुँचा था तापोशी। बस उसी दिन से गुमसुम रहने लगी थी। तुझे भी पुकारती थी। अपने आपमें कुछ-कुछ बोलती रहती थी। पता नहीं क्या-क्या ? तिल-तिल घुट रही थी जैसे और बस.....उसी अवस्था में प्राण छोड़ दिये। छोटे बाबू तक भी कहाँ आ पाये थे। हमने ही किया सब कुछ क्रियाकर्म, श्राद्ध जो भी बन पड़ा हमसे।

तापसी - (तमतमाये स्वर में) क्यों नहीं आये आप ? अपनी मेमसाब और बच्चों के प्रेम में माँ को भी भूला दिया ? वही माँ जो हर दिन, हर साँस में आपका नाम लेकर जीती थी। मैं भूली तो नहीं, सब याद है मुझे। जो भी मिठाई, पकवान या भोजन बनाती कहती मलय को यह अच्छा लगता है। यह पसन्द है उसे। ऐसी माँ को भुला दिया आपने ? (थोड़ा सन्नाटा तापसी रोने के बाद एकाएक अपने आपको संभालते हुए) आय.एम. सॉरी मलय बाबू मेरा तो कुछ भी अधिकार नहीं था फिर भी इतना कुछ कह दिया मैंने आपसे। मुझे क्षमा कर दें। असल में मैं कनिका दी को बहुत प्यार, बहुत श्रद्धा करती थी। वो मेरे लिए माँ जैसी थीं। शायद इसी कारण मैं अनुभव कर सकती हूँ अकेले घर में कितनी बेचैन रहती होगीं कनिका दी ? कितना तरसी होगीं आपका पोते का मुँह देखने के लिए पर क्या, कुछ भी भारतीय संस्कार नहीं बचा आपमें, मलय बाबू ? (फिर जोर से रो पड़ती है) (संभालते हुए) क्षमा करें, छोटे बाबू, मेरा अधिकार तो नहीं है। मैं होती भी कौन हूँ? मुझे सच में माफ करें। कनिका दी के मन की भटकन जानती थी मैं, इसी से कह दिया।

मलय - प्लीज तापोशी, कहती रहो, कोई तो है संसार में जो इस तरह अधिकार से पूछ रहा है, मुझे डाँट रहा है। जब से लौटा हूँ जो भी घटा उसे किसी के साथ शेयर नहीं कर पाया। एकदम अकेला हो गया हूँ।

तापसी - अकेले ही आये हो ? आपकी मेम, सॉरी पत्नी, बच्चा ?

मलय - (और उदास होकर) हाँ अकेले ही आया हूँ। वे लोग मेरी जिन्दगी में अब शामिल नहीं हैं। बच्चा तो जी नहीं सका, तापोशी। बस.....उसके बाद लिलियन और मेरा डाईवोर्स। उसी में कुछ महीने बीत गये। जब तक सब सेटल करके वहाँ से लौटा तो यहाँ सब कुछ समाप्त हो चुका था।

तापसी - आय.एम. सॉरी। (थोड़ी देर शांति के बाद घनश्याम का प्रवेश) (थैला हाथ में लिए)

बातों-बातों में पता चला वे लोग यहाँ तर्पण के लिए आए थे। पूछने पर जो भोला काका ने बताया वह मेरे लिए किसी आश्चर्य से कम नहीं था।

भोलानाथ - अब तुमसे क्या छिपाना तापोशी ? छोटे बाबू तो आये नहीं दीदी माँ के मरने के बाद। हमने जैसा बना, क्रियाकर्म कर दिया। वे सब दोस्त, मित्र, जो हर शाम घर में जमघट्टा लगाये रहते थे, खाते-पीते थे, कोई नहीं आया, हम ही ने अकेले किया सब कुछ और घर को जैसा का तैसा बंद कर दिया। दीदी माँ थीं तो भोजन मिलता था, पैसे भी। बाद में पेट भरने की खातिर दूसरी जगह नौकरी पकड़ ली। कभी-कभार जाकर बगीचे में पानी दे आते थे। घर का द्वार कभी नहीं खोला। अब जब चार साल बाद छोटे बाबू आए तो इन्हीं को चॉबी सपि दी हमने, इनकी अमानत जो

थी, सो इन्हीं ने अपने हाथ से चार साल बाद जंग लगा दरवाजा खोला। सच कहें तुझसे तापोशी.....। घर वैसा का, वैसा था। साफ-सुथरा, चमकता हुआ, वैसा, जैसा हमने बंद किया था किसी कमरे में जाला नहीं, मिट्टी, कचरा कुछ भी नहीं। और तू तो जानती है बड़े बाबू की पीतल की गुड़गुड़ी। उसकी चमक वैसी की वैसी, तम्बाखू की सुगंध वैसी की वैसी, पानी भी गरम, और भी बतायें तुझे दीदी माँ के मन्दिर में माँ की प्रतिमा पर चढ़े फूल बिल्कुल ताजे थे। गंगाजली लबालब भरी हुई थी और अगरबत्ती सुलग रही थी, जैसे अभी-अभी दीदी माँ पूजा करके उठी हो।

तापसी - झूठ कह रहे हो काका। ऐसे कैसे हो सकता है ? आज के समय में यह क्या कहानी गढ़ली तुमने? (थोड़ा-सा हँसने का प्रयास करते हुए) कोई तो होगा। शिवदेई, वह जो कभी-कभी कनिका दी के घर में तेल डालने आती थी या उनकी वह सहेली चित्रा ? कोई तो आता होगा ?

भोलानाथ - नहीं तापोशी। कोई नहीं आया। सारे कमरे के दरवाजे, खिड़कियाँ सब बंद थे। छोटे बाबू ने अपने हाथ से खोला था सभी कुछ।

तापसी - नो, इट इज अमेजिंग।

मलय - मैं खुद बहुत हैरान हुआ तापोशी। वहाँ कोई रास्ता खुला नहीं था आने-जाने का, ऐनी वे.....अभी दस-पन्द्रह दिन से हूँ वहाँ। रात को लगता है कोई है घर में। दबी-दबी एक पदचाप सुनाई देती है। पता नहीं कौन है ? शायद माँ है घर में सिरहाने आकर बैठती है, मंदिर में अगरबत्ती जलाती है। उसकी साँसों को अपने बहुत निकट सिर के पास अनुभव करता हूँ तापोशी। आई केन फिल समबडी ब्रिदिंग.....रिअली.....इट इज ट्रू।

तापसी - तो ? (सोच में पड़ जाती है।)

तापसी - शाम को मौनी बाबा से पूछ लीजिए बाबूजी। बहुत मानता है उनकी वो बता पाएँगे।

मलय हाँ, तापोशी। हम भी उनकी चर्चा सुनकर यहाँ आए हैं। सुना है, वे मौत के द्वार से सशरीर लौटे हैं। बड़ा नाम है उनका।

तापसी - उनका नाम बोलपुर तक पहुँच गया ? ताज्जुब है।

मलय - मैंने उनपर आर्टिकल पढ़ा था किसी पत्रिका में तभी तो आया हूँ। नहीं तो क्या विश्वास कर लेता भोलानाथ की बातों का ?

तापसी - ओह ! समझ गई कुछ लोग मरकर भी नहीं मरते हैं। वे हमारी सोच के भीतर जीवन्त रहते हैं। हमारे विचारों में उनकी आईडेण्टिटी, उनका अस्तित्व वैसा ही रहता है, जैसा हम चाहते हैं।

सीन-32

तापसी (स्वगत्) - मौनी बाबा ने मलय का प्रश्न सुना - भोलानाथ का अपनी तरह का वर्णन, बाबा ने अपनी काली स्लेट पर सफेद चाक से कुछ वाक्य लिखे, जिन्हें मलय ने एक कागज के पर्चे पर उतार लिया और उसके बाद बाबा की खिड़की खट से बंद हो गई। आखिर रहा नहीं गया और मलय से पूछ ही लिया। (मलय के पास जाकर) क्या बताया मौनी बाबा ने ?

मलय - (पर्चा तापसी को दे-देता है और एक तरफ चला जाता है।) यह दिया है, मेरी तो कुछ समझ में नहीं आ रहा है।

तापसी - (पर्चा पढ़ते हुए) उनकी आत्मा भटक रही है, क्योंकि विश्वासघात हत्या से भी अधिक निकृष्ट कर्म है। द रिस्पोंसबिलिटी इज ऑन मैन, नाट ऑन गॉड।

मलय - ऐसे उदार, प्रेम करने वाले, सरल हृदय दम्पत्ति ने किसके साथ किया होगा विश्वासघात, किसके साथ ? (तापसी की आँखों में देखकर) तापसी - तुम तो माँ-बाबा को मुझसे अधिक जानती थी। तुम बहुत निकट थी उनके। बता सकोगी कोई घटना, दुर्घटना, कुछ भी, कौन था, किसके साथ किया था, उन्होंने विश्वासघात ? किसके साथ ?

तापसी - पता नहीं मलय। मैं तो बहुत छोटी थी। जब मेरा लगन हो गया था, उन्होंने ही तो किया था मेरा कन्यादान।

भोलानाथ - (कुछ याद करके) ओह माँ (कसकर तापसी का हाथ पकड़ लेता है) जिस दिन श्राद्ध की पूजा का निर्णय लिया गया था, उसी दिन सुबह-सुबह जयमाला जी का फोन आ गया था, मैं बताना भूल गया।

तापसी - जयमाला जी का फोन ? क्या कहा उन्होंने ?

भोलानाथ - आपसे कोई जरूरी बात करना थी शायद।

घनश्याम - चलो तापसी मैं तुम्हें बूथ पे ले चलता हूँ।

सीन - 33

तापसी - (टेलीफोन बूथ पर नम्बर डॉयल करते हुए)

जयमाला- हॅलो कौन ?

तापसी - जयमाला जी मैं तापसी आपने फोन लगाया था सुबह, मुझे अभी पता चला।

जयमाला- खुशखबरी देने के लिए फोन किया था। तेरा परीक्षाफल आ गया है।

तापसी - क्या.....मेरा परीक्षाफल आ गया है ?

जयमाला - हाँ! तू बहुत अच्छे नम्बरों से पास हो गई है बेटा।

तापसी- म.....मैं पास हो गई (खुशी के आँसू आ जाते हैं।)

जयमाला - हाँ अब पन्द्रह दिन के लिए तुझे विदेश जाना होगा। जल्दी से दिल्ली आ जा पासपोर्ट बनना है। फॉर्म वगैरह भरने हैं। हवाई जहाज की टिकट खरीदना है।

तापसी - (गला भर आता है) हाँ.....आती हूँ जया दीदी। आपको फोन करूँगी आप कितना करोगी मेरे लिए ?

जयमाला - तू चिन्ता मत कर। बस, आ जा। (फोन बंद कर देती है।)

घनश्याम - (खुश होकर) आपने तो कमाल कर दिया तापसी दीदी। आपने तो जैसे आसमान छू लिया हो। कैसे हालात थे आपके और इतनी पढ़ाई की। इतनी खुशी का समाचार है और आप उदास हैं ?

तापसी- सोच रही हूँ मेरा हर सपना मौत से ही क्यों शुरू होता है। कनिका दी और जतिन दा का आज श्राद्ध है। वे मेरी आत्मा, मेरी चेतना, मेरे धैर्य और जीवन पर किये विश्वास का एक बहुत अभिन्न, मूल्यवान हिस्सा थे। उसके बाद भाषण देने वाला वह पत्रकार और.....(लाईट ऑफ) (घनश्याम हैरान होकर तापसी को देखता है। एकाएक तापसी चुप हो जाती है।) (लाईट ऑफ)

सीन-34

(भोलानाथ और घनश्याम मिलकर सामान बाँध रहे हैं। मलय एक कोने में बैठा है। (तापसी के पास आकर)

मलय - तापोशी ! तुम भी चलो न हमारे साथ बोलपुर ? लैट मी डू समथिंग फार यू। विच माइट हील योर वूड्स।

तापसी - नहीं मलय। मुझे तुम्हारी कृतज्ञता नहीं चाहिए। मेरी जिन्दगी में तुम्हारा दखल तो कभी नहीं था।

मलय - सच तापोशी यू फैस्सीनेट मी। मैंने तुम्हें पहले कभी देखा ही नहीं, पहचाना भी कहाँ ? नहीं तो इतना सब..... क्यों होता तुम्हारे साथ ?

तुम्हारी दोस्त नन्दिता ने मुझे बताया। ऐनीवे तापोशी, चलो बोलपुर। वहाँ अपना **सपना पूरा करो -** जिस विश्वभारती में पढ़नहीं सकी वहाँ पढ़ाने लग जाओ। आई प्रॉमिस यू ए गुड लाईफ।

तापसी (स्वगत) - अपने कानों पर विश्वास नहीं हुआ मुझे। ऐसे वाक्य तो जीवन भर सुनने को नहीं मिले। कितना तरसी थी मैं इस जीवन के लिए। (मलय के पास जाकर) (आँखों में आसू भरे)

तुम शायद नहीं जानते मलय, मेरे जन्म का इतिहास, भोलानाथ काका बताएगे। वो जो मेरे माथे पर लिखा है, देहव्यापार करती थी मेरी माँ सोनागाच्छी में, पता नहीं जीवित भी है या मर खप गई या वो भी प्रेत-योनियों के किसी खंडहर में भटक रही है, पता नहीं ? मेरे लिए क्या सहानुभूति। मेरा तो यह होना ही था। विधवा से, परछाइयों से शादी कोई नहीं करता मलय। बंगाल का आकाश तो वही पुराना है आँधियों से अटा हुआ।

मलय - मैं किसी की भी चिंता नहीं करता तापोशी, यू डोन्ट वरी।

तापसी - नहीं मलय, मैं मेरी देह तो अपने-आप से हमेशा अजनबी बनी रही, सुनसान घाटियों की तरह अपने को नकारती हुई, जिनमें पत्थर तो फेंके जा सकते है, मगर फूल नहीं उगाये जा सकते। मलय, मुझे शरीर जीने का सलीका कभी आया ही नही। (भागकर जाने का प्रयास करती है सामने भोलानाथ काका आ जाते है)

भोलानाथ - तुम चलो न तापोशी। हमारे साथ बोलपुर। दीदी माँ और मालिक के विश्वासघात.....। (बीच में टोकते हुए तापसी)

तापसी - नहीं काका नहीं। कुछ मत कहना, क्योंकि नाटक को सबसे अधिक नाटकीय बनाता है उस दृश्य पर पर्दा डालना। (पास आ चुके मलय से) मलय बोलपुर तो दिल्ली होते हुए जाओगे न?

मलय - दिल्ली तक तो हम साथ में ही चलेंगे तापोशी।

तापसी - ठीक है।

मलय - भोलाकाका तापोशी का सामान भी टेक्सी में रख लो।

(लाईट आफ, स्पाट लाईट तापसी पर)

(जिसने शाल ओढ़ रखी है अब सफेद साड़ी के ऊपर)

तापसी (स्वगत) - सामान टेक्सी में रख लिया गया था। मैं सबसे विदा लेकर टैक्सी में मलय के साथ पीछे वाली सीट पर बठि गई थी। भोलानाथ - आगे की सीट पर बैठा था। जाते हुए खिडकी से बाहर देख रही थी मरी हुई तितली की कब्र, मंदिर का अहाता, उद्धव भगवान की पथराई आँखे, मौनी बाबा, सपेरों के बच्चे, और कुसुम सरोवर जो अब काफी पीछे छूट गया था।

टैक्सी का दरवाजा खोलकर दिल्ली की उस भीड़-भरी सड़क पर जयमाला - जी के घर जाने वाले चौराहे पर पीछे बिना देखे उतर गई थी मैं, जहाँ जयमाला जी ने अपने भाई के घर में मेरे रहने की व्यवस्था कर दी थी। यह जैसे मेरा ट्रेनिंग पिरियड था और मैं अमेरिका जाने के लिए, एक नये जीवन के लिए विशेष तत्परता से तैयार हो रही थी। (नेपथ्य से संगीत आज मैं ऊपर आसमा नीचे..... जिसमें तापसी को जयमाला, वसुन्धरा, अतिरिक्त प्रेमदर्शाते हुए प्रदर्शन मूकाभिनय द्वारा। अचानक वसुन्धरा खासते हुए विंग्स में चली जाती है)

तापसी (स्वगत) - मैं बार-बार अविश्वास से उस फाईल को देखती जिसमें मेरे सब परीक्षाफल थे और कॉर्नेल विश्वविद्यालय का वो पत्र भी था जो मुझे आगे की पढ़ाई के लिए वहाँ अमेरिका आमंत्रित कर रहा था।

(फाईल उठाकर हाथ में ले लेती है) (अचानक नेपथ्य से वसुन्धरा के खाँसने का स्वर। वसुन्धरा, अधिकतर अस्वस्थ रहती थी, बीच-बीच में उसे अस्पताल में भी रहना पड़ता था। शायद यही कारण था कि तीस-पैतीस वर्ष की उम्र पार कर जाने पर भी उसका विवाह नहीं हुआ था। लाईट ऑफ)

सीन-35

(अस्पताल का दृश्य एक पलंग पर वसुन्धरा लेटी है, पास में तापसी खड़ी है)

तापसी - वसुन्धरा जी मुझे तो विश्वास ही नहीं होता कि मेरी एक पहचान बन चुकी है। क्या थी मैं और क्या हो गई हूँ ? और कितना उज्ज्वल होगा मेरा भविष्य ?

यह सब जयमाला जी और आपकी वजह से ही सम्भव हुआ है।

वसुन्धरा - और तुम्हारी मेहनत, लगन.... टेलेंट..... उसका क्या..... हमने तो बस तुम्हारा सहयोग किया है तापसी। यह सब खूबियाँ तुम्हारे भीतर नहीं होती तो हम कुछ नहीं कर सकते थे। (खांसने लगती है)

तापसी - अरे..... वसुन्धरा जी.... आप आराम कीजिये। रूकिये मैं पानी लाती हूँ।

वसुन्धरा - (इशारे से मना कर देती है) तुम्हारा पासपोर्ट, वीजा सब चेक कर लिया है न तापसी ?

तापसी - हा..... । इस फाईल में सब ठीक से रखा है दीदी, अमेरिका पहुँचते ही फोन करूँगी, आप अपना ध्यान रखना।
(जयमाला जी का प्रवेश हाथ में भगवान का प्रसाद है मिठाई)
जयमाला - बिना मुँह मीठा किये तो मैं तुझे यहाँ से कही भी जाने नहीं दूँगी तापसी।
तापसी - आपका आशीर्वाद लिये बिना तो मैं कही नहीं जाने वाली जया दीदी।
जयमाला - यह ले प्रसाद खाकर मुँह मीठा कर ले।
(तापसी प्रसाद खाती है) (लाईट ऑफ)

सीन-36

(नेपथ्य से माईक से एयरहोस्टेज के एनाउसमेंट जिसके साथ अन्य कोरस पात्रों द्वारा हवाई जहाज के भीतर का दृश्य। तापसी आकर पलंग पर बैठ जाती है जो अब हवाई जहाज की सीट बन चुकी है। तापसी के साथ अन्य यात्री भी है, एयरहोस्टेस आती है, आदि-आदि दृश्य बनाते पात्र प्लेन उड़ने की ध्वनि के साथ) (स्पाट लाईट तापसी पर)
तापसी (स्वगत) - हवाई जहाज के अजनबी परिवेश में प्रवेश करते मैं अपने अन्दर बहुत घबरा रही थी, और प्रयास भी कर रही थी की सहज रहूँ, इसी से परिचारिका के बताये स्थान पर बैठ गई थी। एक सुरक्षित चुप्पी को शॉल की तरह अपने शरीर के आसपास लपेट लिया था।
परिचारिकाओं के अभिवादन से भरा यान धीरे-धीरे हवा में तैरकर, गोल चक्कर काटता धरती को दूर कहीं नीचे छोड़ता आगे बढ़ा जा रहा था। भारत की धरती शून्य होती हुई आँखों से ओझल होती जा रही थी। जहाँ तक दृष्टि जाती थी। बादल ही बादल गुच्छा होते हुए तमाम रूढ़ियों, नियमों, कामयाबियों से अलग-अलग नये समीकरण हवाओं में फैला रहे थे।
ऐसा लग रहा था मानो अचानक बादलों के हाथ शक्तिशाली हो गये थे, और यान को फूलों की तरह कन्धों पर उठाये लिये जा रहे थे।
(नेपथ्य से पुनः उड़ने का स्वर) (स्वर धीमा होते ही संवाद प्रारम्भ होगा)
छोटे से बैग में साथ लाई हुई पुरानी नीली कापी खोलकर, घुटनों पर फैला ली थी। कागज पीले से हो गये थे। पुरानेपन की हल्की सी गंध भी जैसे उनमें समाने लग गई थी। (पन्ने पलटते हुए)
एक नितान्त नये पन्ने पर जयमाला जी के छोटे भाई का पता नोट किया हुआ था और कॉलेज की फैलोशिप का आमंत्रण भी रख लिया था जो न्यूयार्क जैसे बड़े शहर के अजनबी परिवेश में ही मेरा सेतु बन गये थे। जयमाला जी के छोटे भाई ही मुझे हवाई अड्डे पर लेने आने वाले हैं। जयमाला जी ने फोन पर बात की थी, वो अवश्य आएँगे। ऐसा लग रहा है जैसे मैं पहली बार कुछ हो पा रही हूँ क्या सच में ? प्रश्न, प्रश्ना, प्रश्नाकुल अंतर।
इस अनंत में फैले आकाश की तरह प्रश्न ही मेरे सृजन का एकमात्र व्योम है और रहेंगे भी। चलो आँखें बंद कर लेती हूँ, अब तो एक निष्ठापूर्ण विश्वास आँखों में नींद-सा भर आया है, सो जाती हूँ।
(तापसी चादर ओढ़कर सो जाती है। प्लेन की आवाज तेज होकर अचानक थम जाता है। प्रकाश परिवर्तन के साथ नाटकीय तरीके से पूरा दृश्य परिवर्तित हो जाता है।)
हवाई जहाज की सीट के स्थान पर तापसी अस्पताल के पलंग पर आ जाती है, जहाज बने कोरस पात्र सरकारी अस्पताल के वार्डबॉय, परिचारिका नर्स बन जाती है। अन्य यात्री मरीजों का अभिनय करने लगते हैं जो अब तापसी नींद से जागती है। उसके बाल असहज बिखरे-से चेहरे पर दर्द के भाव तो भी आश्चर्य के साथ) साड़ी के ऊपर पट्टी लाल हो चुकी बँधी है।
तापसी (स्वगत्) - (आश्चर्य से इधर-उधर देखकर) आँखें जब भी खुलती हैं तो दृश्य इतने अजनबी क्यों होते हैं ? (अलाप) (अचानक बदबू महसूस करते हुए) तो क्या वायुयान टकरा गया कहीं ?
(कहीं से कोई न पाकर गहरी निराशा के साथ चीखकर) कहाँ हूँ मैं, कोई बताएगा क्या ? मैं कहाँ हूँ ?
नेपथ्य से महिला स्वर - अरे होश में आ गई.....?
तापसी - (उठने का प्रयास करती है, लेकिन उठ नहीं पाती, दर्द के कारण चक्कर आ जाते हैं। पट्टी बाँधी देखकर और हैरान हो जाती है) क्या हुआ मुझे.....अरे कोई बताता क्यों नहीं ?
(नर्स का प्रवेश) (जिसका व्यवहार परिचारिका के एकदम विपरीत है कठोर भंगिमा, भावविहीन चेहरे से घुड़कर)
नर्स - हाँ, पूछ क्या पूछना है, मैं बताती हूँ।
तापसी - नर्स.....आह.....!
नर्स - ज्यादा हिल-डुल मत, देख हाथ की सुई हिल गई है, ढेर सारा खून बह गया है।
तापसी - प्लीज बताइये न मैं कहाँ हूँ ?
नर्स - तू दिल्ली के अस्पताल में है।
तापसी - क्या हुआ मुझे, मैं कैसे पहुँची यहाँ ?
नर्स - तू सड़क पर बेहोश पड़ी थी, कोई राह चलता यहाँ भर्ती करा गया तेरे को। अपेन्डिक्स फट गया था तेरे पेट का। जानती है अपेन्डिक्स क्या होता है ? एक ग्रंथि, इसी से ऑपरेशन करना पड़ा....अच्छा अब सीधा लेट इंजेक्शन लगाती हूँ। (नर्स के इंजेक्शन लगाने के बाद) (तापसी बेहोश होने लगती है।)
तापसी - ओह यह दर्द.....पता नहीं मुझे किस पाताल-लोक में घसीट रहा है। (सो जाती है) (लाईट ऑफ) (ऑन होते ही) वसुन्धरा, जयमाला जी.....आह ऽऽ यह दर्द कहाँ से उठा यह दर्द ? आह.....जया दीदी ऽऽ वसुन्धरा जी ऽऽ ! (फिर बेहोश हो जाती है लाईट ऑफ होकर तापसी पर स्पॉट लाईट में बदल जाती है, बाकी दृश्य फ्रिज)
तापसी (स्वगत्) - (पलंग से उठकर दर्शकों से संवाद) कमरे के खालीपन में कोई नहीं था, पास के प्रायः सभी बेड खाली पड़े थे। केवल एक चारपाई पर एक स्त्री सोई पड़ी थी और कोई नही था, न कोई नर्स, न डॉक्टर, न किसी की परछाई। नियत समय पर एक औरत आती दो समय का खाना, खिचड़ी, भात, चाय दे जाती बस। नर्स आती मशीनी गति से नब्ज देखती, दवाई की गोली खिलाती एक इंजेक्शन लगाती और चली जाती। और वो इंजेक्शन मुझे किसी बेहोशी जैसी नींद में पहुँचा देता। समय का हिसाब पल, घण्टे, सुबह, शाम, दोपहर सभी कुछ जबरदस्ती की नींद में जाने कहाँ खो जाते थे।
(पुनः पलंग पर लेटकर दर्शकों से संवाद)
अब तक इंजेक्शन के साथ-साथ बेसुधी के सच को समझ गई थी, इसी कारण बहुत जिद करके एक दिन होश में रह पाने का प्रयास करने लगी। पट्टी बदले जाने के समय खुली आँखों से अपने पेट के गोलाकार घाव को भी देख चुकी थी मैं, और जान गई थी कि घाव कोई विशेष नहीं भरा है। (कुछ लोगों के निकट आते ही बेहोशी की नाटकीय मुद्रा में दर्शकों की तरफ मुँह करके लेटी तापसी जिसकी पीठ के पीछे डॉक्टर, नर्स और जयमाला आकर खड़े हो जाते हैं, तापसी को बेहोश समझकर)
जयमाला - डॉक्टर, अब ठीक है न लड़की, घाव भर गया है ना ? आप इसे कब तक छुट्टी देंगे? (फ्रिज हो जाती है।)
तापसी (स्वगत्) - जयमाला जी.....!
डॉक्टर - हाँ, शी इज ओ.के. घाव भर रहा है, जैसा भाई जी ने कहा था अभी हम इसे ड्रग्ड रख रहे हैं, इसलिए कि होश में आने पर जब इसे अहसास होगा कि इसकी एक किडनी निकाल ली गई है तो इसे बहुत धक्का लगेगा।
जयमाला - वसुन्धरा के शरीर ने तो इसकी किडनी ठीक से ऐक्सेप्ट कर ली है न डॉक्टर ?
डॉक्टर - हाँ, आप बेफिक्र रहिये, शी विल बी नॉर्मल, अब वह बिल्कुल ठीक हो जाएँगी।
जयमाला - (मृदु स्वर में) और ये तापसी ?
डॉक्टर - इसको तो अभी समय लगेगा, अक्सर डोनर या देने वाले को बाद में पछतावा होता है और बहुत बार पेशेन्ट डिप्रेशन में चला जाता है।
नर्स - पर डॉक्टर इसे तो हमने बताया है कि तुम्हारा अपेन्डिक्स का ऑपरेशन हुआ है - किडनी के बारे में तो वह कुछ भी नहीं जानती।
तापसी - (चीखते हुए) ओह, डॉक्टर.....यह दर्द.....कौन हैं आप लोग ? क्या कसूर है मेरा ओह (डॉक्टर का हाथ पकड़ लेती है) तो यह था आपका असली रूप जयमाला जी ?

डॉक्टर - आप ठीक हो जाएँगी। बिल्कुल नॉर्मल।
तापसी - शी विल बी नॉर्मल, वसुन्धरा ठीक हो जाएगी और मैं ? डॉक्टर हाऊ अबाउट मी ? (उठने के प्रयास में पट्टी का रक्त बहने लगता है, नर्स उसे पकड़ लेती है।)
डॉक्टर - इंजेक्शन दो जल्दी, क्या सुबह इंजेक्शन नहीं दिया था ?
जयमाला - नर्स, तुम्हारी केअरलेसनेस से इसने लगता है सब सुन लिया है, शी केन बी डिलेरिया !
डॉक्टर - बुखार भी बढ़रहा है.....। (नर्स इंजेक्शन तैयार करते हुए तापसी रोते हुए फटी आँखों से जयमाला को देखती है। इंजेक्शन लगते ही तापसी धीरे-धीरे बेहोश हो जाती है)
डॉक्टर - इसके किसी रिश्तेदार को बुला लीजिये, अकेली पड़ी रहती है, हम लोग कब तक इन्हें बेहोश रखेंगे। कोई तो होना चाहिये जो इन्हें मोरल सपोर्ट दे - इमोशनल सपोर्ट इतने बड़े ऑपरेशन के बाद जरूरी होता है फिर आपने तो काफी रकम दी होगी इसे ?
(लाईट ऑफ) (नन्दिता का प्रवेश)
नन्दिता - तापसी.....तापसी.....उठ.....यह क्या हो गया है तुझे तापसी ?
तापसी - (बेसुध अवस्था में धीरे-धीरे आँखें खोलते हुए उसे छूती है) नन्दिता ?
नन्दिता - हाँ.....तापसी मैं नन्दिता.....यह क्या हो गया है तुझे ?
तापसी - नन्दिता, आप यहाँ मुझे प्लीज कम से कम मेरी इस हालत की वास्तविकता तो बता दें, मुझे कोई कुछ नहीं बताता।
नन्दिता - तू घबरा मत तापसी, मैं आ गई हूँ न सब ठीक कर दूँगी।
तापसी - तू आई.....कैसे ?
नन्दिता - मुझे घनश्याम ने बताया तेरे बारे में तापसी, तू दिल्ली के अस्पताल में है। तेरा ऑपरेशन हुआ है तेरी एक किडनी या गुर्दा जयमाला - जी की भतीजी के लिए निकाल लिया गया है।
तापसी - क्या उन्हें कोई और नहीं मिला किडनी डोनेट करने के लिए ? इसलिए मुझे ही बनाया बलि का बकरा ?
नन्दिता - आराम से.....तापसी (सहारा देकर तकिये से टिकाकर बिठाती है।)
तापसी - पता नहीं कितने दिन बाद बैठी हूँ। आह ऽऽ लगता है पीठ जैसे लकड़ी हो गई है पड़े-पड़े।
नन्दिता - ला मैं पीठ पर हाथ फेर देती हूँ। (पीठ सहलाती है) ओह तेरी यह पट्टी।
तापसी - पता नहीं कब खुलेगी, कब मैं अपने पैरों पर खड़ी हो सकूँगी, पता नहीं कब ?
नन्दिता - जी, एक किडनी के साथ सब कुछ सामान्य तो हो जाता है न ? क्या मैं फिर से नॉर्मल हो जाऊँगी क्या ?
नन्दिता - तापसी डॉक्टर कह रहा था, कुछ लोग तो पैदा होते ही एक किडनी के साथ हैं और सारा जीवन नॉर्मल रहते हैं। और फिर तूने तो अपनी एक किडनी से वसुन्धरा को जीवनदान दिया है। उसकी शुभकामनाएँ भी तो हैं तेरे साथ, है ना.....? चल, मैं तेरे कपड़े बदलवा देती हूँ।
(पलंग के नीचे से खींचकर हैण्डबेग निकालती है जिसे तापसी ने विदेश जाने के लिए तैयार किया था।)
तापसी - नन्दिता, बड़ा आश्चर्य हो रहा है मुझे, एक तरफ तो जयमाला जी और उसके परिवार ने मुझे सब्जबाग दिखाये। मेरे साथ इतना अच्छा व्यवहार किया कि मैं अपने पुराने सभी दुःख भूलकर एक नये भविष्य की कल्पना में डूब गई। दूसरी ओर मेरी ऐसी दुर्गति ? मुझसे पूछा तो होता, किडनी क्या उनके लिए तो खुशी से मैं अपना जीवन भी कुर्बान कर देती, परन्तु यह मेरे भाग्य का, ऐसा कठोर रूपान्तरण, इतना बड़ा धोखा ?
नन्दिता - तू ठीक कह रही है तापसी ! मैं भी बहुत हैरान हूँ। तुझ पर जयमाला जी इतनी मेहरबान क्यों थीं, वो तेरा पासपोर्ट ?
तापसी - हाँ, इसी बैग में होगा, मेरी फाईल भी होगी कार्नेल यूनिवर्सिटी लिखा है उस पर ध्यान से देखिये ना।
नन्दिता - (पूरा बैग पलट देती है) यह देख इसमें कपड़ों के अलावा केवल यह नीली कॉपी है। थोड़ी-बहुत जरूरत की वस्तुएँ और ये छोटे-से बटुए में कुछ रूपये - इसके अलावा कुछ भी नहीं है इसमें।
तापसी - तो फिर वो सब क्या था ?
नन्दिता - तेरा पासपोर्ट बना भी था या बस.....एक बहकावा जैसा था तापसी ?
तापसी - पता नहीं, जहाँ तक मुझे याद पड़ता है बना था। पासपोर्ट हो सकता है उन्हीं ने संभाल लिया हो, अब मैं कहाँ जा पाऊँगी, कहीं भी नहीं।
नन्दिता - मुझे पता है तापसी तू जनरल वार्ड के इस मामूली बेड पर है और वसुन्धरा कीमती प्राइवेट रूम में। मुझे नहीं लगता तेरी दवाइयाँ आदि भी ठीक हैं, जहाँ तक मैं जान पाई हूँ तुझे ड्रग्ड पर रखा जा रहा है, परन्तु बेहोशी तो घाव भर जाने का ईलाज नहीं है तापसी ?
तापसी - आखिरी बार प्रसाद खाया था मैंने उनका दिया हुआ और उसके बाद चक्कर आ गये थे। तो क्या संसार में जयमाला जी ही रह गई थीं मेरे साथ ऐसा व्यवहार करने के लिए ? नन्दिता जी, मैंने उन पर अटूट श्रद्धा की थी, वैसी ही जैसी कनिका दी और जितेन दा पर। उनके हाथों में सपिंी थी अपने जीवन की बागडोर, अपना भविष्य। मेरे इतने परिश्रम का क्या होगा नन्दिता जी?
नन्दिता - चल लौटकर गोवर्धन चल। वहीं रह तापसी जहाँ थी तू। अब तेरे लिए ऐसे कमजोर स्वास्थ्य के साथ कोई रास्ता भी तो नहीं बचा है।
तापसी - मुझे नहीं लगता अब मैं वहाँ रह पाऊँगी, वहाँ के कण-कण में जयमाला जी के प्रति किया अगाध प्रेम, विश्वास.....उसकी टूटी किरचें, कैसे जी पाऊँगी वहाँ ? (नर्स नन्दिता को धमकाते हुए)
नर्स - चलो जाओ भई, मरीजों से मिलने वालों का समय खत्म हो गया है।
तापसी - मेरे मिलने वालों के पास समय ही कब था, वह भी मेरे लिए, वह तो कब का समाप्त हो चुका है।
नन्दिता - नर्स, आपने इसे ऐंटीबॉयोटिक दवाएँ तो दी ही नहीं, इसका घाव, इंफेक्शन कैसे ठीक होंगे ?
नर्स - हम क्या करें ? जो डॉक्टर बोलेगा, हमको तो वैसे ही करना है। अच्छा, अब चलो आप जाओ, टाईम खत्म हो गया ना....।
नन्दिता - (जाते हुए नन्दिता) चलती हूँ तापसी मैं फिर आऊँगी। (नन्दिता चली जाती है तापसी पर स्पॉट लाईट, स्वगत् संवाद) पुनः लाईट ऑफ-ऑन।
नन्दिता - चल तापसी, चल मेरे साथ, तुझे किसी अच्छे डॉक्टर को दिखाती हूँ। जब तक ठीक नहीं हो जाती तब तक मेरे घर पर रहना, जब ठीक हो जाएगी तो फिर विचार कर लेंगे कि भविष्य में क्या करना है तुझे।
तापसी - भविष्य, कौन-सा भविष्य ?
नन्दिता - इस अस्पताल से बाहर तो चल तुझे अपने आप पता चल जाएगा।
(लाईट ऑफ, पलंग अब मंच पर नहीं है, बाहर का दृश्य)

सीन-37

तापसी (स्वगत्) - उखड़े हुए पेड़ की नियति तो यही थी कि उसे भरभराकर गिरना है। नन्दिता है कि अब भी मुझे किसी सपने की ओर धकेल रही थी। सूखे पत्ते भी कभी हरे हुए हैं क्या ? नन्दिता के घर में रहने से उसकी तीमारदारी और सेवा से शरीर थोड़ा ठीक हो गया था, परन्तु सुबह-शाम रणजीत और नन्दिता के बीच मुझे लेकर जो कहा-सुनी होती थी, उसकी प्रतिध्वनि को हवाओं में सरसराते हुए अनुभव करती थी मैं! (बर्तन के गिरने की आवाज के साथ नन्दिता नेपथ्य में चली जाती है।) (तापसी अपना सामान पोटली में समेटने लगती है।)
नेपथ्य से रणवीर - (आवेश में) तुम तुम्हारी सहेली का ध्यान रखो, मेरा ध्यान रखने की कोई जरूरत नहीं है।
नन्दिता - तुम जरा चुप नहीं रह सकते ? तापसी क्या सोचेगी ?
रणवीर - बस यही सुनना रह गया था यानी मेरे ही घर में मेरी कोई वैल्यू नहीं है, तुम्हारी तापसी के आगे।
(पोटली हाथ में लेकर)

तापसी (स्वगत्) - इनकी गृहस्थी की दबी-ढँकी चिंगारियाँ अँगारों में बदले इससे पहले मुझे यहाँ से निकल जाना चाहिये।
(नन्दिता का प्रवेश)
नन्दिता - अरे.....! यह तो रोज की बात है तू इतना मत सोच अपने ऊपर ध्यान दे। पहले ठीक तो हो जा?
तापसी - नन्दिता मैं अब ठीक हूँ और इस लायक हो गई हूँ कि यात्रा कर सकूँ। आप बस एक अहसान और करो मुझ पर मुझे कलकत्ता जाने वाली ट्रेन पर बिठा दे बोलपुर जाने का बहुत मन हो रहा है।
(लाईट ऑफ) (स्पॉट तापसी पर)
तापसी (स्वगत्) - यदि सभी कुछ समझ में आ जाये तो स्थितियाँ रहस्य नहीं रह जाती। मन में संचित सारे भ्रम मृत तितलियों के रंगीन पंखों से भुरभुराकर राख हो जाते हैं। जब से जान पायी हूँ सब कुछ, भीतर के सभी प्रश्न दम तोड़ने लगे हैं। प्रश्न ही तो थे जो जीवित रखे हुए थे मुझे। मेरे प्रश्न जो जीवन के हर मोड़ पर एक लालटेन की तरह हल्का-सा प्रकाश फैलाकर मुझे हर स्थिति से उबार लाये थे हर बार, परन्तु इस बार जीवन से हार मान चुकी हूँ। शायद इस कारण कि शरीर का घाव ठीक होने की जगह और गहरा हो गया था।
(अचानक नेपथ्य से ट्रेन की आवाज के साथ दृश्य बदलता है। ढेर सारे कोरस पात्रों का प्रवेश जो तापसी के आस-पास ठस-ठसकर बैठ जाते हैं और ट्रेन के जनरल डिब्बे का दृश्य टी.टी. का प्रवेश)
टी.टी. - (तीन-चार यात्रियों के टिकट चेक करने के बाद) हाँ टिकट.....(तापसी से)
तापसी (स्वगत्) - (बैग में रूपये देखकर हैरान होती है, टिकट दिखाने के बाद) यह रूपये कहाँ से आये ? मेरी तो समझ में नहीं आ रहा है कि नन्दिता मुझे इतने पैसे आखिर क्यों ? उसकी भी तो माली हालत ठीक नहीं है या फिर मुझे धोखा देने के इस खेल में नन्दिता भी तो.....? (ट्रेन की गहरी ध्वनि पूरे मंच पर अँधेरा) (नीली रोशनी का स्पॉट तापसी पर) रेल एक लम्बी सुरंग के मध्य चली जा रही थी जैसे कि मेरी परिस्थितिगत व्याख्या निभा रही हो। खाली, रिक्त अँधेरे के हवाले होती मैं।
(धीरे-धीरे मंच पर प्रकाश फैलता है ट्रेन स्टेशन पर रूकती है। कोरस पात्रों का मंच पर प्रवेश स्टेशन (रेल्वे) का दृश्य कोई ठण्डा बेचते हुए कोई पेपर आदि पात्रों का प्रवेश)
ठण्डावाला - ठण्डा वाले याऽऽऽ ठण्डा.....(तापसी से) कुछ लोगी.....ठण्डा औरेंज ?
तापसी - हाँ.....दे दो औरेंज ! (सौ का नोट निकालकर देती है।)
ठण्डावाला - ये लीजिये (देते हुए) औरेंज और ये 70 रूपये।
(आस-पास के लोग भी खा-पी रहे हैं, कोई सो रहा है, कोई चुप है। तापसी के सामने एक अधेड़ साधारण चेहरे वाला सहयात्री बैठा है तापसी से)
सहयात्री - कहाँ जा रही हैं आप ?
तापसी - कोलकत्ता ! और आप (औरेंज की बोतल को आगे बढ़ाते हुए)
सहयात्री - मैं, जी नहीं, धन्यवाद!
तापसी - क्या करते हैं वहाँ ?
सहयात्री - सरकारी दफ्तर में एकाउण्टेन्ट हूँ। ऑफिस के काम से जा रहा हूँ।
तापसी - ओह ! (हल्का दर्द अनुभव करते हुए)
सहयात्री - आप कलकत्ता की रहने वाली हैं ? (रेल चलने की ध्वनि जारी है)
तापसी - नहीं उससे आगे एक छोटा-सा एक शहर है वहाँ की। आहऽऽ (दर्द में)
तापसी (स्वगत्) - मैंने जानबूझकर बोलपुर का नाम नहीं लिया, बोलपुर के साथ विश्वभारती और टैगोर बाबा का परिवेश सिर उठाकर खड़ा हो जाता और मन के सारे के सारे बखिये उधड़ जाते।
तापसी - आह ऽऽ ! गोली खाने के बाद भी दर्द कम नहीं हो रहा है। आह ऽऽ !
सहयात्री - आप कुछ बीमार हैं क्या ?
तापसी - हाँ, मेरा ऑपरेशन हुआ है।
सहयात्री - ओह! एक काम कीजिये आप इधर आराम से बैठ जाईये मैं आपकी जगह पर एडजेस्ट कर लूँगा।
तापसी - धन्यवाद आपका.....(पेपर वाले का प्रवेश)
पेपरवाला - आज की ताजा खबर - 2
सहयात्री - हाँ, एक पेपर देना (पैसे देते हुए)
पेपरवाला - ये लो साब.....(पैसे लेकर पेपर देता है)
तापसी - इसका एक कागज मुझे देगें प्लीज!
सहयात्री - हाँ.....ये लीजिये।
तापसी (स्वगत्) - (पेपर पढ़ते हुए) (अचानक चकिकर) आवश्यकता है एक स्वस्थ किडनी या गुर्दे के डोनर की। किडनी देने वाले को एक लाख रूपये के ईनाम के साथ-साथ उसके पूरे इलाज का खर्चा भी हम ही वहन करेंगे।
हे भगवान ! इसका मतलब मेरा शक सही था नन्दिता ने मुझ पर कोई अहसान नहीं किया। (मंच पर एक बार फिर तीव्र रेल की आवाज के साथ पुनः अँधेरा)
आह ऽऽ लगता है जख्म खुल रहा है (पट्टी और लाल हो जाती है।) रक्त के साथ-साथ मवाद भी बाहर आ रहा है - हे भगवान् कैसे पहुँचूँगी बोलपुर रखाल काका के पास, छोटे से उस मकान में.....जिसके सामने बड़ा-सा एक पेड़ है। कितना अभिमान जागा था उस वाक्य पे उस वक्त जब मलय ने हाथ पकड़ के बोला था "लेट मी डू समथिंग फॉर यू" मैं तुम्हारे लिए कुछ करना चाहता हूँ तापसी, मेरे साथ चलो न बोलपुर। उस दिन अवचेतना की सभी कुण्ठाओं के ऊपर रखा कार्नेल यूनिवर्सिटी का वह पत्र कागज का छोटा-सा टुकड़ा मेरी उपलब्धि मेरा इगो, एक विशिष्ट वैयक्तिक आविष्कार जिसके बलबूते पर झटके से पीठ मोड़कर चली आई थी मैं। उस दिन एक क्षण के लिए लगा था कि वास्तव में मैं कुछ हूँ। मेरे भी अस्तित्व में कुछ दम है। सूरज की समूची किरणों को जैसे छू लिया था उस दिन.....। पैरों में नई चप्पल थी, शरीर पर नये सभ्य कपड़े थे। (नेपथ्य से रेलगाड़ी के रूकने का स्वर) (ट्रेन के भीतर के सभी यात्री उठ खड़े होते होकर जल्दी-जल्दी निकलने का प्रयास करते हैं जो चढ़ने वाले समूह में गडमड हो जाते हैं। इसी बीच तापसी दर्द से कराहते हुए बड़ी मुश्किल से ट्रेन की सीढ़ी से उतरने का प्रयास करती है और स्टेशन पर ठेले की टक्कर से गिर जाती है।)
तापसी - आह ऽऽ.....(गिर पड़ती है, कुली सहारा देकर संभालने का प्रयास करता है, लेकिन उसकी दशा देखकर घबराकर भाग खड़ा होता है। उसका मवाद उसकी साड़ी से बाहर आकर बहने लगता है) ट्रेन की आवाज के साथ तापसी के चीखने की आवाजें गूँजने लगती हैं। मंच पर अँधेरा हो जाता है। स्पॉट लाईट दीवार पर लिखे भगवद्गीता के श्लोक पर पड़ती है जिस पर लिखा है (जिसे तापसी पढ़ते हुए) रास क्रीड़ा के समय ब्रज सुन्दरियों के साथ कृष्ण का मधुर भाव यथा अर्मक स्व प्रतिबिम्ब विभ्रम। तो क्या जीवात्मा का अहंकार ही परमात्मा का भोजन है? क्या इसी विधान के अनुलक्ष्य में रासलीला करते हुए कृष्ण गोपीकाओं के अहंकार मर्दन के लिए अचानक अदृश्य हो गये थे। अब मैं कुछ नहीं सोच रही हूँ, हाँ एक रोशनी का पुल मेरे लिए रास्ता बना रहा है और मेरा अस्तित्व सपनों के एक घुमावदार वर्तुल में समा रहा है। (स्वगत् संवाद समाप्त होते ही तापसी पर स्पॉट समाप्त हो जाता है तापसी अपने स्थान पर लेट जाती है जो अब मृत हो चुकी है। कोरस पात्रों से घिरी मंच पर प्रकाश फैलता है।)
एक - किसकी लाश है यह ? कुछ अता-पता ?
दो - शिनाख्त नहीं !
तीन - अखबार से ढँकी खून से लथपथ तापसी ।
चार - प्रश्न मुड़ते हैं, बदलती है भाव-भंगिमाएँ भावदिशाएँ।
पाँच - मृत प्रश्न भीमकाय रेलगाड़ी के कठोर पहियों तले कुचल जाते हैं।
सभी एक साथ - परन्तु कुछ प्रश्न शाश्वत होते हैं शाश्वत होते हैं - 2 स
लाईट ऑफ समाप्त

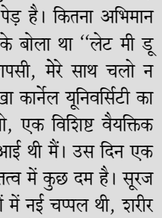

73 हीरामिल की चाल, अखाड़ा मैदान
आगर रोड, उज्जैन-456001
मो.नं. 09770871304

चित्रों में कुसुम अंसल

The Mirror Knows the truth
Kusum Ansal

Kusumanjali Foundation
साहित्य सम्मान 2015
tya Samman 2015
Kusumanjali
Awards

कुसुम अंसल
सरे राह चलते चलते
कुसुम अंसल
परछाइयों का समयसार
I am a seeker and my search goes on.
तापसी
सरगोशी की गूँज
THE WIDOW

कुसुम अंसल की पेंटिंग

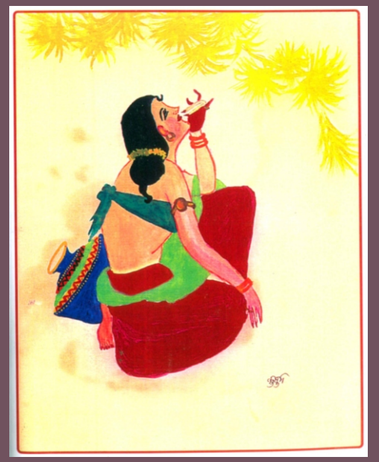

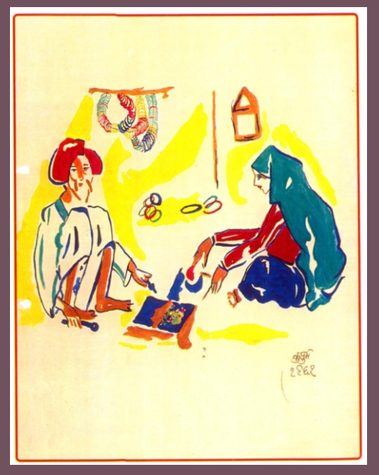

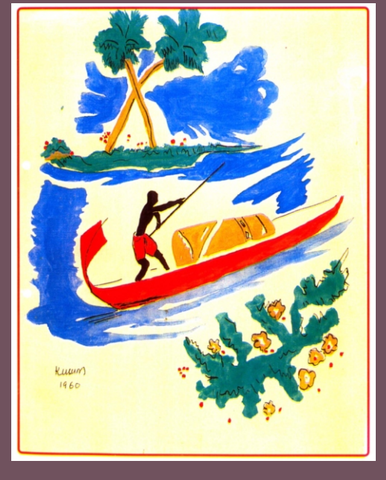
Kusum
1960

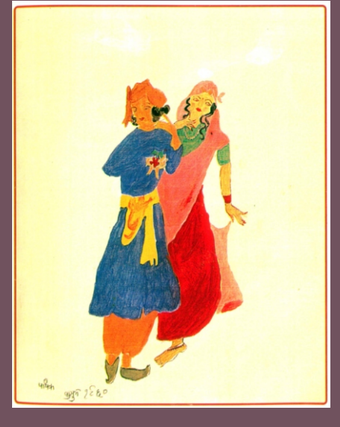

ઈન્ડેક્ષ્ટ-સી

ઈન્ડસ્ટ્રીઅલ એક્ષટેન્શન કોટેજ
(ગુજરાત સરકારની સંસ્થા)

રજી. ઓફીસ :
બ્લોક નં. ૭/૧, ઉદ્યોગ ભવન, સેક્ટર - ૧૧, ગાંધીનગર.
ફોન. : ૦૭૯ - ૨૩૨૫૪૨૬૧ - ફેક્સ:૦૭૯ - ૨૩૨૫૬૦૦૭
E-mail : exdire-indext-c@gujarat.gov.in
Website : www.craftofgujarat.gujarat.gov.in

ઈન્ડેક્ષ્ટ-સી - કુટિર અને ગ્રામોદ્યોગ સ્થાપવામા માહિતી અને માર્ગદર્શન પૂરું પાડતી ગુજરાત સરકારશ્રીની સંસ્થા

ઈન્ડેક્ષ્ટ-સીની રચના કોઈપણ નફાકારક પ્રવૃત્તિ સિવાયના નીચેના ઉદેશો માટે થયેલા છે.

૧. કુટિર અને ગ્રામોદ્યોગ સ્થાપવા ઈચ્છુક સાહસિકોને ઉદ્યોગોની પસંદગી, સ્થળ પસંદગી તથા જે તે ઉદ્યોગ માટે સરકારશ્રીના પ્રવર્તમાન પ્રોત્સાહનો / લાભો વિગેરેની જાણકારી આપવી.

૨. કુટિર અને ગ્રામોદ્યોગ ક્ષેત્રની વિવિધ સહાયની યોજનાઓને એકત્રિત કરી તે વિશે ભાવિ ઉદ્યોગ સાહસિકોને માહિતી આપવી અને આવી માહિતીનું સાહિત્ય પ્રકાશિત કરવું.

૩. કુટિર અને ગ્રામોદ્યોગ ક્ષેત્રના વિવિધ ઉદ્યોગની માહિતી અને ઉદ્યોગ માટેની રૂપરેખા (પ્રોજેક્ટ પ્રોફાઈલ)એકત્રિત કરી તે વિશે ઉદ્યોગ સ્થાપવા ઈચ્છુક વ્યકિતઓને તેની જાણકારી આપવી.

૪. કુટિર ઉદ્યોગ ખાતાની તથા કુટિર ઉદ્યોગ સંલગ્ન બોર્ડ / કોર્પોરેશનની વિવિધ યોજનાઓના ફોર્મ / અરજીપત્રક પૂરા પાડવા.

૫. કુટિર ઉદ્યોગના વિકાસ માટે જાહેરાત મારફત પ્રચાર ઝૂંબેશ ચલાવવી.

૬. કુટિર ઉદ્યોગના વિકાસ માટે સેમિનાર, વર્કશોપ તથા પ્રદર્શનનું આયોજન કરવું અને આવા આયોજન માટે સહાય પૂરી પાડવી.

૭. કુટિર ઉદ્યોગના વિકાસમાં ઉપયોગી હોય તેવી અન્ય પ્રવૃતિઓ હાથ ધરવી.

૮. કુટિર ઉદ્યોગ ક્ષેત્રની આર્થિક સમસ્યાઓના નિવારણ માટે બેન્કો તથા અન્ય નાણાંકીય સંસ્થાઓ જોડે ચર્ચા-વિચારણા હાથ ધરવી.

आरती की कविताएँ

"संवेदनों को अपनी कविता में सलीके से बरतने वाली युवा कवयित्री आरती के कवि-कर्म से गुजरना एक सुखद अनुभूति है। वे अलौकिक मान्यताओं को भी एक भिन्न तेवर में एक तर्क पद्धति से गुजार कर अपनी कविता में स्थान देती हैं। 'मृत्युशैया पर एक स्त्री का बयान' की छोटी कविताओं में इसे साफ तौर पर देखा जा सकता है। वे किसी दिव्यलोक की ओर फिसलती जाती जरूर हैं लेकिन स्वर्ग के जिक्र से भी घृणा करती हैं। यहाँ बरते गए शब्द 'स्वाहा' में एक विद्रूप भरा व्यंग्य है-इन सबके प्रति कवयित्री के प्रतिरोध को दर्शाता! 'नाटक अभी भी जारी है' कविता में कवयित्री एक दृश्य रूपक रचती हैं। उनकी चाक्षुष संवेदनाएँ कविता में अँधेरे-उजाले का ऐसा वितान रचती हैं जिसके जरिये बहुत कुछ कह दिया जाता है। चीखें, रूलाई, अस्पताल, संसद, न्यायालय और रक्त के लाल-काले धब्बों के जरिये वे कविता में एक ऐसा दृश्य-कोलाज सृजित करती हैं जो हमारे दौर के बदहवास समय का अक्स है। यह उस बेबस जनता का गीत भी है जिसके लिए तमाम विसंगतियाँ और क्रूरताएँ धीमे-धीमे स्वीकार्य होती जाती हैं। अपने आसपास का मुर्दा सन्नाटा युवा कवयित्री आरती को भीतर तक आहत करता है। इस चुप्पी से लड़ते हुए वे खुद इतनी जोर से चीखना चाहती हैं कि दसों दिशाएँ काँप उठें। (आवाज) 'मायालोक से बाहर' एक विशुद्ध राजनीतिक कविता है। एक सजग राजनीतिक चेतना और प्रतिबद्ध दृष्टि के साथ लिखी गई कविता जो सत्ता का असली चेहरा सामने लाना चाहती है यह जानते हुए भी कि भोली जनता इस तंत्र के द्वारा लगातार ठगी जा रही है-? मंदिरों और तुम्हारे द्वार पर एक-सी लम्बी कतारें हैं/ चढ़ावे हैं मन्नतें हैं/ आशीर्वाद की ललक भी है/ दरस परस को लालायित तुम्हारी जनता जनार्दन।' यहाँ सेवक के निरंकुश शासक बनते चेहरे को इतिहास के कूड़ेदान की याद भी दिलाई जाती है। यह याद दिलाना ही इस कविता को सार्थक बनाता है और शोषण तंत्र के समाप्त होने की उम्मीद भी जगाता है। 'धरती से भारी' युवा कवयित्री आरती की अपेक्षाकृत अंडरटोन कविता है जिसमें संकल्पों, असमंजसों और अमूर्त-से दर्शन का घर्षण है। इस कविता में संवेदनों का शिल्प में संघनन श्रमपूर्वक किया गया है। 'पहाड़ और पगडंडियाँ' कविता में कवयित्री ने फंटेसीनुमा शिल्प में शहर और शहरीकरण की भयावहता को दर्शाया है। विलीन हो चुकी आशंकाएँ कविता के क्लाईमेक्स में एक भयावह स्वीकार्य में तब्दील हो जाती हैं। 'कोई और तो नहीं','खुद से', 'छोटी-छोटी बातें' कवयित्री की छोटी कविताएँ हैं जो पितृसत्तात्मकता, प्रकृति, प्रेम और अनुकूलवेदनीयता को सघन रूप से प्रकट करती हैं। शिल्प में छोटी होने के बावजूद ये कविताएँ अपने कथ्य में कहीं बड़ी हैं। 'बासी रोटियाँ' कविता में सामाजिक विसंगति की ओर संकेत किया गया है। दो दुनियाओं के फर्क से आहत कवि मन अंततः दो टूक सवाल करता है-'क्यों नहीं बचतीं उसके घर में रोटियाँ/ और हमारे घरों में कैसे बचीं ढेर सारी?' 'कोई कहानी सुनाओ' बहुत नाजुक अहसासों वाली कविता है जिसमें फैण्टेसी के जरिये एक गुदगुदाने और रोमांचित करने वाले स्वप्न देखने की आकांक्षा है। 'माँ की डायरी से' शृंखला की छोटी कविताएँ अनूठी हैं। यहाँ माँ एक पद है और माँ होना एक विलक्षण स्त्री अनुभव! अनुभवों के इस विलक्षण संसार को आरती ने अपनी कविता में भरपूर जिया है-? पहला रूदन, यह आदिम राग/ यहीं से बनते हैं गीत/ यहीं से कहानियाँ/ साल और तारीखें भी यहीं से/ यहीं से...'। यहाँ ममत्व का राग है, परीलोक की फैण्टेसी है, गर्भावस्था का जैविक और हुलसाने वाला अनुभव है। इन छोटी कविताओं की पंचलाइन (क्लाईमेक्स) इन्हें अपने आकार से बहुत बड़ा कर देती हैं। युवा कवयित्री आरती सघन संवेदनों की समर्थ कवयित्री हैं जो परम्परा, स्मृति, दर्शन, तर्क एवं प्रतिबद्धता को हौले-से, सलीकेदार तरीके से अपनी कविता में उतारती हैं।"

निरंजन श्रोत्रिय

मृत्युशैया पर एक स्त्री का बयान

(एक)

सभी लोग जा चुके हैं
अपना अपना हिस्सा लेकर
फिर भी
इस महायुद्ध में कोई भी संतुष्ट नहीं है

ओ देव! बस तुम्हारा हिस्सा शेष है
तीन पग देह
तीन पग आत्मा
मैं तुम्हारा आवाहन करती हूँ

(दो)

धरती की गोद सिमटती जा रही
मैं किसी अतललोक की ओर फिसलती जा रही हूँ

प्रियतम का घर
दोनों हाथ खाली कर
बचे खुचे प्रेम की एक मुट्ठी भर

लो पकड़ लो कसकर हाथ मेरा
जल्दी ले चलो कहीं भी
हाँ! मुझे स्वर्ग के देवताओं के जिक्र से भी घृणा है।

(तीन)

अब कैसा शोक
कैसा अफसोस
कैसे आँसू

यह देह और आत्मा भी
आहुतियों का ढेर मात्र थी
एक तुम्हारे नाम की भी
स्वाहा!!

(चार)

अधूरी इच्छाओं की गागरें
हर कोने में अभी भी रखी हैं
सर उठातीं जब भी वे
एक एक मुट्ठी मिट्टी डालती रही
बाकायदा ढंकी मुंदी रहीं
उसी तरह जैसे चेहरे की झुर्रियाँ और मुस्कानें
आहों, आँसुओं और सिसकियों पर भी रंग रोगन

आज सब मिलकर खाली कर रहे हैं
अंजुरी भर भर

आत्माएँ गिद्धों की मुर्दे के पास बैठते ही दिव्य हो गईं

(पाँच)
मेरी इच्छाओं का दान चल रहा है
वे पलों-क्षणों को भी वापस कर रहे हैं
तिल चावल
जौ घी दूध
सब वापस
सब स्वाहा

उनकी किताबों में यही लिखा है

नाटक अभी भी जारी है

मंच पर प्रवेश का समय वह था जब
चारों ओर घुप्प अँधेरा
बेफिक्री से गहरी नींद फरमा रहा था

कुछ देर बाद थोड़ा-सा अँधेरा छँटा
एक हल्के प्रकाशपुंज का प्रवेश हुआ कि
दबी घुटी एक चीख सुनाई पड़ी
प्रकाश गोलाकार वृत्त से होता हुआ समूचे मंच पर फैलने लगा
और चीखें भी

प्रकाश की आँख मिचौनी, फैलना-सिकुड़ना
वैसे तो तकनीकी कौशल का नमूना था
कुछ उँगलियाँ हरकतें करतीं और अँधेरा उजाले में और
उजाला अँधेरे में कायांतरित हो जाता
इन दिनों इन कौशलों का विधिवत प्रशिक्षण दिया जाता है
तकनीक परदा उठाने-गिराने की जहमत से मुक्ति दिलाती है
फिर भी चीखें गले से ही निकलकर आ रही थीं
भरपूर साहस के बाद ही संभव हो पाता है
इस प्रकार चीख सकना
मेरी आँखों के सामने से तरह तरह के बनते बिगड़ते चेहरे
आ जा रहे थे
एक बदहवास लड़की चीख में सनी हँसी हँसती
दाएँ अँधेरे कोने में जाकर गुम हो गई
कुछ औरतें
नकाब ढंके भयाक्रांत चेहरे
ऊपर की ओर हाथ फैलाए
चीख में लिपटी रूलाई रो रही थीं
थके हारे, बीमार-पुरूषों का एक दल
कोई अदृश्य रस्सी उन्हें खींचे जा रही थी
थामे हुए हाथ कहीं नजर नहीं आ रहे थे।

दृश्य निरंतर बदल रहे हैं
एक के बाद एक आ जा रहे थे
कभी सड़क तो कभी अस्पताल
कभी चौराहा तो कभी संसद भवन
स्कूल दफ्तर रसोई छत बरामदा
न्यायालयों के नल के आगे लगे पीले डिब्बों की कतारें
सुपर बाजार
फैक्ट्री मकान
अनगिनत जर्जर बूढ़े बीमार
टूटी चप्पलें हाथ में लिए चीख रहे थे
शायद पुकार रहे थे...

मेरे हाथों में एक डायरी थी अभी
वहाँ आखिरी पृष्ठ पर मेरे देश के साथ ही
तमाम देशों के नक्शे उकेरे थे
मैं वहीं कहीं उँगली रखने के लिए
कोई सुरक्षित जगह ढूँढने लगी
हर जगह रक्त के लाल-काले धब्बे दिखे
भयावह चीखों से भरी दास्तानें मिलीं
कर्ण की तरह भी नहीं मिली मुझे सुई भर सुरक्षित जमीन

इतनी चीखों सिसकियों और भयंकर अट्टहासों के बीच भी
ऐसा लग रहा है कि सब बहरे हो गए हैं
किसी के चेहरे पर बेचैनी और आक्रोश का कोई चिन्ह दिखाई नहीं देता

अब तक की दबी घुटी चीखों का समवेत स्वर
मंच पर यूँ उभरा कि
वे संगीत की तरह ही कानों को सहन होने लगीं
मंच के सामने पहली पंक्ति में बैठे लोग टेबिलों पर
और बाकी अपनी जंघाओं पर
तीन-तीन थापें दे रहे थे

यह तो पहला दृश्य था

दूसरा दृश्य- दर्शकों का एक दल चीखता हुआ दीर्घा के बाहर निकल गया
और दूसरा मंच की समवेत चीखों में शामिल हो गया

अब आप भी बताएँ यह नाटक का सुखांत है या दुखांत ?
वैसे नाटक अभी जारी है।

आवाज

दो-ढाई बजे रात
जब सब सो रहे हैं
कुत्ते भी
मेरा मन करता है
जोर की आवाज लगाऊँ
दसों दिशाओं को कँपा देनेवाली आवाज
चुप्पियों को चीरकर रख देनेवाली
चाँद के गूँगेपन के खिलाफ एक आवाज

इस घोर सन्नाटे को भंग करके मैं
परिणाम की प्रतीक्षा करना चाहती हूँ।

मायालोक से बाहर

क्रमशः चीजों के और सरलतम होते जाने के
बाद भी
तुम हमारे लिए ईश्वरों जैसे ही हो
वह पत्थरों की मूर्तियों और तस्वीरों में दिखता है
तुम चलचित्रों में अखबारों में
पत्रिकाओं के मुखपृष्ठों में बड़े-बड़े शीर्षकों के साथ
बड़ी-बड़ी घोषणाएँ करते हुए

तुम्हारी चर्चाएँ स्वाद्य आस्वाद्य
तुम्हारी पोषाक
हारी बीमारी
ईश्वर की अनगिनत गाथाओं-सी रोचक
हर घर की बैठक में बहस का विषय तुम

मंदिरों और तुम्हारे द्वार पर एक-सी कतारें हैं
चढ़ावे हैं मन्नतें हैं
आशीर्वाद की ललक भी है
दरस परस को लालायित तुम्हारी जनता जनार्दन

ईश्वर की भाँति तुम सर्वशक्तिमान
वरदान देने में सक्षम हो
विधि विधानों की लगाम तुम्हारे हाथ में है
सब कुछ कर सकते हो
सब कुछ पा सकते हो
निमिष मात्र में कहीं भी आ जा सकते हो
अरबों की आवाज दबा सकते हो
खदेड़ सकते हो
जड़ समेत उखाड़ सकते हो
निर्वासित और पददलित कर सकते हो
आसन्न मौत के फरमान
तुम्हारी स्याही से लिखे जाते हैं
दंगे फसाद से लेकर
युद्धों तक के रिमोट तुम्हारे हाथ में हैं

ऋचाओं सूक्तियों स्मृतियों की कथाओं-सा
अब हमें तुम पर विश्वास नहीं रहा
तुम्हारी घोषणाएँ अब हमें आश्वस्त नहीं करतीं
तुम्हारे आश्वासन
हमारे विश्वास में तब्दील नहीं होते
कैसे कहें तुम्हारे आँसू भी सच नहीं लगते
सब कुछ छद्म लगता है, ईश्वरीय माया-सा
कि फैलाई माया और सब मिट गया

लेकिन अब हम
पिचके पेटों
तार-तार कपड़ों
बिना सपनों की नींद और ठिठुरती रात के साथ
तुम्हारे मायालोक से बाहर
कठोर जमीन पर पैर टिकाए खड़े हैं

और किसी भी बहस में पड़ने से अधिक
यह सच है कि तुम हममें से एक नहीं हो
कभी थे भी नहीं
और क्यूँ होना चाहोगे

ईश्वर निरंकुश सत्ता का प्रतीक है
और तुम भी सेवक कहाँ रहे
प्रतिनिधि भी नहीं रहे
अंततः शासक ही बन गए

इतिहास की कुछेक पंक्तियों पर उँगली फेरो
देखो, उस निरंकुश सत्ता को हमने
कब का ठुकरा दिया....।

धरती से भारी

वह एक कदम धरती से भी भारी था

वही कदम आगे बढ़ाते हुए
मैंने वादा किया खुद से
पीछे मुड़कर नहीं देखूँगी

इस एक वाक्य में बैठे शब्दों को
दुरूस्त करती रही
किसी मंत्र-सा सोते जागते बुदबुदाती रही
वह देहरी जिसे पार किया
और इरादे वादे पक्के किये
उन दीवारों पर छपे अपने हाथों के छाप
उन लिपियों पर लीपापोती करती
वैसे तो कदम मैं आगे ही आगे बढ़ाती चली

यह आगे बढ़ना कई अर्थों में धरती के सापेक्ष था
जैसे वह आगे बढ़ती है
निरंतर घूमती रहती है
और घूमते हुए धुरी पर लौटती है फिर...फिर...

मेरी नजरें समय को नाप रही थीं
कदम आगे बढ़रहे थे
मेरा घूर्णन धरती जैसा नियत न था
एक पल भी पर्याप्त था धुरी में वापसी के लिए

मेरा लौटना मुझ तक पहुँचने वाली
सूचनाओं से परे था
मैं लौटती कभी मुटठी भर नींद सोकर
तो कभी हवा का एक झोंका
उड़ा ले जाता सालों पीछे
मैं लौटती उन्नीसवीं सालगिरह में कभी
तो कभी सीधे फिसलकर किसी सदी के मुहाने में
जा खड़ी होती

मैं लौटती उन अदेखी गुफाओं में
जिनको छाती में आग उगी थी पहली बार
उँगलियों की उन सिहरनों में मेरा लौटना होता
जिनकी पोरों में प्रेम की लहरें उमगती थीं
अक्षरों से अनजान वे
कोई भाषा और लिपि उनके हिस्से में नहीं आई
अपनी ओर खींच लाने वाली वह छुअन
जो भाषा जानती तो यही कहती
लौटना पीछे नहीं होता
जैसे दौड़ना आगे निकल जाना।

पहाड़ और पगडंडियाँ

यह सब अनायास ही हुआ
रास्ते की तलाश में भटकती मैं
पगडंडियों से होती हुई
इस विशालकाय चट्टान पर आ खड़ी हुई

नीचे झांककर देखा
शहर, जैसे कोई भयानक किस्सा
शहर के लोग, उस किस्से के असली किरदार
पहली बार उनसे डर न लगा

आज इस शहर के वैभव ने मुझे बिल्कुल नहीं डराया

चींटियों से रेंगते लोग और
टूटी पेन्सिल के धब्बेदार स्कैच जैसे शहर को देखकर
मन में जुगुप्सा जगी
आज तक के जिए मेरे डरों और बदहवासियों को यादकर
खुद पर तरस आया

यहाँ इस काली चट्टान पर खड़े हो
मेरे भय और वे चिन्ताएँ
जो मेरी नजरों को शक की सुईयाँ बना
जहाँ तहाँ चुभो देती थीं
जो बार बार दरवाजे की कुण्डी टोहने हड़बड़ाकर उठ बैठती थीं
जो आधी रात तक आँखों से दूर रखती थीं नींद को
वे आशंकाएँ विलीन हो गईं

यह शहर अब मेरे गाँव के एक मुहल्ले में तब्दील हो चुका है।

कोई और तो नहीं

तुम सौंप दोगी जिस दिन
उसे अपना सम्मान तक
वह तुम्हारे अंतःदेश की एक एक आंतड़ियाँ
हिला हिलाकर देखेगा
'वहाँ कोई और तो नहीं!!'

खुद से

एक प्रश्न खुद से-
यह कैसा आभामण्डल बनाया है
कहीं खो न देना खुद को
भस्म न हो जाए तुम्हारी आत्मा

चलो उठो
बाहर निकलो
देखो! घास के तिनकों पर मोती उगे हैं।

छोटी छोटी बातें

बहुत सी बातें नहीं कहना चाहती मैं तुमसे
मसलन आज मेरी उँगली चाकू से घायल हो गई
ऐसी छोटी छोटी बातें क्यूँ कहना
तुमने कहा- दर्द भी अब मेरा है इसलिए

और कोसों दूर बैठकर भी
मेरे जख्मों में दवा लगा दी तुमने
इस तरह

एक मूरत और

मीरा गाती रही
साँसों के झाँझ मजीरे बजा बजाकर
समझाती रही प्रेम की पीर
'मेरो दरद न जाने कोय'

न प्रेम जाना किसी ने न दीवानगी
बस, एक मूरत और जोड़ दी मंदिर में

बासी रोटियाँ

रोज सुबह माँ ढोर-डंगरों को टेरते टारते
उसे भी लगभग वैसी ही हांक लगाती
कि आ जाए वह निश्चिंत सपनों की बस्ती से बाहर
दो-चार धौल खाकर ही वह उठता
और आँख मलते हुए सीधे
पंडितजी के ओसारे में जा खड़ा होता

नींद में ही फैल चुकी उसकी हथेलियाँ
और फैल जातीं
थोड़ी देर बाद उन हथेलियों में
कुछ बासी रोटियाँ होतीं

दस-ग्यारह साल के इस लड़के की दुनिया से
गायब थीं इच्छाओं की पोटली
जिसमें खेल खिलौने टाफियाँ शरारतें और मस्तियाँ भरी होती हैं
उसके हाथ में पाँच फीट का गाँठवाला एक डंडा होता
जिसके छोर में बंधी होतीं चार बासी रोटियाँ

रोटियों से खाली और प्रश्नों से भरी उसकी हथेलियों ने
हवा में उछाल दिये हैं कई प्रश्न
क्यों नहीं थीं उसके पास इच्छाओं की पोटली
क्यों नहीं बचतीं उसके घर में रोटियाँ
और हमारे घरों में कैसे बचीं ढेर सारी ?

कोई कहानी सुनाओ

तुमने कहा फाख्ता का बच्चा
और मैं नन्हें पैरों पर फुदकने लगी
गोरैया का बच्चा कहा जब
मैं उड़ने लगी
हिरन का बच्चा कहा तो सचमुच
कुलाचें भरकर उस छोटी टेकरी पर जा चढ़ी
और लाल आँखों वाला खरगोश तो बार बार कहते हो
मैं हर बार कोमल श्वेत रोओं का स्पर्श महसूस लेती हूँ

तुमने मुझे बच्चे में परिवर्तित कर दिया है
मैं अब जिद करना चाहती हूँ

'कोई कहानी सुनाओ न!'
रानी परी तोता मैना कोई भी चलेगी
मैं तो बस
तुम्हारी गोद में सिर रखकर
गहरी नींद सोना चाहती हूँ।

छोटी छोटी बातें

बहुत-सी बातें नहीं कहना चाहती मैं तुमसे
मसलन आज मेरी उँगली चाकू से घायल हो गई
ऐसी छोटी-छोटी बातें क्यूँ कहना
तुमने कहा-दर्द भी अब मेरा है इसलिए

और कोसों दूर बैठकर भी
मेरे जख्मों में दवा लगा दी तुमने
इस तरह।

माँ की डायरी से

1/
अभी अभी जन्मा था वह
और रोया भी था
रोया नहीं दरअसल मुस्कुराया भी था इस तरह
कि अंजुरी भर गुलाल बिखर गया आसपास
रंग गए रिश्ते नातों के महीन धागे
आसमान गुलाबी हो गया
उसके घुंघराले बालों को छूकर हवाएँ लगी थिरकने

पहला रूदन, यह आदिमराग
यहीं से बनते हैं गीत
यहीं से कहानियाँ
साल और तारीखें भी यहीं से
यहीं से....

2/
मैं हो गई थी समूची स्त्री
कि मेरे आँचल में कुनमुना रहा था
एक नन्हा 'सोता'
हवाओं के साथ बहने की कोशिश करता
हाथ पाँव मारता गहरे पानी में जैसे

मेरे आँचल में उसकी भूख का पर्याय था

3/
यह तीसरा दिन था जब
मेरी सुबह और दिनों से अलहदा थी

वह परियों की बाँहों में झूलता रहा था शायद
गुलाबी होठों को फैलाए बिना
मुस्कुरा रहा था

मैं नहीं रोक पाई उँगलियों की पोरों को
धीरे से छू लिए गाल
बारिश में नहाए फूल की पंखुड़ियों सरीखे

4/
मैं उसे नाम देना चाहती थी

खोजा क्यारियों के बीच
चिड़ियों और तितलियों के घर गई
नदियों झरनों पहाड़ों में भटकती रही
हवाओं के बीच कुछ पल गुजारे

आसमान में जाकर एक एक तारे से पूछे उनके नाम

उसके जैसा कोई कहाँ था
मैं परियों के गाँव जाकर
ढूँढूँगी एक सुंदर-सा नाम

5/
किसी लय-सा आलोडन बह रहा था
मेरे भीतर मालकौस गूँजता तब-तब
जब वह खींचता जीवनरस

मोहन वह, मुरली बजाता दुधियाए होंठों से
उँगलियाँ उसकी लहराती रहतीं
जब तक छेड़ता तान
फिर थककर सो जाता

सचमुच दिशाएँ मुग्ध हो जातीं
और मैं बन जाती
पूरी की पूरी वृन्दावन

6/
आज मेरी सुबह को नीम की पत्तियों ने
खुशबू से भर दिया
उतर आईं नहाने के पानी में
हल्दी सने भात की महक
दूध पीपल के एक घूँट ने
रक्त में घोल दिया परिवर्तनों का स्वाद
और लोटे भर-भर आशीषें मेरे सिर पर उडेली गई
हरेक बूँद को जतन से समेटकर
रख लिया है मैंने अपनी पीली चुनरी के आँचल में
कि बनाऊँगी बखत-बखत पर
उसके मोजे दास्ताने झबले-टोपी
और भविष्य की चिंताओं के लिए भी कुछ ढाल
जैसे।

7/
जैसे अलसाई पत्तियों के मुँह
ओस की बूँदें धो देती हैं और वे
कुल्हड़ भर भर रोशनी सुड़कने लगती हैं
उसने मेरे पेट में गुलाबी पाँव मारे
हथेलियों से टटोला आँचल
कि जाग जाग-उठी मैं
जैसे कभी सोई ही न थी। स

नाम : आरती
जन्म : 24 अक्टूबर 1977, रीवा (म.प्र.) के कस्बे गोविंदगढ़में
शिक्षा : अवधेश प्रताप सिंह वि.वि. से हिन्दी साहित्य में स्नातकोत्तर एवं पी-एच.डी.
सृजन : हिन्दी की अनेक पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित, प्रिंट एवं इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में संपादन कार्य, साहित्यिक पत्रिका 'समय के साखी' का पिछले 8 वर्षों से संपादन, एक आलोचना
पुस्तक 'समकालीन कविता में स्त्री जीवन' शीघ्र प्रकाश्य।
सम्प्रति : स्वतंत्र पत्रकारिता एवं लेखन
सम्पर्क : 912, अन्नपूर्णा कॉम्प्लेक्स, पी एंड टी चौराहा, भोपाल (म.प्र.) 462 003
मोबाइलः 9713035330
ई-मेल : samaysakhi@gmail.com

ज्योति जैन

जन्म : 21-08-1964 (मंदसौर)

माता-पिता : श्रीमती अन्नपूर्णा तिवारी, श्री मोहनलाल तिवारी

जीवन साथी : श्री शरद जैन

अभिरूचियाँ : विद्यार्थी जीवन में ही साहित्य में रुचि रही व अनेक साहित्यिक प्रतियोगिताओं में विजेता एनसीसी एयरविंग की केडेट व बेडमिंटन खिलाड़ी रहीं।

सृजन : देश के प्रतिष्ठित समाचार पत्र-पत्रिकाओं में 1000 से ऊपर लेख, कहानी, कविता, लघुकथा व समीक्षाएँ प्रकाशित। गुजराती, पंजाबी, बांग्ला व मराठी में रचनाएँ अनुवादित।

⊙ 'जलतरंग' व 'बिजूका' (लघुकथा संग्रह) बांग्ला, मराठी व अंग्रेजी में अनुवादित।

⊙ 'भोरवेला' व 'सेतु तथा अन्य कहानियाँ' (कहानी संग्रह), ⊙ 'मेरे हिस्से का आकाश' व 'माँ-बेटी' (कविता संग्रह), ⊙ 'पार्थ.....तुम्हें जीना होगा' (उपन्यास), ⊙ 'जीवन दृष्टि' (निबंध संग्रह), ⊙ 'यात्राओं का इन्द्रधनुष' (यात्रा वृत्तांत)

संस्थाओं से संबद्धता : ⊙ 'शिवगंगा', 'मध्यभारत हिन्दी साहित्य समिति', 'भारत विकास परिषद', 'इंडियन सोसायटी ऑफ ऑथर्स (insa) इन्दौर चैप्टर', 'हिन्दी परिवार' आदि संस्थाओं की पूर्व अध्यक्ष, सचिव व सक्रिय सदस्य तथा वर्तमान में वामा साहित्य मंच की सचिव।

सम्मान पुरस्कार : ⊙ 2007 में हिन्दी दिवस पर हिन्दी लेखन हेतु स्टेट बैंक ऑफ इंडिया द्वारा सम्मान। ⊙ 2010 में लघुकथा परिवार जबलपुर द्वारा 'सृजनशिल्पी' अलंकरण सम्मान। ⊙ शिक्षा साहित्य कला विकास समिति - श्रावस्ती (उ.प्र.) द्वारा श्रीमती शारदा देवी पाण्डेय स्मृति सम्मान (2010)। ⊙ 'हम सब साथ-साथ' (दिल्ली) द्वारा जलतरंग हेतु लघु कथाकार सम्मान। ⊙ रंजन कलश (भोपाल) द्वारा 'माहेश्वरी सम्मान। ⊙ मध्यप्रदेश लघु कथाकार परिषद (जबलपुर) द्वारा ' अखिल भारतीय कथा सम्मान।' ⊙ 'नारी अस्मिता' बड़ौदा द्वारा आयोजित अखिल भारतीय प्रतियोगिता में लघुकथा पुरस्कृत। ⊙ 'साहित्य कलश' इन्दौर द्वारा राज्य स्तरीय सम्मान। ⊙ अखिल भारतीय कहानी प्रतियोगिता (कुमुद टिक्कू स्मृति-जयपुर) में प्रथम पुरस्कार। ⊙ 'बिजूका' हेतु कृति कुसुम सम्मान 2013। ⊙ हिमाक्षरा नारी गौरव सम्मान (वर्धा) 2013)। 8 भारतीय वाङ्मय पीठ कोलकाता द्वारा गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर सारस्वत सम्मान। आकाशवाणी में सतत सक्रियता। ⊙ पूना कॉलेज में आपकी लघुकथाओं पर शोधपत्र तथा पूना व मुम्बई में यूजीसी सेमिनारों में आपके शोधपत्र प्रस्तुत।

विशेष उपलब्धियाँ : ⊙ लघुकथाकार शृंखला 'पड़ाव और पड़ताल' में लघुकथाएँ शामिल। ⊙ विश्व हिन्दी लघुकथाकार कोष में शामिल। ⊙ दो लघुकथाएँ महाराष्ट्र स्टेट बोर्ड के कक्षा नौ के पाठयक्रम में शामिल। ⊙ महाराष्ट्र के विद्यार्थी द्वारा 'ज्योति जैन के साहित्य में जीवन मूल्य' विषय पर पी.एच.डी.।

संप्रति : पारम्परिक 'माँडना' कलाकार ⊙वर्तमान में डिजाइन मीडिया व मैनेजमेन्ट कॉलेज में अतिथि व्याख्याता।

संपर्क : 1432/24, नन्दानगर, इन्दौर - 452011 (म.प्र.)
मोबाइल : 09300318182
E-mail : jyotijain218@gmail.com

जोग लिखी.....!

ज्योति जैन

अपने बारे में कुछ लिखने को कहा जाए तो मन बरसों की दूरी पल में तय करके बचपन में पहुँच जाता है। कनगेटिया...कनगेटिया....पाणी ऊँचो के नीचो....? जैसी बातें जेहन में आ जाती हैं। मन्दसौर की गुवाडी (17-18 परिवारों का बाड़ा) जहाँ खेतों, घट्टों पर बचपन बीता। जब शिवना नदी रौद्र रूप ले लेती थी और पानी घरों में घुसने को आतुर दिखता तब खेतों के मुहाने पर राड गाडकर पंगेरी से नापते थे कि पानी किस तेजी से बढ़रहा है.....? इधर-उधर भागते गिरगिट से पूछते- ''कनगेटिया.....कनगेटिया पाणी ऊँचों के नीचो....?'' और जिस ओर वो गर्दन करता उससे अंदाजा लगाते कि पनी बढ़ेगा या उतरेगा....? ये सारे अनुमान लगाने वाले हम बाल वैज्ञानिक पढ़ाई में निहायत फिसड्डी थे, लेकिन उन सारी चीजों ने जो सिखाया वह किसी पुस्तक में नहीं था। धरती से आसमान...प्रकृति ही खुली किताब थी। कच्चे खजूरों को खेत में गड्ढा करके कितने दिन दबाना है ताकि वह पक जाए.....मामाजी की रेल (एक कीडा) के कितने पैर होंगे....लाल गाय (बीरबहूरी) को हथेली पर लेकर उसे ध्यान से पढ़ना.....टिटोडी (टिटहरी) के भूरे और सिलेटी अंडों में नर कौन, मादा कौन....बाढ़के पानी से इन सबको कैसे बचाना....ये सब हमारे गहन शोध के विषय हुआ करते थे। दो महीने की छुट्टियाँ, यानि जेठ की तपती दोपहरी में दिन भर नंगे पैर 'कुदड़के' (धमा चौकड़ी करना) लगाने के बाद भी मुझे डाँट नहीं पड़ती थी। तीन बड़े भाइयों की सबसे छोटी इकलौती लाड़ली बहन जो थी। अपने बाल सखाओं के साथ प्रकृति का पाठ पढ़ने के अलावा बड़कों से भी कई पाठ सीखे। हवा भर पायजामे को फूलाकर नाड़े बाँध कर उसपे उल्टा पटककर नदी में तैरना सिखाना....फटे मोजे में चिंदियाँ भरकर गेंद बनाना..पुरानी कॉपी के पुष्ठे व गेंदे के फूल से बेडमिन्टन खेलना...शहतूत, जामुन व जाम आदि के झाड़ों पर चढ़ना और किरमच की फली (खुजली वाली) को रेजर पत्ती (ब्लेड) से एहतियात से साफ कर उसके महीन बालों को 'दुश्मन' पर आजमाना...ये सारे सबक उसी सुहाने बालपन की तस्वीर पेश करते हैं। और इन सबसे इतर माँ-बाबूजी की वाचन संस्कृति। उस छोटी उम्र से ही घर में पुस्तकें देखी जो नाममात्र के शुल्क में लायब्रेरी से आती थी। जिनमें धर्मयुग, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, सारिका, अखण्ड ज्योति आदि थे। अखण्ड ज्योति की तो शायद आजीवन सदस्यता थी। (गायत्री परिवार के संस्थापक आदरणीय पं. श्रीराम शर्मा आचार्य तो घर भी पधारे थे।) इन सबके अलावा बाबूजी चन्दामामा, नन्दन, चम्पक व पराग आदि समय-समय पर हमारे लिए खरीदकर लाते थे। (मैंने अपने जीवन की पहली वर्ग-पहेली शायद पराग या नन्दन में ही भरी थी।)

कमजोर आर्थिक स्थिति के चलते माँ नौकरी करती थी।(वे सेवाभावी नर्स हैं और अपने इन्हीं कार्यों के लिए पूर्व राष्ट्रपति महामहिम ए.पी.जे. अब्दुल कलाम साहब के हाथों सम्मानित भी हुईं।) भौतिक सुख-सुविधाएँ नहीं थीं, लेकिन संस्कारों में कोई कमी नहीं थी। नाम के अनुरूप (अन्नपूर्णा) माँ ने कभी भूखा नहीं रखा और संस्कारों से भी उनकी झोली लबरेज रही, जो वे हम बहन-भाईयों को देती रहीं। हायर सेकेण्डरी तक आते-आते जब कुछ भाव कच्चे-पक्के शब्द रूप में पन्नों पर उतरने लगे तो समझ में आया कि मिट्टी से जुड़ाव...प्रकृति का सान्निध्य....भइयों की सीख..... पढ़ा हुआ साहित्य....और वे सारी यादें (जो स्मृति में भी रही) लेखन के दौरान अपना प्रभाव दिखाती है। सारा बचपन, किशोरवय एवं युवावस्था अपनी लेखन यात्रा की भावभूमि रचती है।

मुझे प्रकृति शुरू से ही अपनी ओर आकर्षित करती थी। ''चन्दामामा दूर के.....'' से लेकर ''संझा तू थारे घरे जा...'' जैसे गीत और परम्पराएँ निभाते हुए बचपन से कैशोर्य और युवावस्था तक आते-आते भाव शब्दों से खेलने को आतुर होने लगे और कच्ची-पक्की रसोई की तरह ही कच्ची-पक्की रचनाएँ भी पकने लगीं। किचन की ट्रेनिंग जहाँ भाइयों ने दी, वहीं ये मेरा सौभाग्य था कि वे कच्ची-पक्की रचनाएँ सर्वप्रथम मेरे गुरु एवं ख्यात सिने पत्रकार श्रीयुत श्रीराम ताम्रकर सर ने चखीं। कहाँ और कब सब्जी कच्ची रह गई...सिलबट्टे पर मसाला ही ठीक से नहीं पिसा...नमक कम या ज्यादा है....रोटी की किनार मोटी है....की तरह सर ने लेखन की बारीकियाँ बताना शुरू की। रचना में यहाँ ये शब्द ठीक नहीं...तुकबंदी नहीं मिली....इसे विस्तार देना है...इसे अनावश्यक मत खींचो...लेकिन तुम अच्छा लिख रही हो....और अच्छा कर पाओगी...। बस....! यहीं से (यानि दसवीं,ग्यारहवीं से) लेखन यात्रा शुरू हुई। कॉलेज में फिर एक पीठ थपथपाने वाली गुरु मिल गईं। मेरी हिन्दी शिक्षिका डॉ. पद्मासिंह। पढ़ाई से इतर मेरी गतिविधियों (कुकरी कॉम्पीटिशन, ड्रामा, डांस, बेडमिन्टन व एन.सी.सी.) मेरी उपलब्धियों को उन्होंने सदा ही सराहा जो मुझे ऊर्जा से भर देती थी और मैं पूरे जोशखरोश के साथ सक्रिय बनी रहती। कॉलेज के दौरान ही पढ़ाई के साथ-साथ एन.सी.सी. एयरविंग व आकाशवाणी में केजुअल अनाऊन्सर की जॉब भी की। पढ़ाई पूरी होते-होते जिन्दगी में एक खूबसूरत मोड़ आया। मेरे जीवनसाथी के रूप में शरदजी ने दिल की दीवारों पर दस्तक दी। उस दौर में अन्तरजातीय विवाह की कठिनाइयों को दरकिनार करते हुए दोनों परिवारों की स्वीकृति से हम दोनों ने सप्तपदी के वचनों के साथ दाम्पत्य जीवन में प्रवेश किया। तब इस लेखन यात्रा में एक अल्पविराम आया, क्योंकि मेरा विवाह जिस शख्सियत के साथ हुआ, उनसे मुझे बेहद स्नेह और सम्मान मिला, तब मैंने बाकी चीजों को हाशिये पर डाल कर दाम्पत्य जीवन जिया और अपनी दोनों बिटियाओं के साथ मातृत्व सुख का परम आनन्द लिया। बेटियाँ जब स्कूल जाने लगीं तब फिर कलम को थामा। अब समानान्तर रेखाओं की तरह मेरा लेखन...बच्चों के घर आने पर उनके साथ अष्ट, चंग, पे जैसे खेल, पढ़ाई....गप्पे आदि चलने लगे। बीच-बीच में जब कलाप्रेम उमड़ने लगता तो कभी-कभी तीज त्यौहारों पर माँडना, रांगोली आदि बना लिया करती। दोपहर के खाली वक्त ने साहित्य पढ़ने के साथ-साथ पुनः मेरे हाथों में नियमित कलम थमा दी (करीब 1993में)। विवाह पूर्व प्रेम पर खूब कविताएँ लिखीं, लेकिन प्रथम प्रकाशन लघुकथा संग्रह के रूप में आया जिसमें पत्र-पत्रिकाओं में लगातार छप रही रचनाएँ संकलित थीं।

ईश्वर का बहुत आभार मानती हूँ कि उसने मुझे शब्दाभिव्यक्ति की भेंट दी। सभी विधाओं में मैंने लिखा। ईश्वर के अलावा परिजनों का / बड़ों का आशीर्वाद मुझे सदैव प्राप्त हुआ। शरद जी, दोनों बेटियों व पुत्रसम् दामादों का प्रेम मुझे नित नई ऊर्जा प्रदान करता है व मुझे कतई थकने नहीं देता। लेखन यात्रा में प्रथम गुरु ताम्रकर सर के अलावा आदरणीय डॉ. सतीश दुबे व श्री मधुदीप गुप्ता (दिशा प्रकाशन) की सदैव ऋणी हूँ। उनके मार्गदर्शन से ही मुझ अनाम लेखिका का पहला लघुकथा संग्रह प्रकाशित हुआ। साथ-साथ अनेक आदरणीय वरिष्ठ साहित्यकारों (लेखक-लेखिकाओं) का आशीर्वाद / मार्गदर्शन सदैव प्राप्त होता रहा और उसके बाद से लेखन यात्रा सतत् रही है। निर्बाध तो नहीं कह सकती, लेकिन वह जीवन ही क्या जिसमें बाधाएँ न हों। तो बस...! यात्रा जारी है और जारी रहे, बस यही चाहती हूँ, क्योंकि मंजिल का पता नहीं, और पहुँचने की जल्दी भी नहीं....यात्रा का निर्मल आनन्द ले रही हूँ और उसे भरपूर जी रही हूँ। कोशिश है पूरी सक्रियता और ईमानदारी से अपने जीवन्त कर्म-कर्त्तव्यों का निर्वाह करते हुए मैं लेखन का आनंद भी लेती रहूँ। स

ज्योति जैन की कविताएँ

(मां-बेटी काव्य संग्रह से)

माँ मकान को घर बनाना चाहती थीं
इतने नेह से बनाया घर
कि घर मंदिर बन गया
अब समझ में आया...
माँ मंदिर क्यों नहीं जाती थी!
----------//---------

ग़रीबी में भी उसने
कभी मेरी फ्रॉक
नहीं फटने दी,

संस्कारों का धागा जो था
माँ के पास
----------//---------

कितनी नासमझ थी मैं
किताबों में खोजती रही
हमेशा जिन्हें,

सारी पहेलियों के हल तो
माँ के पास थे।
----------//---------

माँ ने मेहँदी से
हथेली पर, बना दिया रूपया,

माँ की दुआवों का रंग खिला
और भरी रही
झोली बेटी की।

खुशियों, धन-धान्य और
संस्कारों से।
----------//---------

बहुत बड़ी जादूगर होती है माँ...!
कई पर्तों में छिपा लेती है
अपनी पीड़ा, उदासी, और
हाथ-पैरों के छाले भी...!

और पर्ते उघाड़कर निकालती हैं...

ढेर सारे प्यार के पंछी,
खुशियों के फूल...और रोटी भी...!

ज्योति जैन की दो लघुकथाएँ

नीम का पेड़

बाउन्ड्रीवाल में बाधक बन रहा नीम का पेड़ घर में सबको खटक रहा था। आखिरकार कटवाने का ही फैसला लिया गया। काका साब उदास हो चले। राजेश समझा रहा था, ''कार रखने में दिक्कत आएगी, पेड़ तो कटवाना ही पड़ेगा ना।''

काका साब ने हथियार डालने के अन्दाज में 'ठीक है' कहकर चुप्पी साध ली। हमेशा अपना रोब जताने वाले काका साब की चुप्पी राजेश को कुछ खल रही थी। अपने पिता के चेहरे को देखते-देखते अचानक ही राजेश को उसमें नीम के तने की लकीरें नजर आने लगीं।

''हैप्पी फादर्स डे पापा...'' सात साल के प्रतीक की आवाज ने उसके विचारों को विराम दिया।

''पापा, आज फादर्स डे है और मैं आपके लिए ये...गिफ्ट लाया हूँ।'' कहते-कहते प्रतीक ने अपने हाथों में थैली में लाया पौधा आगे कर दिया।

''पापा ! इसे वहाँ लगाएँगे जहाँ इसे कोई काटे नहीं।''

''हाँ बेटा, इसे भी लगाएँगे और बाहरवाला नीम भी नहीं कटेगा। गैरेज के लिए कुछ और व्यवस्था देखते हैं।'' फैसलेवाले अन्दाज में कहते हुए राजेश ने कनखियों से काका को देखा।

बाहर सर्र...से हवा चली और बूढ़ा नीम मानो नए जोश से झूमकर लहरा उठा।

समाजसेवी जनक पलटा के साथ ज्योति जी।

जलतरंग

जबसे दादी ने सुना कि गणगौर की 'गोठ' के लिए पुरानी बावड़ीवाले मन्दिर के बगीचे जा रहे हैं, वे अपनी युवा पोती श्रीती से बार-बार उन्हें भी ले जाने का आग्रह कर रही थीं।

''तुम क्या करोगी दादी ?'' श्रीती ने कृशकाय दादी को आश्चर्य से देखते हुए पूछा।

''बस ! म्हारे एकबार ले चल!...'' आगे उनका पुराना रिकार्ड चलता उससे पहले ही-

''ठीक है !शाम को चार बजे चलेंगे!'' कहकर श्रीती ने मानो जान छुड़ाई।

बाउड़ीवाले बगीचे में जब सब औरतें गणगौर में व्यस्त थीं, तब दादी उस कचरे से बुर चुकी बावड़ी की मुण्डेर पर बैठी अपना कैशोर्य याद कर रही थीं, तब पानी से लबालब भरी बावड़ी में उन्हें स्वयं और बालसखा प्रताप के बिम्ब स्पष्ट नजर आ रहे थे। प्रेम की परिभाषा तो शायद तब वे नहीं जानती थीं, किन्तु उस पवित्र और अव्यक्त रिश्ते को महसूस कर सकती थीं। मगर कहाँ वे स्वयं कट्टर गौड़ ब्राह्मण की कन्या और कहाँ वह राजपूत प्रताप! उस जमाने में कल्पना ही नहीं की जा सकती थी।

''चलो ना दादी ! सब औरतें जा रही हैं।'' श्रीती ने उनका कन्धा छुआ तो वह चिहुँक उठीं। लगा जैसे प्रताप ने बावड़ी में कंकर फेंका हो। अपने अस्तित्व में उस तल की तरंगें महसूस करती दादी ने युवा पोती का मजबूत हाथ थामा और बावड़ी को अन्तिम प्रणाम करके चल पड़ीं।

अब जलतरंग उनके हृदय में बज रहा था।

माँगूड़ी

ज्योति जैन

'आज मेरे यार की शादी है...आज मेरे यार की शादी है...' पिचके पेट और कमजोर हो चले फेफड़ों में, उसी पिचके पेट की खातिर, पूरी ताकत लगाकर हवा भर रहे बैंडवाले बजाए जा रहे थे। बारात अभी आरम्भ ही हुई थी और बारातियों के सुरूर से लग रहा था दो-ढ़ाई घण्टे के पहले गन्तव्य तक नहीं पहुँचने वाली थी। मेरे जैसे विरले लोग भी उस हुजूम में थे, जिन्हें इन सब बातों से कोफ्त होती थी। पर क्या करें, मजबूरी का नाम....!

मैंने एक नजर अपने चारों ओर डाली। शरीर के भार के अनुसार ही साड़ियाँ, मोटी गरदन को ढाँपते मोटे नेकलेस, भिन्न-भिन्न प्रकार के परफ्यूम की तेज गन्ध, जो मादकता नहीं पैदा कर रही थी, बल्कि खोपड़ी घुमाए दे रही थी। इस सबसे बचने के लिए निगाहें इधर-उधर कीं तो कतार से चल रहे कंदीलों का बोझ अपने सिर पर लिए बच्चों व स्त्रियों पर ठहर गईं। अनायास ही खयाल आया कि हर बारात में ये बोझा सिर पर लिए स्त्रियाँ व बच्चे ही क्यों नजर आते हैं? शायद मर्द कहीं और काम करते होंगे।

''ऐ माँगूड़ी धीरे चल...'' बैंड के शोर में पीछे से एक हल्की चीख सुनाई दी। दरअसल आगेवाली स्त्री कुछ तेज-तेज चल रही थी, जिससे इलेक्ट्रिक वायर में खिंचाव आ गया था और इसी वजह से पीछेवाली स्त्री चिल्लाई। बारातियों को वधूघर तक पहुँचने की कोई जल्दी नहीं थी। वे जानते थे, कसमसाते, अन्दर-बाहर होते वधूपक्ष के लोग हार-फूल व स्नेक्स, मिठाई लिए द्वार पर आगवानी के लिए खड़े ही रहेंगे।

आगेवाली 'माँगूड़ी' की चाल पुनः धीमी हो गई। पर चाल धीमी, दिमाग तेज दौड़ने लगा।

सिर पर रंगबिरंगी लाइटों से लदा गमलेनुमा भारी बोझ, उसकी पतली-सी गरदन को और लचकाए दे रहा था। फिर भी बोझ से ज्यादा ध्यान उसका अपने घर पर छोड़ आई दोनों बच्चों की ओर ही था। बड़ा राधे पाँच साल का था जो हमेशा साथ आने की जिद करता था, छोटा मनकू तो अभी दो साल का ही था। उसका ध्यान आते ही स्वतः ही माँगूड़ी का आँचल भीगने लगा। उसने जल्दी से एक हाथ से आँचल ठीक किया। तब तक बारात एक जगह स्वागत के लिए रुक गई थी। शुक्र है, उसे भी कुछ देर विराम मिला। ट्रे भर-भरकर ड्राय फ्रूट की छोटी थैलियाँ बारातियों को जबरन ही दी जा रही थीं, ऐसे में ही दो थैलियाँ माँगूड़ी के पैरों के पास ही गिर गईं। कुछ लोग उन पर पैर रखकर भी निकल गए। माँगूड़ी का पूरा ध्यान उसी ओर था। उसे ध्यान आया, जब वो घर पर बात करती थी तो राधे पूछता, ''अम्मा! लस्सी कैसी होती है? क्या मीठी-मीठी? दाख-काजू-मखाने कैसे होते हैं? मिठाई क्या-क्या रंग की है? वो सब बताती तो आँखों देखी रहती।पर काश, ये थैलियाँ मिल जाएँ तो राधे को दिखाऊँ। वो सोच ही रही थी कि...'ढन डनऽऽऽ..आजा..आजा...रात की मटकी फोड़े...' शुरू हो गया। कुछ इधर-उधर से पैग चढ़ाकर आए बारातियों के पैर भी शुरू हो गए और लाइटों को सिर पर लादे माँगूड़ी के साथियों के पैर भी। एक पल माँगूड़ी ठहरी और नीचे झुककर वे धूल से सनी-दबी-कुचली ड्राय फ्रूट की थैलियाँ उठा लीं। इन चन्द सेकेण्ड की देरी में आगेवाला लड़का कुछ आगे बढ़गया और वायर खिंचा तो माँगूड़ी पर चिल्लाया। ''हाँ-हाँ आ तो रही हूँ... हाँक लगाकर माँगूड़ी बोली और दोनों थैलियाँ जल्दी से उठाकर पल्लू से लपेट कमर में खोंस लीं। चार-छः कदम तेज चल तालमेल बिठा लिया। पैर जमीन पर थे पर दिमाग घर की ओर उड़ा जा रहा था। आज तो राधे बहुत खुश हो जाएगा।

पता नहीं क्यों, मगर माँगूड़ी जैसी औरतें हमेशा ही मुझे आकर्षित करती थीं। शायद मेरे भीतर का लेखक उनकी जिन्दगी में गहराई से झाँकने की कोशिश करता था। कोशिश तो धनाढ्य वर्ग की स्त्रियों के अन्तर्मन में झाँकने की भी करती हूँ पर मेकअप की पर्तें कई बार ढाल का काम कर जाती हैं। या कई दफा उनका बनावटीपन। मुँह पर कुछ और, पीठ पीछे कुछ और ! लेकिन माँगूड़ी जैसी स्त्रियाँ त्वचा के कालेपन के बावजूद उजली लगती हैं। मन की पीड़ा, चिन्ता, अपने मर्द या बच्चों की फिक्र, खाने की चीजें देख उनकी ओर ललचायी निगाहें...कुछ भी छुपा नहीं रहता, सब कुछ स्पष्ट...व्यास नदी के पानी की तरह।

फिर मेरा ध्यान उसकी ओर गया तो देखा, कमर में कुछ खुँसा हुआ बार-बार टटोल रही थी। मुझे लगा था, शायद उसने नीचे से कुछ उठाया होगा। पर क्या...? पता नहीं...मैंने सिर झटका।

''यहाँ क्या कर रही हो शशि...मेरी पीठ पर धौल जमाती चाचीजी की आवाज से मैं चौंकी। ''चलो...डांस करते हैं।'' उन्होंने मुझे लगभग खींचा। अनायास ही बैंडवालों की ओर ध्यान चला गया। फेफड़ों की सारी ताकत लगा वो लोग पंखिड़ा...बजा रहे थे।

मैं शायद पोजीशन लेती, उसके पूर्व ही लड़कीवालों के कुछ लोग 'मॉकटेल' वगैरह की ट्रे लिए आ गए। ''शुक्र है...पीछा छुटा!...'' मैंने चैन की साँस ली और फुटपाथ के ऊपर चढ़गई। पसीने से लथपथ लोगों को ठण्डे 'मॉकटेल्स' राहत दे रहे थे। प्रश्नचिह्न फिर मेरे सामने आ खड़ा हुआ। मेहनत से पसीना बहानेवालों को हम राहत क्यूँ नहीं दे सकते? शायद पसीने की महक और बदबू ये पैमाना तय करती हैं। पता नहीं क्यों...पर ये स्थितियाँ मुझे हमेशा ही उद्वेलित कर देती हैं।

गले को ठण्डक पहुँचा सारे बारातियों ने अपनी सभ्यता के चिह्न (?) डिस्पोजेबल ग्लासेस के रूप में उस चौराहे के करीब छितरा दिए। अपने आँचल व कीमती चप्पलें अपनी ही फैलाई गन्दगी से बचाते फिर सब बैंडवालों के पीछे हो लिए। अब बैंडवाले 'भोली सूरत दिल के खोटे...' बजा रहे थे।

तभी एक शोर उभरा जो आण्टियों के हुजुम में से था। ''ओ...माई गॉड...! मेरा नेकलेस कहाँ गया ?'' वो ब्लैक साड़ीवाली दोहरी कायावाली एक आण्टी थी जो अपने भरे-भरे गले पर हाथ रख चीख रही थी। ''क्या हुआ...क्या हुआ....'' के शोर के साथ सब उसके चारों ओर इकट्ठे हुए।''अभी तो गले में ही था।'' फिर कहाँ गया ?...'' पूछते-पूछते सबकी निगाहें सब गरीबों की ओर चली गईं।

मानो सब निगाहों के एक्स-रे द्वारा ही जान लेंगे कि चोर कौन है ? पुरुष वर्ग लाइटवाले लड़कों की ओर झपटा तो स्त्री वर्ग माँगूड़ी व अन्य स्त्रियों की ओर। कुछ लोग जमीन पर ढूँढ़रहे थे। कुछ बारात के प्रारम्भस्थल तक चले गए। पर हार नहीं मिलना था, सो नहीं मिला।

''इन्हीं में से किसी ने लिया होगा वरना कहाँ जाएगा ?'' वो मोटी आण्टी उन्हीं लोगों के पीछे पड़ी थी। ये टुच्चे लोग होते ही ऐसे हैं। रंग में भंग पड़ने से कुछ साहब लोगों का सुरूर उतरने लगा तो कुछ ने 2-3 किशोर बच्चों को 4-6 झापड़ धर दिए। ''बता बे...कहाँ छिपाया हार...?''

''नहीं साब...हमने नहीं...'' वो लाइट समेत डगमगा गया।

'वो माँगूड़ी ने कमर में क्या खोसा था ?' मेरा मन अकुलाया...पर नहीं....वो ऐसी नहीं लगती।'

'अरे ! वो औरत ना! कमर में कुछ खोंस रही थी...मैंने देखा था'', एक आवाज आई।

हे ईश्वर ! मेरे अलावा और किसी का ध्यान भी माँगूड़ी पर था।

पर उसके चेहरे पर तिरोभाव भाव उसके चोर होने की चुगली नहीं कर रहे थे।

''ऐ! दिखा जरा! चल ये लाइट नीचे रख...'' और वो मोटी आण्टी व उनकी हितैषी (?) दोस्त! दोनों ने मिलकर उसकी कमर पर हाथ डाला। वो कुछ समझती, कहती उसके पहले ही छीना-झपटी में पहले धप्प....से मोटी आण्टी के पल्ले में से कहीं से वो हार नीचे गिरा। शायद साड़ी व काया दोनों के भारीपन की वजह से अपने होने का अहसास नहीं करा पाया था।

और अगले ही पल माँगूड़ी के पल्ले से ड्राय फ्रूट की मैली-कुचली दो धूल से सनी थैलियाँ भी नीचे गिर गईं...

पलभर को जैसे सब फ्रीज हो गया। फिर बहुत-सी प्रतिक्रियाएँ एक साथ आईं-

''अरे चलो, हार मिल गया!''

''देखा! ये चोर तो होते ही हैं।''

''ठेकेदार से कहकर साली के पैसे रुका देता हूँ।''

''भाभीजी ! जरा हुक टाइट करवा लेना।''

''वो तो शुक्र है साड़ी में ही अटक गया, वरना।''

''वो तो इन चोट्टों को मौका नहीं मिला। नीचे गिर जाता तो छोड़ते क्या ?''

''चलो-चलो... इनसे तो बाद में निपटेंगे, बजाओ भाई...''

और माँगूड़ी पर एक दया-दृष्टि डालते बैंडवाले फिर शुरू हो गए... 'भोली सूरत दिल के खोटे...'

झिलमिलाते आँसुओं के बीच माँगूड़ी को अपनी बेइज्जती का उतना दुःख नहीं था, जितना राधे के लिए था- हतभागे को आज भी दाख-काजू देखने-खाने को नहीं मिलेंगे। नासपीटे की किस्मत ही खराब है।

और मैं माँगूड़ी पर से एक पल के लिए हिले विश्वास से मन-ही-मन शर्मिन्दा थी। और बस! मन कर रहा था कि वो ड्राय फ्रूट की ट्रे-वाला दिख जाए तो मुट्ठीभर थैलियाँ उससे लेकर इस माँगूड़ी को दे दूँ।

मेरे बारे में सब कहते हैं जो मैं ठान लेती हूँ वो करके दम लेती हूँ। और मैं उन सबको सही साबित करने के लिए इधर-उधर निगाहें दौड़ा रही हूँ। तोरणद्वार तक पहुँचने के पहले वो ट्रे-वाला जरूर मिल जाएगा! स

सबको साथ लेकर चलने वाला व्यक्तित्व

मंजूषा मेहता

कथाकार सुधा अरोड़ाजी के साथ ज्योति जी।

ज्योति भाभी से मेरा प्रथम परिचय एक सामाजिक-पारिवारिक संस्था ''भारत विकास परिषद् '' में 16-17 वर्ष पूर्व हुआ था। उस समय हम बेमन, बेमजा से परिषद् में उपस्थित तो थे, पर पूर्णतः निष्क्रिय थे। ज्योति जी ने अपने व्यवहार से, अपनी कार्यशैली से कुछ इस तरह खाद-पानी देना शुरू किया कि जल्द ही सुप्तबीजों के कवच दूर कर उनमें अंकुरण प्रारंभ हो गया, कब उस मृग की भाँति हो गये जो कस्तूरी रूपी ज्योति भाभी के मोहपाश में बँधते गये पता ही नहीं चला। उनके व्यक्तित्व के अनगिनत, अनछुये पहलू ज्यों-ज्यों सामने आते गये त्यों-त्यों मानव से महामानव बनने की प्रक्रिया का रहस्य उजागर होता गया।

इंसान की छुपी हुई काबिलियत पहचानकर उससे उसके योग्य कार्य करवाना, उसे आगे बढ़ाते रहना और उसे यह विश्वास हमेशा दिलाते रहना कि वह कर सकता है, कोई साधारण कार्य नहीं है। टाँग खिंचाई के इस दौर में उनका यह विचार सफलता के फार्मूले का मुख्य तत्त्व यह है कि लोगों को साथ कैसे लेकर चला जाये। यही उनकी शिखर यात्रा की नींव है।

आदिवासियों के लिये समर्पित कार्यकर्ता के अलावा वे भारत विकास परिषद् के सेवा प्रकल्पों के माध्यम से समाज, देश के लिए हर संभव योगदान दे रही हैं। विशिष्ट बच्चों (मानसिक विकलांग) के क्रियाकलापों, राष्ट्रप्रेम से ओतप्रोत बच्चों के राष्ट्रीय समूह गान, नौनिहालों के लिए भारत को जानो एवं विकलांगजनों के कृत्रिम अंग बनवाना और उनके जीवन-यापन की व्यवस्था में आप तन-मन-धन से लगी रहती हैं। सेवा के इन कार्यों में जिस उत्साह से वह जुटी रहती हैं, वह अद्भुत है, उनके लिए उत्साह ही प्रगति का स्रोत है। यह है तो सफलता है वरना सिर्फ बहाने हैं। इन प्रकल्पों को सुचारु रूप से चलाने के लिए कई कठिनाइयाँ आती हैं, लेकिन वह चट्टान-सी अडिग, आशा और विश्वास से लबरेज अपनी चिर-परिचित मधुर मुस्कान के साथ सार्थक कोशिश करती रहती हैं और मुकाम तक पहुँचती हैं। वैसे भी कहते हैं ना निराशावादी हर अवसर में कठिनाई ढूँढ़ता है और आशावादी हर कठिनाई में अवसर देखता है।

ज्योति भाभी संयुक्त परिवार की जिम्मेदार बहू भी हैं, जो अपने सेवाकार्यों के साथ-साथ सुघड़ गृहिणी के रूप में परिवार के हर सदस्य की अपेक्षाओं पर लगातार खरी उतरती आई हैं। दाम्पत्य जीवन का संतुलन एवं लाडली बेटियों की माँ के रूप में अपने दायित्व का निर्वहन सब कुछ आपके कुशल समय प्रबंधन एवं दृढ़निश्चय का ही परिणाम है।

हम जहाँ जीवन की छोटी-छोटी परेशानियों से घबराकर बिना कोशिश करे ही हार मान लेते हैं, वहीं ज्योति भाभी दिन के इन्हीं 24 घण्टों के बीच लेखिका हैं, समाजसेविका हैं, लोककला मांडना की कुशल चितेरी भी हैं, अपने इस शौक को व्यवसाय में भी बदल रही हैं, कॉलेज में हिन्दी प्रोफेसर के रूप में विशिष्ट फैकल्टी भी हैं, साथ ही नृत्य में रुचि होने के कारण नवरात्रि में गरबे कर दुर्गास्वरूप को भी सार्थक करती हैं। इतना सब करने के बावजूद आज भी नई-नई चीजें सीखने और करने के लिये लालायित रहती हैं।

उनका यह विचार कि *''हम समस्याओं के काँटों को ऊगने से रोक नहीं सकते पर बेहतर नजरिया और सकारात्मक सोच को अपनाकर फूलों की तरह खिले हुए तो रह ही सकते हैं।''* वे उनके संपर्क में आने वाले हर व्यक्ति को सकारात्मक ऊर्जा भर देती हैं। स

9/8 ताना-बाना हाऊस
यशवंत निवास रोड, इन्दौर म.प्र.

साहित्य की हर विधा में फैल रही है जिनकी दीप्ति

स्मृति आदित्य

अपनी-अपनी किसी एक विधा में दक्ष साहित्यकार हमें आस-पास कईं मिल जाएँगे, लेकिन बिरले ही होते हैं ऐसे कलमकार जिनकी लेखनी ने साहित्य की हर विधा को अभिस्पर्श किया हो और हर विधा में उनका तेज, उनकी सोच और संवेदनाएँ प्रखरता से अभिव्यक्त हुई हो।

सुलेखिका ज्योति जैन साहित्य-संसार में तेजी से लेकिन सरलता से उभरता वह महत्त्वपूर्ण नाम है, जिसने साहित्य की लगभग हर विधा में स्वयं को सुव्यक्त किया है। जिनके नाम में ही 'उजास' हो उसे तो यह गौरव हासिल होना ही था।

''माना कि पहुँच गई हूँ सफलता की ऊँचाइयों पर,
लेकिन दिलों में उतरने का हुनर आज भी रखती हूँ।''

ज्योति जैन एक बहुआयामी इंद्रधनुषी व्यक्तित्व की धनी साहित्यकार का नाम है। वे जब लघुकथा लिखती हैं तो उनका प्रभाव देर तक और दूर तक दिखाई देता है। जब वे कविता लिखती हैं तो सुकोमल अनुभूतियाँ पाठक के भीतर सरिता-सी बहने लगती है। उनकी कहानियों के पात्र मानस में गहरी पैठ बना लेते हैं। उनके आलेख अखबारों, पत्र-पत्रिकाओं में अपनी सशक्त उपस्थिति दर्ज कराते रहे हैं। जब वे समीक्षक के रूप में किसी रचना की विवेचना करती हैं तो उनका नीर-क्षीर विवेक हर सूक्ष्म पक्ष को ईमानदारी से सामने लाने का प्रयास करता है।

तीन भाइयों की सबसे छोटी लाड़ली बहन ज्योति बचपन से ही साहित्यिक संस्कारों से सम्पन्न रही हैं। 21 अगस्त 1964 को मन्दसौर में जन्मी ज्योति जी कई साहित्यिक व सामाजिक पत्रिका में प्रकाशित हो चुकी हैं। कथाबिंब, रविवार, समांतर, नारी अहिमता, मसि कागद, उषा, शुभतारिका, अर्पण-समर्पण, इंडिया टुडे, अहा जिंदगी, कथा-सागर, अहल्या, समावर्तन, गुंजन, फेमिना में उनकी रचनाएँ चाव से पढ़ी जाती रही हैं। वेबदुनिया डॉट कॉम और लघुकथा डॉट कॉम जैसे डिजीटल प्लेटफार्म पर वे प्रमुखता से प्रकाशित हो रही हैं। उनकी चयनित कविताओं पर वेबदुनिया द्वारा वीडियो भी प्रस्तुत किया गया है। अब तक वे कई नामचीन साहित्यकारों का साक्षात्कार ले चुकी हैं, जिनमें मन्नू भण्डारी, मालती जोशी, चित्रा मुद्गल और सुधा अरोड़ा जैसे नाम उललेखनीय हैं।

ज्योति जैन का रचना संसार इतना विविध और समृद्ध है कि उसे किसी एक अयन में खड़े होकर निहारा नहीं जा सकता। ऊनके साहित्य-संसार पर समग्र दृष्टि डालने के लिए आपको भी एक लंबी परिक्रमा से गुजरना होगा।

लघुकथा

ज्योति जैन मुख्यतः लघुकथाकार के रूप में अपनी खास पहचान रखती हैं। जलतरंग और बिजूका नाम से उनके दो लघुकथा संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। दोनों ही संग्रह को अब तक कई पुरस्कार और सम्मानों से नवाजा जा चुका है। उनमें गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर सारस्वत सम्मान (कोलकाता) 'रंजनकलश' द्वारा माहेश्वरी सम्मान, हम सब साथ-साथ (दिल्ली) द्वारा लघुकथाकार सम्मान, कृति कुसुम सम्मान, हिमाक्षरा नारी गौरव सम्मान, शब्द विभूषण साहित्य सम्मान प्रमुख हैं। उनकी लघुकथाएँ अंग्रेजी, मराठी, पंजाबी, बंगला सहित अन्य भाषाओं में प्रकाशित और प्रशंसित हो चुकी हैं। उनकी लघुकथाओं में सामाजिक विद्रूपताओं का कठोर चित्रण है और रिश्तों की कोमलता का मधुर स्पर्श भी। वे अन्याय के विरुद्ध आवाज भी उठाती हैं और समयानुरूप अपनी खामोशी से भी खलबली मचाती हैं। नारी अस्मिता, गरिमा और अस्तित्व को उनकी लघुकथाएँ पूरी ताकत से स्थापित करती है और प्रतिष्ठित करती हैं। सबसे दिलचस्प तथ्य यह है कि वे स्वयं अपने अस्तिव को लेकर सजग हैं, इसलिए उनकी लघुकथाओं में भी यह सजगता परिलक्षित होती है।

ज्योति जैन की लघुकथाओं में सामाजिक समरसता अपनी पूरी सरसता के साथ उपस्थित है। तीज, त्योहार, पर्व, संस्कृति, रिश्ते, प्यार, लगाव, साथ और भावनाएँ यहाँ जितनी प्रबलता से मुखरित हैं, वहीं नारी उत्पीड़न, व्यभिचार, शोषण विसंगतियों पर भी वेदना और रोष का स्वर दिखाई-सुनाई देता है। उनकी लघुकथाएँ यत्र-तत्र-सर्वत्र सम्मानित हुई हैं और जब आप उनके रूबरू होते हैं तो सहज ही मानने को बाध्य होते हैं कि वे इसकी हकदार हैं।

उनकी कलम पर हरदम एक कथा रखी है।
और वह हर कथा जमाने के सामने रखी है।

कविता

ज्योति जैन का जो रूप सबसे ज्यादा लुभाता है, वह है उनका कवयित्री होना। उनकी पहचान भले ही लघुकथाकार के रूप में प्रतिष्ठित हुई हो, उनका कवयित्री रूप उन्हें सरल और संवेदनशील साहित्यकार के तौर पर एक सुशिष्ट पहचान देता है।

उनके दो कविता संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। 'मेरे हिस्से का 'आकाश' व 'माँ-बेटी'। ज्योति जैन की कविताओं में रस है, रंग है, सुगंध है, स्नेहबंध है, रिश्तों के ताने-बाने हैं, प्रकृति की सरम्यता है, प्रेम की प्रगाढ़ता है। रस यहाँ बहता है, रंग यहाँ खिलते हैं, सुगंध महसूस होती है, नेहबंध आपको ठिठका देते हैं, रिश्ते सुवासित होते हैं, प्रकृति का हर सौन्दर्य थिरक उठता है, प्रेम यहाँ अपने सबसे पवित्र रूप में हर जगह, हर कविता में अवस्थित है। (अपने) मेरे हिस्से का आकाश चाहते हुए भी वे अपना आत्मसम्मान बनाए रखना जानती हैं। ज्योति जैन का यह काव्य संग्रह भरपूर प्रशंसा अर्जित कर ही रहा था कि तभी वे

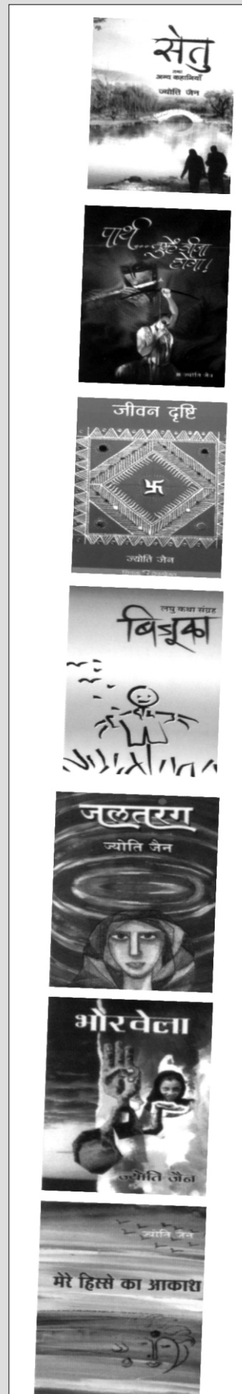

अपना दूसरा कविता संग्रह 'माँ-बेटी' लेकर प्रस्तुत हुईं। इस संग्रह ने उन्हें उनके हिस्से का चौगुना प्यार और आकाश लौटाया। 'माँ-बेटी' संग्रह में अत्यन्त खूबसूरत छोटी-छोटी कविताएँ हैं। यह सभी कविताएँ उनकी माँ, स्वयं उनके मातृ अनुभव और अपनी सुयोग्य बेटियों को समर्पित है।इनके बहाने वे संसार की हर माँ को नमन करती चलती है, संसार की हर बेटी पर अपना लाड़ उँडेलती बढ़ती हैं। और अपने अनुभव के माध्यम से हर माँ का अनुभव समाविष्ट करती एक विशिष्ट रूप में सामने आती हैं।

एक जमाना था जब मैं तलाशती थी/रास्ता आकाश तक जाने का/एक आज का दौर है कि सारा आकाश मेरा है।

एक कवयित्री के रूप में ज्योति जैन सरल, सहज, सजग, स्पष्ट, सटीक और संवेदनशील हैं। उनकी कविताओं में शब्दों के आडम्बर नहीं हैं, प्रदर्शन नहीं है, अनावश्यक भाषिक अलंकरण नहीं हैं। वे बड़े ही सीधे और स्पष्ट रूप में सामने आती हैं, लेकिन इसका अर्थ यह कतई नहीं है कि उनमें सौन्दर्य नहीं है। वे सुकोमल हैं, सुन्दरतम हैं और सुव्यवस्थित हैं। अपनी बात को कम से कम शब्दों में कहने में वे पारंगत हैं। कम शब्दों में वे अपनी भावनाएँ पूरी रख पाती हैं, पाठकों तक वैसी ही पहुँच भी पाती हैं। फूल, पेड़, हवा, पानी, झरने, बादल, चाँद, सूरज, आकाश, धरती सबसे कवयित्री को इतना प्यार है कि वे उनका मानवीकरण भी कुशलता से कर लेती है। उनका कवि रूप लघुकथाओं से कहीं अधिक संभावनाशील नजर आता है।

कहानी

ज्योति जैन के दो कहानी संग्रह 'भोरवेला' और 'सेतु' व अन्य कहानियाँ प्रकाशित हो चुके हैं। साहित्यिक पत्रिकाओं में उनकी सकारात्मक, सार्थक संदेश देती कहानियाँ मुक्त कण्ठ से प्रशंसनीय रही हैं। उनकी कहानियाँ बदलते परिवेश में नारी अस्मिता को तलाशती है, कभी वे कोमलता की भावभूमि पर खड़े होकर कड़े प्रश्न करती हैं, कभी उनके पात्र जमीन से जुड़े रहने का संदेश देते हुए हर समरूप का उत्तर देते हैं।उनकी कहानी की नारी पात्र प्रेम और पवित्रता की प्रतिमूर्ति तो हैं, पर वे कमजोर और असहाय नहीं हैं। अपने पूरे वजूद के साथ वे अन्याय और अत्याचार के खिलाफ उठती हैं पर अपनी मर्यादाओं का उन्हें भरपूर भान है। वे अपनी नैतिकता और सामाजिक परिधियों का सहजता से सम्मान करती हैं और यहाँ उन पर किसी तरह का नारीवाद हावी नहीं होता। उनकी कहानियों के नारी पात्र अपने स्त्री होने पर गर्व करते प्रतीत होते हैं। उनकी कहानियों की एक प्रमुख विशेषता है कि उनमें नकारात्मकता नहीं दिखाई देती। उनकी लगभग सभी कहानियाँ एक सकारात्मक बिन्दु पर समाप्त होती हैं और लेखन में सात्त्विकता झलकती है।

उपन्यास

ज्योति जैन ने कई विधाओं में अपने लेखन का परचम लहराने के उपरान्त उपन्यास विधा में कदम रखा और कहना होगा कि यहाँ भी वे बाजी मार ले गई हैं। शिवना प्रकाशन से आया उनका उपन्यास ''पार्थ, तुम्हें जीना होगा'' कई मायनों में खास है। ''राजनीति और युवा'' इस विषय पर आमतौर पर महिला कथाकार लिखने और बात करने से हिचकती है। ज्योति जैन का पार्थ, महाभारत के पार्थ से जुदा नहीं है।उसके समक्ष राजनीति का कुचक्र है। जिसे भेदने के लिए युवा राजनेता किन मुश्किलों का सामना करता है और भ्रष्ट तंत्र के खिलाफ खड़ा होता है। यह सब उपन्यास में बड़ी ही दक्षता से समेटा गया है। मुख्य रूप से यह लघु उपन्यास है। इसमें भी अनावश्यक विस्तार और बोझिल संवादों से यथासंभव बचा गया है। कह सकते हैं कि नितांत अछूते विषय को ज्योति जैन ने बारीकी से छुआ है।

'समझने नहीं देती सियासत हमको सच्चाई
कभी चेहरा नहीं मिलता, कभी दर्पण नहीं मिलता।'

इन चार चार सशक्त विधाओं में अभिव्यक्त होने के बाद भी उनके साहित्यिक अवदान की सूची समाप्त नहीं होती। निबन्ध व यात्रा वृत्तान्त लिखने के अलावा दूरदर्शन पर भी उन्होंने अपनी उपस्थिति दर्ज कराई। वे आकाशवाणी की नियमित उद्घोषक रहीं। अब तक दोनों ही माध्यमों से कई वार्ताएँ, साक्षात्कार और रचनाओं का प्रसारण हो चुका है। कई पत्र लेखक मंच, संस्था व संगठनों से आप सम्मानित हैं। सम्मानों की एक बड़ी लंबी फेहरिस्त हैं, पर सबसे बड़ा सम्मान यह है कि उनके लेखन ओर साहित्य में निरन्तरता है, ताजगी है, नयापन है, सामाजिक चेतना है, सांस्कृतिक सजगता है, जो पाठकों के अनमोल स्नेह का हकदार बनाता है उन्हें।

अंदाज कुछ अलग ही है मेरे सोचने का
सबको मंजिल का है शौक, मुझे रास्ते का है।

आप इन्दौर में गठित वामा साहित्य मंच की सचिव हैं। साहित्यिक गतिविधियों को समर्पित यह मंच अगर शहर में कुशलतापूर्वक अपने आयोजन कर रहा है, तो अतिशयोक्ति नहीं होगी कि पूरी टीम में ऊर्जा, प्रेरणा,उत्साह जगाने और पूरी एकजुटता के साथ सबको समान रूप से साथ लेकर चलने का महत् कार्य ज्योति जैन ही कर रही हैं। विगत वर्षों में उनके और अध्यक्ष पद्मा राजेन्द्र के नेतृत्व ने मंच ने कई अनूठे साहित्यिक आयोजन किये हैं। ज्योति जैन बतौर वक्ता, अतिथि और चर्चाकार के रूप में प्रदेश और देश की संस्थाओं में ससम्मान आमंत्रित की जाती हैं। शिवगंगा, मध्य भारत हिन्दी साहित्य समिति, भारत विकास परिषद् , इंडियन सोसायटी ऑफ ऑथर्स (इन्दौर चेप्टर) आदि कई संस्थाओं की पूर्व अध्यक्ष, सचिव व सक्रिय सदस्य के रूप में प्रतिभागिता दर्ज कराती रही हैं।उनकी वक्तृत्व और मंच संचालन की सहजता, व्यक्तित्व की गरिमा, वाणी की मधुरता, विचारों की प्रखरता और व्यवहार की सरलता उन्हें भीड़ में भी एक सुशिष्ट और विशिष्ट पहचान देती है। उनका साहित्यिक योगदान इस मायने में भी विशेष है कि वे अपने आपको दोहराती नहीं हैं। उनकी प्रतिस्पर्धा खुद वे अपने आपसे करती हैं, इसीलिए हर बार एक ताजातरीन नई रचना के साथ आकर चौंकाती भी हैं और चमत्कृत भी करती हैं।

ज्योति जैन का साहित्य-संसार समृद्ध है, लेकिन संपूर्ण नहीं। अभी कई अनेक रचनाओं का आना शेष है, यही सुंदर संभावना उनके सच्चे साहित्यकार होने का प्रमाण है। वे लिखती हैं पूरे मनोयोग से और लिखने की प्रेरणा भी उतने ही दुगने मनोयोग से देती हैं। उनकी रचना समग्रता पर शोधकार्य सम्पन्न हो रहे हैं। उनकी रचनाएँ पाठ्यपुस्तकों में भी शामिल की गई हैं। पुणे व मुम्बई में यूजीसी सेमिनार में अपने शोधपत्र के साथ आपकी सहभागिता अत्यनत प्रशंसनीय रहीं। उनका समूचा साहित्य मुख्य रूप से समय की आवाज है। सादगी और सजगता तथा विविधता और वैचारिकता उनके समग्र रचना संसार के मूल तत्त्व हैं। साहित्य-संसार में ऐसे हस्ताक्षर कम हैं, लेकिन जो हैं, वे बेजोड़ हैं, बेमिसाल हैं ज्योति जैन की तरह...साहित्य की हर विधा में उनकी दीप्ति प्रसारित हो रही है।

साहित्य-संसार की इस उल्लेखनीय हस्ताक्षर के लिए उनके पाठकों के अतिरिक्त हर जानने वालों के मन में सम्मान है तो इसकी एक बहुत बड़ी वजह है कि वे मन, कर्म और वचन से साहित्य-सृजन के प्रति प्रतिबद्ध हैं। उनकी सृजनधर्मिता हर उभरती साहित्यकार के लिए प्रेरणा है।

चमक रही हूँ 'ज्योति' की तरह तो/सब हैरान क्यों हैं/मेरी कामयाबी से सब इतना/परेशान क्यों हैं/हर रात टकराती हूँ मैं एक नई मुश्किल से/नई सुबह के लिए/सबको यह हुनर दिखा/पर किसी ने न जाना/कि जख्मों के निशान क्यों हैं ? स

फीचर सम्पादक, वेबदुनिया डॉट कॉम
डायर पार्क, पुराना नईदुनिया परिसर,
केशरबाग रोड,इन्दौर (म.प्र.)
452009, मो. 9424849649

उनके मांडनों में महकता है हमारा लोक परिवेश

संजय पटेल

लोक परम्परा है कि आँगन की सफाई, धुलाई और लीपने के बाद उसे रिक्त नहीं रखा जाता। माना जाता है कि उसमें उकेरा गया कोई शुभंकर परिवार में मांगलिकता का अवगाहन करता है। यह तो राजस्थान, मालवा और निमाड़ का नियमित जीवनक्रम है कि लीपे हुए आँगन में मांडने बनाए जाते हैं, लेकिन त्यौहारों के आते ही इनकी प्रासंगिकता और बढ़जाती है। ये न केवल गेरू और चूने से उकेरी हुई रेखाएँ हैं, लेकिन इनमें हमारा पूरा लोक जीवन प्रतिबिंबित और प्रतिध्वनित होता है। चौकोर, त्रिकोण और बहुभुजाओं वाले मांडने जीवन में कलाओं की उपस्थिति का स्वर होते हैं।

आमतौर पर इन्हें बनाने में खड़िया (चूना) और गेरू का उपयोग होता आया है। पानी में घोलकर इसे ऊँगली से ही रचा जाता है। जहाँ आगन कच्चे होते हैं वहाँ पर गोबर-मिट्टी से लीपकर वहाँ मांडने रचे जाते हैं। अब तो खैर मांडनों के ऊपर प्रचुर साहित्य उपलब्ध है, लेकिन मूलतः यह कला घर के बुजुर्गों से नई नस्ल तक आगे बढ़ती आई है। दादी-नानी को मांडना बनाता देख बेटे-बेटी और पोते-पोती हमेशा ललकते नजर आए हैं। यह ललक और कौतुक ही कलाओं की समृद्धि का आधार है। देखते-देखते अब मांडने लीथोप्रिंट के रूप में भी बाजार का एक बड़ा उत्पाद बन गए हैं, लेकिन हाथ से बने मांडनों की बात ही कुछ और है। बदलते समय के अनुसार कुछ कलाकार इन्हें ब्रश, रूई और कपड़े से भी बनाते हैं, लेकिन हाथ की सफाई से बने मांडनों की बात ही कुछ और है।

एक समर्थ लेखिका एवं कथाकार ज्योति जैन मांडना कला को नये जमाने तक पहुँचाने वाली बेजोड़ कलाकार हैं। मालवा की नगरी मन्दसौर में जन्मीं ज्योतिजी को विरासत में वे सारे संस्कार मिले हैं जिनमें लिखने-पढ़ने और कलाओं के प्रति अनुराग का भाव उपस्थित रहा है। कामकाजी माता-पिता की अनुपस्थिति में ज्योतिजी ने अपने किशोरवय एवं युवावस्था को मांडना बनाने के रचनाशील समय के रूप में इस्तेमाल किया। यह इसलिए भी संभव हुआ कि उस समय न तो परिवारों में टी.वी. का आगमन हुआ था और न ही मोबाइल ने जिन्दगी की बड़ी जगह घेरी थी। स्कूल-कॉलेज की गतिविधियाँ या तीज-त्यौहार ही मनुष्य के मनोरंजन में इजाफा करते थे। मांडनों के प्रति ज्योतिजी का अनुराग बढ़ता गया और कॉलेज तक आते-आते उन्होंने पेंटिंग को भी विषय के रूप में शामिल किया। इससे पेंसिल, ब्रश और रंगों के साथ एक विधिवत् पहचान और रिश्ता बना। विवाह के उपरांत जब ज्योतिजी इन्दौर आ गईं तब वहाँ भी उन्हें एक ऐसा संस्कारशील परिवार मिला जिसने उनके सांस्कृतिक और साहित्यिक अनुराग को प्रोत्साहित किया।बाल्यकाल में खड़िया-गेरू वाले जिस मांडने को सीखा था वह अब नवाचार की भावभूमि बनाने लगे। ज्योतिजी ने एक्रेलिक,वॉटर कलर और ऑइल पेंट के साथ भी मांडनों को नित-नये रूपाकार दिए। कागज और टेराकोटा पर उन्होंने कुछ अभिनव प्रयोग करके सबको चौंकाया है। इस माध्यम में मांडनों का बनकर आना कलाप्रेमियों के लिए एक नई उत्सुकता बना। कलाकृतियों के रूप में मांडने ने परिवारों और मित्रों के बीच में एक बड़ी उपस्थिति बना ली।ज्योतिजी बताती हैं कि दीवाली के समय घर में फर्नीचर का कुछ काम चल रहा था। बेकार पड़े प्लाई के टुकड़ों पर उन्होंने एक अच्छा बेस बनाकर उस पर मांडनों को रचना शुरू किया। परिजनों ने जब ये काम देखा तो वे सभी अत्यन्त प्रसन्न हुए। दीपावली पर शुभकामना संदेश के रूप में जब ये कृतियाँ मित्रों के बीच पहुँची तो उनसे भी ढेर सारी प्रशंसा मिली। इस बीच एक परिचित ने कलाकृतियों की नुमाइश लगाई जिसमें ज्योतिजी की बेटियों शिखा और चानी ने स्टॉल लगाने का विचार दिया। जब एक्जिबिशन पर काउंटर ले लिया कि समुचित संख्या में मांडने बनाकर रखे जाने चाहिए। बेटियों के साथ मिलकर ज्योतिजी ने तकरीबन 300मांडने तैयार किये। तब लग रहा था कि बहुत बड़ी संख्या तैयार कर ली है, लेकिन सुखद आश्चर्य की बात है कि नुमाइश के बाद बमुश्किल 7-8 पीस शेष बचे। इस आयोजन से प्रोत्साहित होकर ज्योतिजी ने मांडनों का काम प्रोफेशनली भी प्रारंभ कर दिया। कई लोगों और संस्थानों ने स्मृति-चिह्न और मंच सज्जा की सामग्री के रूप में उनके मांडनों का उपयोग किया। इस पहल से मांडनों की लोकप्रियता कुछ और बढ़ी। ज्योतिजी बताती हैं कि मैंने सोचा नहीं था कि शौकिया तौर पर शुरू किया गया यह काम इस तरह से सराहा जाएगा। ज्योति जैन ने एक और भला काम किया। वे मांडनों को बनाने के अपने हुनर को नये कलाकारों तक पहुँचाने में भी संलग्न रहीं। समय-समय पर विभिन्न संस्थानों के आग्रह पर उन्होंने मांडनों की कार्यशालाएँ आयोजित कीं या जब कभी कोई उनसे व्यक्तिगत मार्गदर्शन लेने के लिए घर पर आया तो ज्योतिजी ने सहर्ष प्रशिक्षण दिया।

दहलीज, दीवाली, दुर्गोत्सव पर बनने वाले तोरण, बूटियाँ हमारी लोक संवेदनाओं की अभिव्यक्ति रहे हैं। इन रेखाओं में महज रंग नहीं मनुष्य के अंतस में मौजूद उत्सवप्रियता का भाव स्पंदित होता है। ज्योति जैन के इस हुनर से जुड़ जाने से मांडने की कला को शहरों में भी लोकप्रियता मिली है। समय आ गया है कि वे इंटरनेट की बड़ी उपस्थिति का फायदा लें और मांडनों पर बाकायदा एक वेबसाइट जरूर बनाएँ। गोबर के लीपे हुए आँगन पर बनने वाले मांडनों के लिए अब तक ग्लोबल उपस्थिति का अवसर बन गया है। तकनीक को यदि सृजनशीलता के साथ जोड़ा जाए तो निश्चित रूप से उसे विस्तार मिलता है। राजस्थान, गुजरात, मालवा और निमाड़ से कोसों दूर विदेशों में बस चुके अप्रवासी भारतीय लोक कलाओं के लिए ललकते नजर आते हैं। उन तक मांडनों को पहुँचाने के लिए सुरुचिपूर्ण वेबसाइट आवश्यक हो गई है। ज्योतिजी ने अपनी तमाम साहित्यिक व्यस्तताओं में भी मांडनों को सिरजने के लिए समय निकाला है जो अत्यन्त सुखकर एवं सुकून वाला है।समय बदल रहा है और मनुष्य की सोच भी। मैं इस विपरीत समय में भी इसलिए उम्मीद से भरा रहता हूँ कि हमारे आसपास ज्योति जैन जैसे कलानुरागी मौजूद हैं जो परम्पराओं का सम्मान करते हुए अपनी पूरी ऊर्जा से उसे जमाने तक पहुँचा रहे हैं। बिलाशक ज्योतिजी का यह सुकृत्य भारतीय जनमानस के उल्लास और उमंग को समृद्ध करने में एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है। स

3/1 ओल्ड पलासिया (बीमा नगर)
इन्दौर - 452018
मोबा. 97525-26881

परिजनों की दृष्टि में

माताजी एवं पिताजी के साथ ज्योति

मन की बात

मैं बहुत खुशनसीब हूँ जिसे ज्योति जैसी बेटी मिली है। वह सिर्फ नाम की नहीं, विचारों और कर्म की भी ज्योति है। जब वो हमारी फलवारी में आई तब वह अपने तीन भाइयों की सबसे लाड़ली थी और है। उसे कोई भी कुछ कह देता तो उसके तीनों भाई नाराज़ होकर कहते हमारी एक ही बहन है; इसे कोई कुछ नहीं कहेगा। भाइयों का आग्रह होता कि उसके जन्मदिन पर नए कपड़े खरदे जाएँ और मिठाइयाँ भी बनाई जाएँ। हम एक मध्यमवर्गीय परिवेश के लोग रहे हैं लेकिन सदैव से परिवार में संस्कृति, साहित्य और शब्द के लिए अनुराग रहा है; यह एक लेखिका के रूप में ज्योति में प्रकट हो सकता है इसकी संभावना तो थी लेकिन वह वाकई साकार भी होगा यह निश्चित रूप से एक माँ के लिए रोमांचकारी है।

ज्योति पचास की पायदान पर आ गई लेकिन किसी भी माँ को उसका बच्चा तो हमेशा ही बचपन की स्मृतियों के आनंद से भर देता है इसीलिए यह समय भी कहाँ उड़ गया मालूम नहीं पड़ा। वह बचपन से स्वाध्यायी रही है और उसका शब्द प्रेम ठेठ से रहा है। अब जब वह एक समर्थ लेखिका के रूप में प्रशंसा पाती है तो मेरा मन गर्व से भर उठता है। उसका लिखा हुआ कितना सार्थक और सामयिक है यह तो सुधी पाठक ही जानते हैं लेकिन जब-जब उसकी सराहना होती है तो मुझे लगता है मैंने ही यह सराहना पाई है। माँ की भावुकता असीमित होती है और शायद इसीलिए मैं ज्योति के बारे में इतना सब कह गई। मेरी बात को माँ के नज़रिये से ही देखिएगा तब ही आपको मेरी बात में सच्चाई नज़र आएगी। जीती रहो ज्योति!

श्रीमती अन्नपूर्णा तिवारी
(ज्योति जी की माताजी)

उसके लेखन में मेरा कोई योगदान नहीं

ज्योति सिर्फ मेरी सहचरी ही नहीं है, वरन् एक अच्छी दोस्त, एक अच्छी गृहिणी है। इसके अलावा वो एक सर्वश्रेष्ठ माँ है। मेरे लिए तो वो जिन्दगी की धूरी है। मेरे साथ वो जिन्दगी के हर हिस्से में पूर्णता के साथ शामिल है चाहे फिर वो पारिवारिक मामला हो, सामाजिक गतिविधियों हो या दोस्तों के साथ मौज-मस्ती का दौर हो। वास्तव में जब कभी मैं किसी परेशानी में होता हूँ तो वो अपनी पूरी क्षमता के साथ मुझे उस परेशानी से बाहर निकालने का प्रयत्न करती है और उसमें सफल भी होती है। एक सच बात कहना चाहता हूँ कि उसके लेखन में मेरा योगदान शून्य है, पर उसका उसे कोई मलाल या शिकायत नहीं है। परिवार में विचारों की विभिन्नता के बाद भी ज्योति में सब लोगों को साथ लेकर चलने की अद्वितीय क्षमता है। ज्योति एक अच्छी संगठनकर्ता भी है। संगठन का नेतृत्व करने के बाद भी सभी लोगों को आगे बढ़ाने का प्रयास बिना किसी स्वार्थ के करती है। एक लाइन में कह सकते हैं कि ज्योति के साथ के बिना मैं अधूरा हूँ।

शरद जैन
(लेखक ज्योति जी के पति हैं)

वे हमेशा सकारात्मक रहती हैं...

जब हमें पता चला कि 'समावर्तन' जैसी प्रतिष्ठित पत्रिका में मम्मा के ऊपर एक विशेष स्तम्भ आ रहा है तो बहुत गर्व हुआ, लेकिन जब ये पता चला उसमें हमें भी कुछ लिखना है उनके बारे में तो हम सोच में पड़ गए क्योंकि ''शब्दों की जादूगर'' मम्मा हैं, हम नहीं। ज्योति जैन के बारे में हम ऐसा क्या लिख सकते हैं जो पहले नहीं लिखा गया फिर सोचा ज्योति जैन के बारे में नहीं हमारी ''मम्मा'' के ऊपर लिखेंगे। रोजमर्रा में हम कई बार सुनते हैं ''हम हमारी बेटी को बेटों जैसा पालेंगे'' लेकिन हमने मम्मा से यही सुना है कि बेटी, बेटी ही है उसे बेटा बनाने की जरूरत नहीं है। उन्होंने हमें सिखाया कि हमें स्त्री होने का गर्व होना चाहिए। हम लड़कों से कम नहीं हैं, लेकिन ये साबित करने के लिए हमें लड़का नहीं बनना है। हमें अपने नारीत्व पर नाज करना सिखाया उन्होंने। आज हम अपने-अपने गृहस्थ जीवन में व्यस्त हैं और घर और बाहर के बीच में सामंजस्य बनाने में अगर हम सफल हो पा रहे हैं तो वो सिर्फ हमारी मम्मा की वजह से है, क्योंकि हमने हमेशा उन्हें ये करते हुए देखा है। अंत में हम यही कहना चाहेंगे कि ज्योति जैन के कईरूप हैं वो एक साहित्यकार हैं, एक समाजसेविका हैं, एक होममेकर हैं, एक दोस्त हैं, एक बेटी हैं, एक कलाकार हैं और भी कई रूप हैं, लेकिन उनका सर्वश्रेष्ठ रूप एक माँ का रूप है और हम बहुत भाग्यशाली हैं कि हमारे हिस्से में उनका सर्वश्रेष्ठ रूप आया। इन सबके अलावा एक तो मम्मा ने अपने शौक आज भी बरकरार रखे हैं...चाहे वह बागवानी हो, कुकिंग हो या एडवेंचर स्पोर्ट्स..., केसीनो बजाना सीखना हो या नृत्य... वो जीवंतता का बेजोड़ उदाहरण हैं और वो भी अपनी गृहस्थी के तमाम दायित्व निभाते हुए...। दूसरे आत्मविश्वास उनमें कूट-कूट कर भरा है। ऐसी माँ बिरले ही होगी जो अपनी बेटी को बंजी जंपिंग जैसे खतरनाक खेलों के लिए प्रेरित करें...वे करती हैं और हमेशा सकारात्मक रहती हैं...।

शिखा-चानी
(दोनों लेखिकाएँ ज्योति जी की पुत्रियाँ हैं।)

सहचर शरद जी दोनों पुत्रियों तथा दामादों के साथ ज्योति जैन।

सुधीजनों की दृष्टि में ज्योति जैन की सृजनात्मकता

पारिवारिक जिम्मेदारियों को निष्ठा से निभाते हुए स्त्री का रचनात्मक लेखन करना चुनौतीपूर्ण है। लघुकथा लेखिका ज्योति जैन ने अपने पहले ही उपन्यास में अपनी रचनात्मकता का विस्तार किया है और राजनीतिक उपन्यास लिखने का जोखिम उठाया है। उन्होंने स्त्री विमर्श और राजनीतिक यथार्थ को प्रभावी ढंग से अभिव्यक्त किया है।

चित्रा मुद्गल

ज्योति जैन मालवा की उन लेखिकाओं के बीच महत्त्वपूर्ण नाम है, जिन्होंने संवेदना के बहुआयामी स्वरूप को उसकी तासीर के अनुरूप विधाओं में ढाला है। आशय यह कि इस लेखिका ने अनुभूत अर्न्तवस्तु को विधा-विशेष की चौखट में आबद्ध होने के लिए रचना गढ़ने की कोशिश नहीं की, इसी वजह से जितनी सराहना उनकी रचनाधर्मिता को कविता में मिली, उतनी या उससे भी अधिक लघुकथा-संसार में।

डॉ.सतीश दुबे

ज्योति जैन की कहानी सकारात्मकता लिए होती है। लोग अक्सर कहते हैं कि आजकल स्त्री विमर्श लेखन नहीं हो रहा है, लेकिन मैं ऐसा नहीं मानता। एक स्त्री जिस तरह से भावनात्मक रूप से लेखन कर सकती है या समानता का भाव रखती है, वह पुरुषों के लिए संभव नहीं। ज्योति जैन के पास लोकव्यापी भाषा है, खास तरह का शिल्प और लेखन की अंतर्दृष्टि है।

सूर्यकांत नागर

सुख और दुख, प्यार और नफरत, हृदय में उठने वाले देश-प्रेम और अपने आप से किए गए सवालों की पृष्ठभूमि तो न्यूनाधिक सभी के पास होती है, लेकिन जो सजग और संवेदनशील होते हैं, उनकी यह भूमि विस्तृत होती है। फिर यदि कोई अपनी सजगता और संवेदनाओं को शब्द-बिम्बों में पिरोकर कुछ नएपन के साथ सामने आए, तो बहुत अच्छा लगता है। ज्योति जैन की कविताओं में सजग संवेदनाओं की आकर्षक सादगी है। उनकी कविताओं में बहुत अन्दर तक छूने की क्षमता है। उनकी नारीपरक कविताएँ अद्भुत हैं, मुख्य रूप से जिनके तीन शेड्स है। एक तो प्रेम के वे प्रसंन जहां अंतरंगता का इन्द्रधनुष, समर्पण, आत्मीयता, अनुभूति की सघनता, स्पर्श और नेत्रों की भूमिका है। दूसरे नारी के सामाजिक सरोकार। और तीसरे, नारी का आत्मालाप, आत्मसंवाद। प्रेम की अंतरंगता वाली रचनाओं का कालक्रम मुझे मालूम नहीं है, लेकिन जो भाषा ज्योति ने गढ़ी है, उसमें चिंतन का मौन ज्यादा बोलता है।

अशोक चक्रधर

कहने को तो ज्योति से मेरा परिचय अभी कुछ सालों पुराना ही है, पर मिलने के बाद ऐसा लगने लगा जैसे आज से नहीं बरसों से उसे जानती हूँ। ज्योति के अंदर छुपे कवि हृदय, लघुकथाकार, कहानीकार, उपन्यासकार स्वरूप से समय-समय पर परिचय होता ही रहा है, पर इन सबके अलावा भी उसे जीवन की आपाधापी में पारिवारिक और सामाजिक जिम्मेदारियों को कुशलतापूर्वक वहन करते देखा है, कई विपरीत परिस्थितियों से साहसपूर्वक जूझने का माद्दा भी उसमें देखा है। लेखिकाओं को संगठित कर उनके सहयोग से महिला सशक्तिकरण के प्रतीक रूप में 'वामा मंच' का गठन कर उसे निरन्तर सफलतापूर्वक आगे बढ़ाने का उत्साहवर्धन करने और नेतृत्व करने का गुण भी ज्योति के व्यक्तित्व की खूबी है। ज्योति बस इसी तरह सफलता के मार्ग पर सतत, अथक अग्रसर होती रहे इसके लिए मेरी शुभकामनाएं व आशीर्वाद।

डॉ.अरुणा शास्त्री

लघुकथा में व्यंग्य या आक्षेप की महान धारा सहायक की तरह कथा के साथ बहती है, तब जाकर को कथा पाठक के मन पर वार करती है। श्रीमती ज्योति जैन की लघुकथाओं में इसी धारा के साथ मारक वार करने की क्षमता है।

मंगला रामचन्द्रन

ज्योति जैन का मानना है कि आज जब समाज में चारों और टूटन का माहौल है अपने परिवार, समाज और देश को जोड़े रखने की सामयिक आवश्यकता है। ज्योत से ज्योत जलाकर समाज में रोशनी बिखेरने की पक्षधर ज्योति जी तोड़ने के बजाए जोड़ने के सिद्धंत का अपने जीवन में भी अक्षरशः पालन करती है। दो बेटियों की ममतामयी माँ ज्योति जैन कलाधर्मिता के साथ-साथ एक संयुक्त परिवार की गृहणी के रूप में अपने दायित्व का पूर्ण निर्वाह कर यह संदेश फैला रही है कि किस तरह से परम्परा और नई सोच के बीच सार्थक सेतु बनकर सफलता हासिल की जा सकती है।

गुलशन जायसवाल

हिन्दी साहित्य में नैतिक मूल्यों की दीर्घ परम्परा रही है। साहित्य समाज का दर्पण होता है। साहित्यकार समाज में जो देखता, अनुभव करता है उसकी प्रतिच्छाया उसके साहित्य में छलकती है। नैतिक मूल्य हमारे समाज की आधारशीला है। अतः साहित्य में नैतिक मूल्यों की अभिव्यक्ति दिखाई देती है। वर्तमान समय में मूल्यों में आयी गिरावट को भी साहित्य में प्रश्रय मिल रहा है। साहित्यकार इस माध्यम ये स्पष्ट करने का प्रयास करता है कि यह परिस्थिति बदलनी चाहिए। हिन्दी लघुकथाओं में नैतिक मूल्यों की अभिव्यक्ति हुई है। श्रीमती ज्योति जैन लघुकथा लेखन में सिद्धहस्त लेखिका हैं। उनकी लघुकथाओं में जहाँ नैतिक मूल्यों के दर्शन होते हैं, वहीं मूल्यों में आयी गिरावट को भी लेखिका ने बड़े मार्मिक ढंग से अभिव्यक्त किया है।

मो. शाकिर बशीर शेख

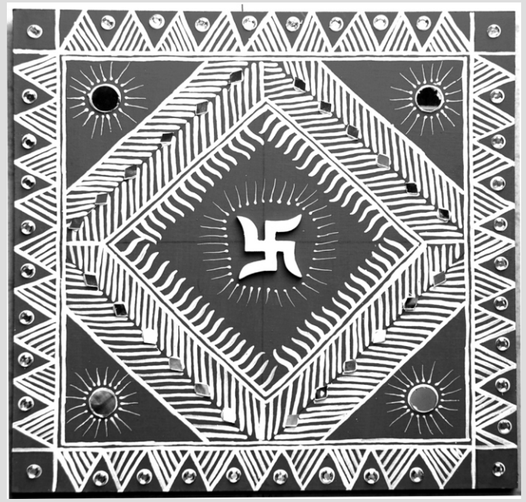

''नारी की ही ताकत है जो मकान, घर बन जाता है.....

बहुआयामी व्यक्तित्व श्रीमती ज्योति जैन से समावर्तन के संपादक श्रीराम दवे की बातचीत

श्रीराम दवे : आपका व्यक्तित्व बहुआयामी रहा है। अपने बारे में कुछ कहने से पूर्व अपने बचपन, शैक्षणिक योग्यता, अभिरुचियों और परिवार आदि पर प्रकाश डालें।

ज्योति जैनः मेरा बचपन मन्दसौर में बीता। मेरा जन्म भी मन्दसौर का ही है। बचपन.... कह सकती हूँ कि अभावों वाला ही रहा। प्रायवेट नौकरी वाले बाबूजी और शासकीय सेवारत माँ (नर्स) दोनों मिलकर गृहस्थी की गाड़ी चला रहे थे, जिनमें हम चार बहन-भाईयों के अलावा बुआ, काका व दादी भी थीं। लेकिन संस्कारों का अभाव नहीं था। घर में धार्मिक वातावरण तो था ही, पूजा-पाठ-व्रत उपवास आदि। साथ ही साहित्य के प्रति भी माँ बाबूजी का अनुराग था। मेरा मन कोर्स की किताबों के बजाए अन्य साहित्य में ज्यादा लगता था। पढ़ाई का आलम ये था कि तीनों बड़े भाई पढ़ाई में होशियार... और मैं फिसड्डी। सबसे बड़े भाई (जो अब जाने-माने नेत्ररोग विशेषज्ञ हैं) जब पढ़ाने बैठते तो पसीने छूटने लगते। पहाड़े मुझे पहाड़ से लगते थे (जिसके कारण आठवीं में गणित में सप्लीमेंट्री से पास हुई) लेकिन माँ-बाबूजी के लाड ने मुझे डॉट या मार से दूर ही रखा। तो बस काम चलाऊ पढाई चलती रही। मुझे खेलकूद पसन्द थे। खेतों में टापे खाना मेरा प्रिय शगल था। स्कूल में भी अलग-अलग प्रतियोगिता में भाग लेती रही। कक्षा 7 व 8 में तो माँ ने मुझे स्कूल की ओर से स्काउट गाइड के केम्प में बाहर भी भेजा। उसी दौरान भाइयों ने मुझे धीरे-धीरे खाना बनाना सिखाया (माँ की नौकरी के चलते तीनों भाई रसोई पकाते थे) हायर सेकण्डरी तक आते-आते मैंने पूरा चौका संभाल लिया। जब विषय चुनने की बारी आई तो भाई साइंस लेने पर जोर देते रहे, लेकिन माँ ने मेरी अभिरुचि पहचानकर कला (आर्ट्स) ही दिलवाया। यही मैं चाहती थी। सो पढ़ाई के साथ-साथ मंच संचालन, खो-खो, एन.सी.सी. आदि चलता रहा।

ऐसा प्रतीत होता है कि शैक्षणिक जीवन में ही आपकी शिक्षेत्तर गतिविधियों में सक्रियता आयी। बतायें कि - साहित्य और लिखने-पढ़ने की ओर कैसे प्रवृत्त हुईं ?

जैसा मैंने बताया कि घर में पुस्तके आती थीं और उस समय पूरी गुवाड़ी में (17-18 घरों में) एकमात्र हमारा घर था जहाँ अखबार आता था (नईदुनिया)। बाबूजी भी मेरे लिए बाल-पत्रिकाएँ खरीदते थे, तो वाचन... संस्कृति तो थी। पहली बार जब अहिल्याश्रम में मेरे परम श्रद्धेय गुरु श्री श्रीराम ताम्रकर सर ने एक कार्यक्रम का संचालन करने को कहा तो कुछ-कुछ लिखकर उन्हें बताया और वो कार्यक्रम सफल रहा।

कॉलेज में प्रथम वर्ष में ही एक प्रस्तुति के लिए आकाशवाणी जाना हुआ। तब वहाँ श्री सुरेश यादव सर ने कहा कि आपकी आवाज भी अच्छी है और उच्चारण भी स्पष्ट, तो आप अनाउन्सर के लिए ऑडिशन क्यों नहीं देती..... ? बस..... मैंने ऑडिशन दिया और चयनित हो गई।

जब वहाँ कार्यक्रम प्रस्तुत करती तो स्क्रीप्ट लिखती। धीरे-धीरे लेखन आदत में आ गया। पढ़ने की लत तो ऐसी थी कि समोसे जिस अखबार के टुकड़े में लिपटे आते, कई बार उसे भी पढ़ने लगती। तब आज जैसे पुस्तकें खरीदने के लिये पैसे नहीं हुआ करते थे।

आपने कहानी, कविता, लघुकथा, उपन्यास, निबंध तथा यात्रा संस्मरण जैसी साहित्य की सभी विधाओं पर कलम चलाई है तथा नौ कृतियों से अपना पाठक संसार बनाया है। बताइये कि इनमें से आपकी प्रिय विधा कौन-सी है, व क्यों ?

जब मैंने अपने भाव शब्द रूप में कागज पर उतारे तो वो पहली विधा कच्ची-पक्की तुकबंदी लिये हुए कविता ही थी। तो लेखन में तो वो मेरा पहला प्यार था। बाद में जब गद्य की ओर आकर्षित हुई तो मुझे सारिका व अखण्ड ज्योति की लघुकथाएँ व लघुकथानुमा प्रेरक प्रसंग बड़े अच्छे लगते थे, इसीलिये जब मेरा पहला संग्रह आया तो वो लघुकथा का ही था। कहानियाँ भी मुझे सदा से रोचक लगती थीं। अखबारों की कोई खबर विचलित, आक्रोशित या प्रभावित करती तो आलेख के रूप में शब्द पन्नों पर उतर जाते। मैं जरा घुमक्कडी प्रवृत्ति की हूँ, सो मुझे प्रकृति से स्नेह है। यात्रा संस्मरण इसी से उपजे। डर शब्द मेरे शब्दकोष में नहीं है, सो यात्राओं में मैंने एडवेंचर भी किये और इसी जोखिम उठाने वाली प्रवृत्ति के चलते मैंने उपन्यास लिखने का साहस किया। तो विधाएँ तो सभी प्रिय हैं, लेकिन फिर भी आप एक प्रिय विधा पूछेंगे तो मैं लघुकथा का ही नाम लूँगी। कारण कि ये गागर में सागर भरने जैसी विधा है।

कम शब्दों में सटीक तरीके से, सही शिल्प के साथ यह विधा गढ़ी जाती है। भव्य वितान नहीं मिलता, लेकिन गूढअर्थ भव्य होते हैं। वैसे भी अपने इम्तहान के दौरान जो कॉपी मिलती थी, मैं उसी में अपने उत्तर लिख देती थी। कभी सप्लीमेंट्री कॉपी नहीं ली। यानि में कम शब्दों में अपनी बात कह लेती हूँ, शायद इसीलिये।

जैसा कि आपके बारे में सुना गया है कि आप कई साहित्येतर संस्थाओं से जुड़कर भी समाज के विकास के लिए काम करती हैं। वे कौन सी संस्थाएँ है तथा उनसे आपको क्या मिला है ?

समाज व देश जिसने हमें सब कुछ दिया है, उसे हम भी कुछ देना सीखें की भावना के साथ अपनी पारिवारिक ज़िम्मेदारियों को निभाते हुऐ भी कुछ करने की इच्छा हमेशा ही रही। गत 21 वर्षों से शिवगंगा अभियान सें जुड़ी हुई हूँ। भारत विकास परिषद् द्वारा ऐसे विकलांग व 'विशिष्ट' लोगों के लिये कार्य किये जो समाज की मुख्य धारा में शामिल नहीं हो पाते हैं। तथा 'शिवगंगा' द्वारा झाबुआ के आदिवासी बंधुओं के बीच जाकर जल अभियान हेतु पदयात्राऐं एवं श्रमदान किया। साथ ही साथ सामाजिक सरोकार का लेखन विशेष उपलब्धि रही। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लेखन के अलावा तीन पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं जिनमें सामाजिक जागरूकता के मुद्दे प्रमुखता से हैं जिनके कारण कई सम्मान हासिल हुए।

प्रख्यात कथाकार मन्नू भंडारी एवं मालती जोशी के साथ ज्योति जैन

आपको इन सामाजिक कार्यों में किन परेशानियों का सामना करना पड़ा ? उन पर कैसे विजय प्राप्त की ?

दरअसल जब भी कोई नारी अपने पारिवारिक दायित्वों से इतर कोई कार्य प्रारंभ करती है तो थोड़ी-बहुत परेशानियों का सामना उसे करना ही होता है, लेकिन फिर भी मुझे लगता है हम सही हैं, हमारा उद्देश्य सही है, अपनी बात सही ढ़ंग से रखते हुए परिजनों को कंविन्स कराया जाए तो मंजिल दूर नहीं रहती। थोड़ी कर्मठता, दृढ़इच्छाशक्ति और आत्मविश्वास जैसी चीजें साथ हो तो कई बार कठिन हालत भी सहज हो जाते हैं। किसी कार्य की शुरूआत में कुछ कठिनाई आए भी तो हार नहीं मान लेना चाहिये। सतत प्रयास करते रहें तो अपना मुकाम हासिल कर सकते हैं। एक बार की असफलता जिन्दगी की नाकामी नहीं होती यही सोचकर आगे बढ़ती रही हूँ।

आपकी सक्रियता ने निश्चित ही आपके परिवार, समाज, मित्रों और खुद को भी प्रभावित किया होगा? क्या ऐसा हुआ ? यदि हाँ, तो कृपया बताएँ ?

सबसे पहले स्वयं की नजर में मैं खुद को एक पूर्ण स्त्री मानती हूँ, स्त्री होने के गर्व के साथ। परिवार के प्रति अपने सारे दायित्वों को पूर्ण रूप से निभाते हुए, स्वयं के लिये समय निकालने वाली सफल व संतुष्ट होममेकर के रूप में स्वयं को पाती हूँ। पिछले 27 वर्षों से एक संयुक्त परिवार का अभिन्न अंग हूँ। पति व दोनों बेटियों की मित्र की भूमिका में भी हूँ।

सामाजिक क्षेत्र में जिन संस्थाओं से जुड़ी हूँ वे साहित्यकार तथा मित्र वर्ग भरपूर स्नेह व सम्मान देते हैं ये महसूस कर सकती हूँ। समय-समय पर होने वाले आयोजन इस बात की पुष्टि कर देते हैं कि सामाजिक स्तर पर आप कितने प्रभावी हैं ? यहाँ तक कि वे विशिष्ट बच्चे जिन्हें ईश्वर ने थोड़ी मानसिक कमी के साथ भेजा, वे भी मेरे प्यार भरे स्पर्श या भाषा को समझते व बदले में प्यार ही देते हैं। या वे भोले-भाले आदिवासी जो ठीक तरह से हम शहरी लोगों को नहीं समझ पाते, मुझे अपने बीच अजूबा नहीं समझते, ये मेरे लिये काफी है।

साहित्यिक व सामाजिक सरोकारों के साथ-साथ मांडना कला के क्षेत्र में आपने उल्लेखनीय कार्य किया है। इस पारम्परिक कला विधा की ओर आकर्षण का मुख्य कारण क्या है तथा इस कला के प्रति आपके आगामी लक्ष्य क्या हैं ?

कला की ओर मेरा रुझान बचपन से था। ये मुझे तब समझ में आ गया था, जब मन्दसौर की गुवाड़ी में घर के कच्चे ओटलों को छाबकर-लीपकर उस पर खडिया व गेरू से मॉडने बनाती थी। चूँकि माँ नौकरी करती तो अड़ोस-पड़ोस की काकी, मामी, भाभी सब सहायता करती थीं। उन कच्चे ओटलों पर कलाकृति खडिया-गेरू को एक कटोरी में गलाकर एक कपड़े की चिन्दी को ऊँगली में लपेटकर उससे बनाई जाती थीं।

कालान्तर में कच्चे ओटले की जगह फर्श व ऊँगली की जगह ब्रश ने ले ली, पर कला वही रही। माँडने जैसी कला एक तो मुझे लगता है ये हमें हमारी परम्पराओं से जोड़े रखती है। दूसरे आँगन में माँडना, रांगोली, तुलसी का कलात्मक चौरा, संझा समय जलता दीप ऐसी चीजें घर में एक सात्विक भाव लाती हैं। घर में समृद्धि, बरकत बनी रहती है। एक गृहिणी और क्या चाहती है। चूँकि हमारी परम्पराओं, उत्सवों, तीज-त्यौहारों से आत्मीयता खत्म होकर ग्लेमर बढता जा रहा है, तो मुझे लगता है कहीं न कहीं हमारी जिम्मेदारी है, अपनी पारम्परिक धरोहरों को सहेजने की। इसीलिये ये माँडने मैं 'प्लाई' पर टेराकोटा से बनाती हूँ, ताकि ये अधिक से अधिक घरों के आँगन में पहुँच सकें। लोग जानें कि मांडना क्या होता है ?

नारी विषयक आपकी दृष्टि क्या है तथा आपके लक्ष्य क्या हैं ?

एक स्त्री होने के नाते मैं सोचती हूँ कि स्त्री को पुरुष के समान ही अधिकार हैं, लेकिन स्त्री मुक्ति के नाम पर बदन उघाड़ने के मैं खिलाफ हूँ। स्त्री मुक्ति के नाम पर कई मर्तबा पुरुषों को प्रताड़ित करने के भी खिलाफ हूँ। स्त्री अपने सम्मान के साथ जिए उसके लिए आवश्यक है कि वह पहले खुद का सम्मान करना सीखे। एक गृहिणी है तो 'मैं कुछ नहीं करती' की सोच से बाहर निकले। आकाश खुला है स्त्री की उड़ान के लिये, लेकिन ये उड़ान विचारों की, आत्मविश्वास व आत्मसम्मान की हो। और यही उड़ान मेरी बेटियाँ भी भरे इसलिये उन्हें सही शिक्षा व संस्कार देने का प्रयास है। सभी स्त्रियाँ ये कर सकती हैं।

देश की राजनीति, अर्थव्यवस्था, सामाजिक दायित्व जैसे मुद्दे भी हर स्त्री का दायित्व है। ये हमारा विषय नहीं है ये सोच नारी इस जिम्मेदारी से मुँह न मोड़े तो देश विकास की पायदान पर अवश्य बढ़ेगा।

जहाँ तक उपलब्धि का प्रश्न है तो कोई भी इंसान अगर ये कहे कि उसे कोई सम्मान या प्रशंसा या उपलब्धि से खुशी नहीं होती तो वह झूठ होगा। अपनी अभी तक की उपलब्धियों से मैं खुश हूँ और आगे भी मेरी योग्यता का (चाहे वह सामाजिक कार्य हो या लेखन) आकलन कर कोई उपलब्धि मिलती है तो यकीनन पाना चाहूँगी। वैसे मेरी सबसे बड़ी उपलब्धि मेरा परिवार है, जो यदा-कदा मतभेदों (मनभेद नहीं) के बाद भी मेरे साथ है।

इतने सारे मोर्चों पर सक्रिय रहकर आपके कृतित्व ने निश्चित ही एक बड़ी लकीर खींची है तथा देश-विदेश की महिलाओं के लिए एक प्रेरक पथ तैयार किया है। समावर्तन के पाठकों (विशेषकर महिला पाठक) के लिए आप कुछ कहना चाहेंगी।

बात समावर्तन के पाठकों के लिये है तो सर्वप्रथम तो मैं 'समावर्तन' को बहुत धन्यवाद देना चाहूँगी कि उन्होंने मेरे सृजन से 'सरोकार' रखा।

'समावर्तन' यानि हमारी संस्कृति के सोलह संस्कारों में से तेरहवाँ संस्कार। आश्रम या गुरुकुल से शिक्षा प्राप्ति के पश्चात् व्यक्ति को फिर से समाज में लाने हेतु यह संस्कार किया जाता था। यानि व्यक्ति को मनोवैज्ञानिक रूप से जीवन के संघर्षों के लिये तैयार करना। तो संघर्ष और बाधाएँ तो जीवन का एक हिस्सा भर हैं। और मानव जीवन की सार्थकता यही है कि हम इनसे बाहर आने का साहस रखें। मानव जीवन भाग्य है, तो स्त्री जीवन सौभाग्य है। नारी की ही ताकत है जो मकान, घर बन जाता है।

मुझे लगता है हर स्त्री अपने स्त्री होने का मान-सम्मान करें। गृहिणी अपने को कभी कमतर न समझे । अपने सपने सप्तपदी के यज्ञ कुण्ड में 'स्वाहा' करने की जरूरत नहीं, बल्कि उस यज्ञ कुण्ड की पावन अग्नि की रोशनी में ये सपने और स्पष्ट देखिये। एक नारी ही परिवार के प्रति अपने दायित्वों को पूर्ण करने में सक्षम होती है। शक्ति स्वरूपा उसे यूँ ही नहीं कहते। तो अपनी शक्ति पहुंचानें। पुरुषों को पछाडने या उनसे आगे निकलने के लिए नहीं, उनके साथ चलने में। दोनों का अपना-अपना स्थान है..... दोनों एक दूजे की पूरक हैं। चन्द तथाकथित नारी मुक्ति के पक्षधर लोगों ने आधुनिकता के मायने बदल दिये हैं, इस भ्रमजाल से दूर रहें।

'शक्ति' के बिना 'शिव' अधूरा है, अपनी शक्ति देकर उसे पूर्ण बनाएँ। देने में बड़ा सुख है....

औरों को प्रेम व सम्मान दीजिये लेकिन पहले स्वयं से प्रेम करें व स्वयं को सम्मान दें..... जिन्दगी बहुत खूबसूरत लगेगी। स

26, निर्माण नगर (रवीन्द्र नगर के पास)
उज्जैन - 456010 मोबाइल : 094259-15010

सुनील गज्जाणी की लघुकथाएँ

साहित्य और संस्कृति से समृद्ध राजस्थान के सुनील गज्जाणी साहित्य की कई विधाओं में लिखते हैं, जिनमें कविताएँ हिन्दी और राजस्थानी में तो बच्चों के लिए नाटक लिखने में भी वे पीछे नहीं हैं। बाल कहानियों और लघुकथाओं के लेखन का उनका अपना रंग है जिसमें राजस्थान की झलक दिखाई देती है।

घरोंदे के लिए प्राप्त कुछ लघुकथाओं में से चयन के पश्चात जिन लघुकथाओं की यहाँ चर्चा की जा रही है उनमें 'हया' पुरानी और नई पीढ़ी के चिंतन के अंतर को बतलाती है। इस लघुकथा में महानगर की संस्कृति में ढली पोती को दादी यह कहकर चुप करा देती है कि ''मेरे जमाने की लड़कियाँ तुम्हारे जमाने की लड़कियों से एक बात में तो हजारों मील आगे थी'', पोती की हँसी तब अचानक गायब हो जाती है। जब दादी प्रतिउत्तर में 'हया' कहती है। आधुनिकता और संवेदनाओं में तालमेल बिठाना कठीन कार्य है। किन्तु 'ख्वाहिश' लघुकथा कुछ हद तक दोनों के साथ न्याय करती दिखाई पड़ती है। जब अपने ही पति से उपेक्षित पत्नी अपनी पति के लिए मोबाइल सिर्फ इसलिए माँगती है कि मोबाइल पर ही सही ''और कुछ नहीं चैटिंग के जरिये आप मुझसे भी खुल कर बाते तो करोगे।'' यह सच भी है। हम इन दिनों आधुनिकता से प्रतिस्पर्धा करते-करते अपनी संवेदनाओं और नाजुक रिश्तों तक को खत्म करते जा रहे हैं।

हम जहाँ भावनात्मक समीकरण बैठाने की बात कर रहे हैं वहीं कुछ समीकरण ऐसे भी हैं जो भावनात्मक भले ना हो पर आर्थिक दृष्टि से प्रभावित अवश्य करते हैं। 'समीकरण' लघुकथा उसी परिदृश्य पर लिखी गई है जहाँ एक गृहिणी अपने तमाम मासिक खर्चों से मात्र छः रू.बचा पाने का अथक प्रयास करती है। और अन्त में प्रश्न वहीं का वहीं खड़ा होता है कि मैं छः रू.किस खर्चे में से निकालूँ ? कुछ ऐसी ही वेदना से रूबरू कराती है 'नींव को बिसरा कंगूरे की गाओ' शीर्षक लघुकथा। जो इन दिनों एक फैशन के तौर पर प्रयुक्त हो रहे आन्दोलन या यूँ कहें विरोध प्रदर्शन के तौर-तरीकों पर आधारित है। विरोध के लिए पानी के मटके फोड़ती गाँव की औरतें अपनी व्यथा बताते हुए कहती है कि हमें पता है पानी का महत्त्व। इस आग उगलती गर्मी में हम कस्तूरी मृग सी हो जाती है। जब हमारे आस-पास के जल स्त्रोत सूखने लग जाते हैं। लेकिन आप सिर्फ एक एक खेल के लिए तीन टेंकर पानी बहाना चाहते हैं। यहाँ भी प्रश्न जस का तस खड़ा है यह कहते हुए कि संवेदनाओं से कभी ड्यूटी नहीं की जाती! सरकारी काम संवेदनाओं से नहीं बल्कि अपनी नौकरी बचाने के लिए किए जाते हैं!

जब-जब प्रकृति अपना प्रकोप दिखाती है उसकी कीमत हमेशा मनुष्य ही चुकाता है। फिर चाहे वह आपदा में फंसा हुआ हो या उसकी सलामती की दुआ करता उसका परिवार ही क्यों न हो लेकिन मीडिया इन सभी संवेदनात्मक विचारों से कोसों दूर है। इसलिए 'सेंसेक्स न्यूज' ऐसी घटनाओं से भी कमाई का जरिया निकाल ही लेती है। बीच-बीच में ब्रेक का नाम लेकर, जिसमें कई सारे विज्ञापनों की शृंखला होती है। मरने वालो की शिनाख्त के नामों में किसी अपने का नाम न होने की कामना करने वाला परिवार उस वक्त स्तब्ध रह जाता है जब रिपोर्टर 'पहले एक छोटा सा ब्रेक' कहता है। उस वक्त मानो सभी की साँसें थम सी जाती है। खैर जो भी हो पर मीडिया अपना कर्तव्य पूरा करती है - लोगों को सजग करने का।

'कर्तव्य' लघुकथा एक ऐसी ही मानवीय चेतना की सजगता का उदाहरण बन कर प्रस्तुत होती है। जहाँ एक चौकीदार नशे का आदि होने के बावजूद खूंखार कुत्तों से नन्हें पिल्ले को बचा लाता है। सिर्फ इसलिए ताकी उसके परिवार और मालिक को ये यकीन हो जाए कि वो गैर जिम्मेदार नहीं है। विपरीत परिस्थिति में स्वयं को सिद्ध करना जानता है। अन्त में वह अपने शब्दों में स्वीकार भी करता है कि 'अब सभी को विश्वास हो जाएगा कि अब मैं किसी नशे का आदि नहीं कर्तव्य प्रिय हो गया हूँ। 'मगर के आँसू' लघुकथा कर्तव्य की आड़ में सामाजिक विडम्बना और संवेदनहीनता का छोटा सा उदाहरण है। जहाँ भावनात्मक लगाव एक तरफ रखते हुए मृतक भतीजे अमित के एक्सीडेंट बाबत खर्चों की लिस्ट थमा दी जाती है। बिना ये सोचे कि एक परिवार अपने आत्मीय के गुजरने से अभी तक संभला भी नहीं है कि ऐसे में खर्चे की लिस्ट अपनी भाभी अर्थात मृतक की मां को थमाना निश्चित ही उसकी संकीर्ण मनोवृत्ति को उजागर करता है।

ऐसे ही कई रिश्तों का ताना-बाना बुनती सुनील गज्जाणी की लघुकथाएँ समाज की कड़वी सच्चाई को दर्शाती है। हालांकि इन लघुकथाओं में कहीं-कहीं रचनात्मक सौन्दर्य की कमी दिखाई देती है बावजूद इसके लघुकथाएँ पाठकों को बांधे रखने का प्रयास करती दिखाई देती है। कुछ नए कुछ पुराने प्रतिमानों को अपना विषय बनाने वाले श्री सुनील गज्जाणी को हमारी शुभकामनाएँ कि वे निरन्तर अच्छा लिखते रहेंगे। स

वाणी दवे शर्मा
मोबाइल : 09009457992

हया

'दादी मुँह फुला लिया ना फिर अपना! अरे दादी ये महानगर है महानगर! यहाँ की लाइफ स्टाइल ही हाई-फाई है। डिस्को पार्टियां तो देर रात तक चलती है और मैं तो फिर भी थोड़ी जल्दी चली आयी! डीयर दादी! आप को मेरे ये पहने कपड़े देखकर हैरानी हो रही है ना, प्यारी दादी मैंने तो ये कपड़े फिर भी सलीके से पहन रखे हैं जबकि आप ने पब और पार्टियों में लड़कियों का पहनावा देखा ही कहाँ है। दादी मुँह फुलाए सी चुप-चाप बैठी सुन रही थी और पोती उसे मनाने का प्रयास कर रही थी! 'दादी, आप को नाज़ होगा कि आप की पोती आपके पोते से कहीं भी कमतर नहीं है और आप जानती होगी कि मेरे ज़माने की लड़कियाँ आप के जमाने की लड़कियों से मीलों आगे हैं!' मानती हूँ ये बात तो कि मेरे ज़माने की लड़कियों से तुम्हारे ज़माने की लड़कियाँ कौसों आगे हैं।' 'तो फिर हर रात जब में नाईट पार्टी से लेट आती हूँ, तो आप अपना मुँह क्यूँ फुला लेती हैं?!'

'बेटा केवल इतनी सी बात कहूँ कि मेरे ज़माने की लड़कियाँ तुम्हारे ज़माने की लड़कियों से एक बात में तो हजारों मील आगे थी।' 'अच्छा, कौन सी?!' पोती हँसती हुई चौंकती बोली! 'हया में।'

ख्वाहिश

पति मुस्कुराता हुआ अपने मोबाईल पर फटाफट उंगलियां दौड़ा रहा था! उसकी पत्नी बहुत देर से उसके पास बैठी खामोशी से देख रही थी, जो उसकी रोज की आदत थी और जब भी कोई बात अपने पति से करती तो जवाब 'हाँ' 'हूँ' में ही होता या नपेतुले शब्दों में!

'किससे चैटिंग कर हो?'

'फेसबुक फ्रेंड से'

'मिले हो कभी अपने इस फ्रेंड से?

'नहीं'

'फिर भी इतने मुस्कुराते हुए चैटिंग करते हो?'

'और क्या करूँ बताओ?'

'कुछ नहीं, फेसबुक पे आप की महिला मित्र भी बहुत सी होगी ना?

'हूँ'

उंगलियों को हल्का सा विराम दे मुस्कुराते हुए पति ने हुंकार भरी!

'उनसे भी यूँ ही मुस्कुराते हुए चैटिंग करते हो, क्या आप सभी को भली-भांति जानते हो'? पत्नी ने मासूमियत भरा प्रश्न पर प्रश्न किया!

'भली-भांति तो नहीं मगर रोजाना चैटिंग होते-होते बहुत कुछ हम आपस में एक दूसरे को जानने लगते हैं और बाते ऐसी होने लगती है कि मानो बरसों से जानते हों और मुस्कुराहट होठों पे आ ही जाती है, अपने से लगने लग जाते है फिर ये!'

'हूँ' और पास बैठ पराये से!' पत्नी हुंकार सी भरने के बाद बुदबुदाई!

'अभी मज़ेदार टॉपिक चल रहा है हमारे ग्रुप में! अरे, अभी तुमने क्या कहा था, ध्यान नहीं दे पाया! बोलो ना फिर से, अरे, यार किस सोच में डूब गयी!'

पति मुस्कुराता हुआ तेजी से मोबाइल पर अपनी उंगलियां चलाता हुआ एक नज़र पत्नी पे डाल बोला!

'किसी सोच में नहीं! सुनो, बस मेरी एक इच्छा पूरी करोगे?'

पत्नी टकटकी लगाए बोली!

'क्या अब तक तुम्हारी कोई अधूरी इच्छा रखी है मैंने? खैर, बोलो क्या चाहिए?'

'मेरा मतलब यह नहीं था, मेरी हर इच्छाएँ आप ने पूरी की है मगर ये बहुत ही अहम है!'

'ऐसी बात, तो बोलो क्या इच्छा?'

'एंड्रॉयड मोबाइल'

'मोबाइल! बस इतनी सी बात, ओके डन! मगर क्या करोगी बताना चाहोगी?' पति चौंकता हुआ बोला!

पत्नी ने भीगी पलकों से प्रत्युत्तर दिया!' और कुछ नहीं, चैटिंग के जरिये आप मुझसे भी खुल कर बातें तो करोगे!'

समीकरण

'महीने का हिसाब किताब बिगड़ गया है चीनी लेने गयी थी दुकानदार बोला, चालीस रूपये किलो हो गयी है छः रूपये और दो, मैं वापिस आ गयी...पैसे और नहीं ले गयी थी मैं...होते भी कहाँ से, सब्जी वाले का, आटे वाले का, दूध वाले, गुड्डू की फीस सभी जोड़कर देख लिया किसी में से भी छः रूपये नहीं बचता! हाँ, वे सभी बोल रहे थे कि हम भी पैसे बढ़ाएंगे, हम लायेंगे कहाँ से? आप से सेठ के पास गयी थी छः रूपये लेने, तो बोला 'रुपये छः लो या सौ, ब्याज बराबर लगेगा और बोला कि तुम्हारे पति कि बीमारी के इलाज़ के वास्ते वैसे भी उधार बहुत दे दिया, अगर वो थोड़े भी ठीक-ठाक हो गए हो तो काम पे भेजो ताकि क़र्ज़ उतरे, मेरी बातें तो सुन रहे होना!'' 'हूँ' पति ने आँखे मूंदे ही प्रत्युत्तर दिया! 'सुनो, फिर मैं अपना सा मुँह लिए चली आई, एक बात बताओ ना, तुम्हारी नौकरी सातवें वेतन में नहीं आती क्या? जहाँ भी देखो। इसी कि चर्चा सुनने को मिलती है, वैसे ये है क्या? खैर, अभी मतलब कि बात करू कि मैं ये छः रूपये किस खर्चे में से निकालू बताओ ना?' पति अब निरुत्तर था!

नींव को बिसरा कंगूरे की गाओ

'पहले बंद करो अपने ये हाय-हाय, मुर्दाबाद के नारे! अगर तुम सब कुछ शांति रखो तो मैं कुछ बोलू! व्यक्ति गुस्से में चिल्लाता बोला!

'लो हो गए हम चुप, अब फरमाइए!' महिला ने अपने हुजूम को शांत रहने का इशारा कर जवाब में कहा! 'अरे, मैं समझ सकता हूँ आप सब के आक्रोश को! मगर मैं क्या करू, मैं तो बस अपना कर्तव्य निभा रहा हूँ यहाँ का कर्मचारी होने के नाते! अच्छा, एक बात बताओ तुम्हारे इन मटकों के यहाँ फोड़ने से क्या तुम्हारे गाँव के सूखे पड़े होद, तालाब में पानी भर जाएगा? या अंदर जो खेल मैदान में मैच की तैयारी के लिए पिछले कुछ दिनों से लगातार पानी का छिड़काव हो रहा है क्या इससे मैदान प्रशासन या जिला प्रशासन बंद कर देगा? जो मुझे नहीं लगता!'

'अगर वे हमारे पानी की समस्या को हल्के में लेगें तो हमारा विरोध हमारा आक्रोश भी बंद नहीं होगा समझ लीजिए'!

'तेवर अच्छे हैं!'

'नहीं ये पीड़ा है, सुनिए साहब हम औरतों को ही पता है पानी की एक-एक बून्द का महत्व! इस आग उगलती गर्मी में हम कस्तूरी मृग सी हो जाती है जब हमारे आस-पास के जल स्त्रोत सूखने लग जाते हैं!'

'बहन जी, मैं समझ सकता हूँ आप की मनोदशा को!'

'साहब, समझने और भोगने में बहुत अंतर होता है! जो रोज हम भोग रही है! हम अपने सिर पर पानी का घड़ा ले कोसो-कोस पैदल चल कर लाती है गर आप समझते तो पानी की यूँ बर्बादी भी नहीं करने देते यहाँ!''

'अरे, यहाँ की बात फिलहाल अलग है शायद तुम्हे पता नहीं होगा कि इस प्रकार के मैंचों से हमारे शहर का और अधिक विकास उन्नति होगी!'

'विकास! अरे जहां आज भी इस भीषण गर्मी में पानी के अभाव में लोग तड़फ-तड़फ कर प्यासे मर जाते है, जहां पानी के लिए आज भी भीख मांगनी पड़ती है, ऐसा विकास? पहले भीख मांगने की परम्परा तो मिटाइए!'

'बहन जी, आप की बात शत-प्रतिशत सही है! मगर मेरे सामने ये बाते करने से क्या होगा! देखिये, दो बात आप कहेगी फिर मैं कहूंगा फिर ये बहस

तकरार में बदल जाएगी! मैं आप के दर्द को अच्छी तरह समझता हूँ इसलिए इतनी सहायता तो कर सकता हूँ की अगर आप सब चाहो तो अपने लिए यहाँ से ज़रूरत मंद पानी ले जाने की अनुमति दे सकता हूँ!' 'अरे ओ साब जी, हम यहाँ अपना विरोध जताने आये हैं, हमें भीख नहीं हक़ चाहिए! और हाँ, हमें पानी की रिश्वत देकर और भ्रष्टाचार फैलाने की कोशिश मत कीजिये!' तैश में आकर उसने जवाब दिया! 'अरे, मेरा मतलब ये नहीं था, आप गलत मतलब निकाल रही है!' अधिकारी सकपकाया सा बोला! 'माफ कीजिये साब, अपने आक्रोश में मैंने ज्यादा ही कह दिया आपको! क्या करे, हमारी समस्या एक दो दिन से नहीं हमेशा रही है!, मेरी समझ में तो हमारा विकास तभी होगा जब पानी की समस्या से जूझने की विरासत को अपनी अगली पीढ़ी को हमें नहीं सौंपना पड़े!'

'ओह, इतनी समस्या है तुम्हारे गाँव में पानी की?'

'मेरे गाँव की स्थिति यूँ बयां कर सकती हूँ की बिवाइयां सी पड़े सूखे खेतों में लूं मानो उनका दर्द और बढ़ाती रहती है! बूढ़े कुँवें तो लगे मानो अपनी उम्र जी चुके हो! 'उफ! बहुत दुखद!' कह संवेदना व्यक्त कर रहा होता है तभी अधिकारी का मोबाईल घनघनाता है! 'हां, ठेकेदार जी! अरे आज दो नहीं तीन टेंकर और जल्दी भेजो मैं मैदान को शानदार घास युक्त बनाने के लिए किसी भी प्रकार से पानी की कंजूसी नहीं चाहता! सख्त लहजे में मोबाईल पे बोला! 'अभी जो आपने संवेदना व्यक्त की फिर वो क्या थी?' ये सुन उसने हैरत में सवाल किया! 'देखिए होने वाले इतने बड़े क्रिकेट मैच में अगर मैदान के प्रबंधन में कुछ भी कमी मिली तो मेरा प्रमोशन तो दूर की बात शाबाशी तक नहीं मिलेगी! और संवेदनाओं से कभी ड्यूटी नहीं की जाती!'

सैंसेक्स न्यूज़

लेह में बादल फटने से जबर्दस्त तबाही, हर तरफ तबाही का मंजर, इस प्राकृतिक हादसे में कितना नुकसान हुआ, फिलहाल कहना मुश्किल है। मगर हर और दिल दहला देने वाले मंजर है, कहीं मिट्टी में लाशें दबी पड़ी है, कहीं टूटे घर, बड़ी-बड़ी गाड़ियां जल समाधि ले चुकी है यानी हर ओर खौफ ही खौफ! लोग खौफज़दा है। यहाँ किसी भी तरह से संपर्क का साधन कट चुका है, ना लाइट है और ना ही पीने का पानी लोगों के पास! प्रशासन और फौज अपनी पूरी तत्परता से अपने राहत कार्यों को अंजाम दे रहे हैं, किसी ने भी अचानक आये आपदा के बारे में सोचा ही नहीं होगा मगर कुदरत किसी को भी नहीं बख्शता और जो प्राकृतिक आपदाएं आती है उसका जिम्मेदार भी तो इंसान ही है जिसका परिणाम भुगतना तो पड़ेगा ही। यहाँ हम जो दृश्य दिखा रहे हैं वो...। एक चैनल का रिपोर्टर हर दृश्य इस तबाही का दिखाता हुआ अपनी रपट कह रहा था। कश्मीर में एक घर बड़ी उत्सुकता से टी वी पर ये सब देख रहा था! सभी के चेहरे शांत, परिवार के कुछ सदस्यों की नम आँखें थी तो कोई अपनी इबादत कर रहा था। घर में एक दम खामोशी पसरी पड़ी थी मगर टी वी पर ये मंजर देख वे सिहर उठे। 'हमें अभी अभी एक सूचना मिली है जिसमें मरने वालो में कुछ की शिनाख्त हुई है जिनके नाम हम टीवी स्क्रीन पे दिखा रहे हैं....!' रिपोर्टर बोला!

'खुदा खैर करे हमारे जान पहचान वाला कोई ना हो इसमें!' उस परिवार की एक महिला बुदबुदायी

रिपोर्टर की ये बात सुन, पूरे परिवार ने अपना खौफज़दा चेहरा लिए अपनी नज़रों को टी वी पे दोबारा गाड ली, मृतकों का नाम सुनने के लिए कि कहीं इस हादसे में अपना कोई ना हो, नमाज पड़ती महिला बरबस रुक गयी सभी सदस्य एक दूसरे का मुँह ताकने लगे। सभी टकटकी लगाये बैठ गए। घर में एक दम सन्नाटा, सभी की धड़कने बढ़ने लगी, साँसे मानो थम सी गयी उनकी। सभी के होठ बुदबुदाने लगे अपनी इबादत में भी कोई उनके लिए कोई अपशगुनी न्यूज़ ना हो। तभी रिपोर्टर बोला- 'पहले एक छोटा सा ब्रेक'! ये सुन मानो सभी की साँसे जम सी गयी!

कर्तव्य

वो जगह-जगह से जख्मी होकर सड़क के खूंखार कुत्तों के बीच से नन्हे पिल्लै को बचा लाया। तमाशबीन रह-रहकर उसकी भूरी-भूरी प्रशंसा करने लगे, तालियाँ बजाते हुए! एक ने कहा 'अरे, वाह! कितना जबर्दस्त जीव-जंतुओं से प्यार है, जो अपनी परवाह किए बिना पिल्लै को बचा लाया।' 'हाँ, कितने खूंखार कुत्ते थे, बन्दा हिम्मत ना करता तो इस पिल्लै की मौत तो पक्की थी!' दूसरा बोला। वो अपने कपड़े झाड़ता, अपने जख्मों को देख मुस्कुराता हुआ सहमे हुए पिल्लै को कुछ हो जाता तो मेरी नौकरी तो फिर से जाती ही जाती जो मुझे इतनी मुश्किल से मिली थी। मुझ जैसे आदमी पर भरोसा रख इस पिल्लै की देख रेख करने के लिए रखा था। मेरा परिवार तो खुश होगा ही यह हालत देख, सेठ जी भी खुश हुए बिना नहीं रहेंगे कि मैंने उनका भरोसा कायम रखा। अब सभी को विश्वास हो जाएगा कि अब मैं किसी नशे का आदि नहीं, कर्तव्य का हो गया हूँ!''

मगर के आंसू

'भैया! अगर आप यूँ ही दुखी रहोगे तो भाभी को कौन संभालेगा, विधि का विधान कभी कोई मिटा पाया है।''मगर तेईस साल का उसका साथ रहा है, एक दम उसे कैसे भूल सकते हैं हम, महीना बीत गया, मगर लगता नहीं कि वो...खैर, अच्छा हुआ जो तूने अपने बीच का बैर भाव भुला कर अमित के एक्सीडेंट के समय जो भाग दौड़ की उसे मैं भूला नहीं सकूंगा।' भैया भर्राया सा बोला। 'भैया! मेरा फर्ज था, आखिर मेरा भतीजा था। आप ऑफिशियल टूर पे थे आप परेशान होंगे इसलिए आपको उस समय इन्फोर्म करना उचित नहीं समझा।' 'हॉ! तू अपनी जगह सही था, तू मेरे बेटे समान ही है, दस साल छोटा जो है...क्या हुआ हम जो अलग रह रहे हैं, मगर मन का फर्क नहीं होना चाहिए, बस।...हाँ! तू बता कैसे आना हुआ अभी! 'भैया, दरअसल इसलिए आया था कि अमित के एक्सीडेंट बाबत मेरे द्वारा जो खर्चा लगा उसकी लिस्ट देने...' चाय का कप भाभी ने देवर की ओर बढ़ाया ही था कि हाथ थम गया। स

सुनील गज्जाणी

जन्म : एम.ए.(हिन्दी राजस्थानी) पीजीडीसीए

प्रकाशित कृतियाँ : किनारे से परे व अन्य नाटक (हिन्दी नाटक), बोई काट्या है (राजस्थानी बाल नाटक), ओस री बूंदा (काव्य संग्रह)

नाट्य निर्देशन : सेठां दो बंदों, मुस्कराते होंठ, कठपुतलियाँ आदि।

रचनाओं का अनुवाद : गुजराती सिंधी, मराठी, पंजाबी भाषा में।

सम्मान पुरस्कार : कथादेश राष्ट्रीय लघुकथा प्रतियोगिता में लघुकथा पुरस्कृत, अभा बाल कहानी प्रतियोगिता सर्वश्रेष्ठ पुरस्कार, राष्ट्रीय कविता प्रतियोगिता, भिलाई वाणी में पहला पुरस्कार, उत्तरी सांस्कृतिक केन्द्र पटियाला द्वारा लघु नाट्य लेखन प्रथम पुरस्कार, महर्षि दयानंद सरस्वती सम्मान, भिवानी (हरियाणा) आदि अनेक पुरस्कारं

प्रसारण : आकाशवाणी एवं दूरदर्शन

पूर्व सदस्य : 'आधार' मानव संसाधन विकास मंत्रालय भारत सरकार से संबद्ध सामाजिक संस्था।

संपर्क : सुथारों की बड़ी गुवाड़, बीकानेर, बीकानेर 334005 (राजस्थान) मो.नं.09950215557

''पानी की तरह राह बनाता नीचे-नीचे''

धारावाहिक आलेख

दस्तावेज का दूसरा दशक

अभिषेक कुमार गौड़

''आदमी को उसका असली चेहरा दिखाना बेहतर है उसे उपदेश देने या उसे अपना शागिर्द बनाने से। इसमें विश्वसनीयता बनी रहती है। आदमी जैसा है उसे उसका वही रूप दिखाना और उसके भीतर छिपी मनुष्यता की तलाश ही 'दस्तावेज' का लक्ष्य बन सके तो पर्याप्त होगा।'' (संपादकीय, अंक 1)

अक्टूबर 1978 में दस्तावेज का प्रथम अंक प्रकाशित हुआ। इस अंक की संपादकीय लिखते समय विश्वनाथ प्रसाद तिवारी ने पत्रिका की आवश्यकता, विचारधारा तथा लक्ष्य पर फोकस किया है। संपादक ने स्वीकारा है कि पत्रिका निकालना एक नरक से गुजरना है। इस यथार्थ से मुठभेड़ करते हुए 'दस्तावेज' का पहला अंक आया। पत्रिका की कोशिश गुमनामी में जी रहे मनुष्य की खोज है। समय के दबाव में चर्चा से दूर हुए अथवा वे लोग जो परिधि में हैं, उनको चर्चा में लाना पत्रिका का लक्ष्य था। संपादक ने स्वयं घोषणा की है कि 'मेरी पत्रिका में वह सब छपेगा जो मेरे विचारों के विरूद्ध है।'

सवाल किसी विचारधारा से सहमत होने का नहीं था बल्कि विचारों के बीच संघर्षरत 'आम आदमी' का था। संपादक ने लिखा है कि आम आदमी ने जिंदगी का जो बिंब बनाया है वह उसे यथार्थ में मिल जाये; यही पत्रिका की सबसे बड़ी उपलब्धि होगी। प्रथम अंक में देवेन्द्र कुमार की कविता 'बहस जरूरी है' लोकतंत्र की विडंबना को उजागर करती है। यह लंबी कविता लोकतंत्र में आम आदमी के बुनियादी हक पर सवाल उठाती है। आपातकाल के बाद की राजनीति से लेखक को कोई उम्मीद नहीं है। महत्त्वपूर्ण यह है कि इन परिस्थितियों में कविता आम आदमी को संघर्ष के लिए प्रेरित करती है। कविता की अपील है कि सब्र की भी एक सीमा है और अब वह सीमा खत्म होनी चाहिए-

''सोचो! फिर सोचो।।/ हाथों को दिमाग के करीब रखकर
सोचो!/मैं दिक्कत है कि तुम सोचते नहीं/ सिर्फ दुम दबाकर भूंकते हो
लीक पर चलते-चलते खुद लीक बन जाते हो।''(प्रथम अंक, पृष्ठ 8)

इसी अंक में नंदकिशोर नवल ने 'बासी और ताजी कविताएं' शीर्षक से सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की कविता पर आधारित किताब 'काठ की घंटियां' और 'बांस का पुल' की चर्चा की है। सर्वेश्वर तीसरे सप्तक के महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर है तथा आपातकाल के विरोध में भी इनकी कविताएं प्रमुखता से छपी हैं। नवल जी ने इस लेख में उनकी रोमानी तथा ग्रामीण परिवेश की कविता को समझने की कोशिश की है।

इस अंक का सबसे चर्चित लेख अरूणेश नीरन का 'पीर का पुराण' है। यह अमृतलाल नागर के उपन्यास 'नाच्यौ बहुत गुपाल' पर केन्द्रित है। इस लेख की ऊष्मा का पता इस बात से चलता है कि दस्तावेज अंक 2 में इस लेख में उठाये गये सवालों पर अमृतलाल नागर का लंबा जवाबी पत्र छपा है। समीक्षक की एक टिप्पणी के हवाले से कहा गया है-'खोखलेपन में बहुत कुछ भरा होता है' मसल' नागर जी की है, लेकिन इस उपन्यास पर बखूबी लागू होती है। इस पंक्ति से ही लेख के प्रवाह का पता चलता है।

पत्रिका में टिप्पणी के अंतर्गत राजेन्द्र यादव ने 'सामाजिक परिवर्तन और कथा साहित्य' पर विचार प्रकट किये हैं। समाज के परिवर्तन और दवाब साहित्य में अनिवार्य रूप से शामिल रहे हैं। उपन्यास और कहानी के माध्यम से राजेन्द्र यादव ने साहित्य एवं समाज के संबंधों की पड़ताल की है।

अगला स्तंभ लेखों का है जिसमें चार आलेख सम्मिलित किये गये हैं। विजयमोहन सिंह ने 'समकालीन हिन्दी उपन्यास : व्यक्ति और समूह का अंतराल, बच्चन सिंह ने 'कहानी : संरचना और मूल्य', रामचन्द्र तिवारी ने 'रचना की चुनौतियाँ और आलोचना की सृजनशीलता' तथा परमानन्द श्रीवास्तव ने 'समकालीन साहित्य और सांस्कृतिक अस्मिता' शीर्षक से लेख प्रस्तुत किये हैं। ये आलेख मनुष्य और साहित्य के बीच संवाद की शिथिल हो चुकी परंपरा को पुनः गति प्रदान करते हैं। परमानन्द श्रीवास्तव ने संस्कृति के घटियापन से साहित्य को बचाने पर जोर देते हैं।

संस्मरण के अंतर्गत विद्यानिवास मिश्र की रोमानिया यात्रा पर आधारित संस्मरण इस अंक में शामिल है। भारतीय भाषा संस्कृति ग्रन्थों के प्रति जो लगाव लेखक ने वहाँ देखा था, वह दिल्ली में भी कठिनाई से मिलता है। लेखक की टिप्पणी है-''जो रोमानियावासी हिन्दी सीखकर दिल्ली जाते हैं, उन्हें दिल्ली में निराशा होती है, क्योंकि वहाँ लोग उनसे अंग्रेजी में बात करते हैं।'' (पृ. 61)

दस्तावेज का प्रमुख आकर्षण समकालीन भारतीय लेखन है। इस शीर्षक के तहत सीताकान्त महापात्र ने आधुनिक ओड़िया कविता डोंगरी साहित्य के विकास पर पद्मा सचदेव तथा कुछ ओड़िया एवं डोंगरी कविताओं को भी शामिल किया गया है। हिन्दी पट्टी अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य से प्रायः अनभिज्ञ रही है। दस्तावेज ने इस कालम के अंतर्गत एक महत्त्वपूर्ण आवाजाही हिन्दी से इतर भाषाओं के साथ शुरू की है।

दस्तावेज का दूसरा अंक जनवरी 1979 में निकला/इस अंक की शुरूआत संपादकीय से नहीं बल्कि प्रवेशांक के संदर्भ में आये पत्रों से होती है। इस क्रम में विभिन्न प्रदेशों से आये 40 पत्रों को शामिल किया गया है। जहाँ अधिकांश पत्रों में पत्रिका का स्वागत किया गया है तथा इसकी बेहतरी के सुझाव दिये गये हैं, वहीं कुछ में असहमति भी व्यक्ति की गई है। उन पत्रों को भी छाप कर 'पत्रिका' ने लोकतांत्रिक आजाजाही के रास्ते को कायम किया है। एक पत्र के उत्तर में संपादक की टिप्पणी महत्त्वपूर्ण है- ''असहमति बुद्धि का लक्षण है और उसकी अभिव्यक्ति साहस का। ये दोनों मनुष्यता के बुनियादी मूल्य हैं। मजहब में इन दोनों की गुंजाइश नहीं होती। मैं अपनी पत्रिका को इन मूल्यों से वंचित नहीं करना चाहता।'' (अंक4 पृ.6)

अमृतलाल नागर का लंबा पत्र अरूणेश नीरन के लेख 'पीर का पुराण' (प्रथम अंक में) के प्रतिउत्तर में छपा है। इसमें नागर जी ने एक-एक करके सभी शंकाओं का समाधन किया है। अमृता प्रीतम ने लेखक के बारे में लिखा है- वह अपने पात्र का मन अपनी छाती में डाल लेता है और अपने पात्र के आँसू अपनी आँखों में। फिर भी उनका अपना अस्तित्व इतना सा अलग जरूर रहता है कि उसे कहानी का तीसरा पात्र कहा जा सकता है। नागर जी ने भी अपने पत्र में लेखक के व्यक्तित्व को पात्र के साथ न जोड़ने की राय दी है।

कविता खण्ड में छः कविताएं शामिल की गई है। ज्ञानेन्दपति की दो कविताएं शामिल हुईं- 'ट्राम में एक याद', 'शहर की रात में आग' कविताएं ताजगी से भरी हैं। स्वदेश भारती की पाँच सवार लम्बी कविता है। सम्बन्धों की दुनिया शीर्षक से बलदेव वंशी की कविताएं प्रभावित करती हैं। इन कविताओं की सफल व्याख्या धूमिल इन पंक्तियों में करते हैं-

''उसने जाना कि प्यार/ घनी आबादी वाली बस्तियों में
मकान की तलाश है।''

भारतभूषण अग्रवाल का अधूरा नाटक 'लक्ष्मण चरित' इस अंक में शामिल है। इस नाटक में सीता के द्वारा कही गई बात महत्त्वपूर्ण है-''प्यार पत्नी के आनन्द या पत्नी के सुख के लिए नहीं पागल। अपने व्यक्तित्व की पूर्णता के लिए, जीवन के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण के लिए।'' (अंक 2, पृ. 34) रामदेव शुक्ल का लेख 'समाज के बदलाव में साहित्य का हस्तक्षेप' महत्त्वपूर्ण है। साहित्य सामाजिक जटिलता की खोज करता है। यह पूरा लेख काशीनाथ सिंह के कहानी संग्रह 'आदमीनामा' पर केन्द्रित है। सच्चा साहित्य अपने समय एवं समाज के प्रति सचेत रहता है।

टिप्पणी कॉलम में शंभूनाथ ने कैसा ''अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य?'' शीर्षक से कई सवाल उठाये हैं। 1979 से लेकर आज 2018 में भी 'अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता' पर बहस लगातार जारी है। सत्ता का स्वभाव है कि वह प्रतिरोध को सहजता से नहीं

लेती किन्तु कई बार लेखक पद लोलुपता में चाटुकार बन जाते हैं। आपातकाल में यह प्रवृत्ति कई लेखकों में दिखाई दी है। साहित्यकार के लिए प्रतिबद्धता बहुत जरूरी है, किन्तु यह आम आदमी के प्रति होनी चाहिए, सत्ता के साथ नहीं।

इस अंक में 'शब्द और सर्जन' शीर्षक से रामस्वरूप चतुर्वेदी ने प्रभावी लेख लिखा। हरदयाल ने आधुनिक ''हिन्दी कविता और अकेलापन' शीर्षक से सार्थक हस्तक्षेप किया है। किन्हीं अर्थों में कविता अकेलेपन की उपज है। कई बार लेखक अकेलेपन को कविता का जरूरी बिंब मानकर कविता लिखते हैं, जो महज फैशन बनकर रह जाता है। आलोचक पंकज चतुर्वेदी ने कहा है कि ''अगर आप अवसाद में हैं, तो इसका मतलब आप सही है। अकेलापन सिर्फ अवसाद को जन्म नहीं देता, बल्कि संवेदना, साहस तथा सृजन को भी मजबूती देता है। महादेवी वर्मा की पंक्तियाँ शामिल करें तो-

''अपने सूनेपन की मैं हूँ रानी मतवाली
प्राणों का दीप जलाकर भरती रही दीवाली''

समकालीन भारतीय लेखन स्तम्भ में गुजराती और मराठी कविताओं पर लेख और कविताएँ शामिल की गई हैं। रघुवीर चौधरी ने गुजराती कविता में मनुष्य की खोज की है, तो चंद्रकांत वांदिवडेकर ने स्वतंत्रता के बाद मराठी साहित्य की परंपरा को समझने का प्रयास किया। विद्याधर वैद्य की मराठी कविता 'विवाह' छोटे स्वरूप के बावजूद गंभीरता से 'विवाह संस्था' पर प्रश्न खड़े करती है। आज के समय में विवाह महज एक रस्म बनकर रह गये हैं, संबंधों की ऊष्मा समाप्त हो गई है।

इन दो अंकों के साथ ही 'दस्तावेज' ने अपने को स्थापित कर लिया था। साहित्यिक पत्रिकाओं के बीच धीरे-धीरे ही सही 'दस्तावेज' ने एक राह बनानी शुरू कर दी थी। अप्रैल 1979 में पत्रिका का तीसरा अंक निकला। इस अंक की शुरूआत में ही पत्रिका के संदर्भ में 49 पत्र छपे हैं। पत्रिका निकालने का जो जोखिम विश्वनाथ तिवारी ने उठाया था, ये पत्र उस जोखिम की हिमायत करते हैं। संपादकीय का शीर्षक 'भुटटो को फाँसी दिये जाने पर' है। लोकतंत्र अपने इतिहास में कई बार खतरे में पड़ा, कई बार आहत हुआ, किन्तु पुनः मजबूत होकर निकला है। भुटटो को मिली फाँसी फिर से इस बहस को जन्म देती है कि 'जन की ताकत' आखिर कहाँ है? लोकतांत्रिक होने के बावजूद हम बर्बरता के पोषक और शिकार दोनों हैं। इस संपादकीय में तिवारी जी ने एक बहस को जन्म दिया, ''क्या हम वास्तव में मनुष्य हैं?'' लोकतंत्र के साथ बार-बार हो रही दुर्घटना इस बात का सबूत है। भारत में 1975 का आपातकाल भी लोकतंत्र के साथ अराजकता थी, यही फूहड़पन भुट्टो की फाँसी में भी झलकता है। लोकतंत्र के हिमायती और उसमें आस्थावन व्यक्ति हमेशा अफसोस और शर्मिन्दगी के बीच झूलता रहा है।

इस अंक में विभिन्न शीर्षकों से 21 कविताएँ शामिल हैं, जो इस पर 'कविता केन्द्रित' अंक होने का खतरा पैदा करती है। 'इर्द गिर्द आजादी' शीर्षक से वशिष्ठ की कविता आजादी का शोकगीत गाती है। कविता की एक पंक्ति है- *'किन्तु आज हम आँसुओं से भी खाली हो गए हैं।'* आजादी के बाद हमारा यही हासिल रहा है। उदय प्रकाश की कई कविताएं प्रासंगिक हैं। छोटी-छोटी कविताएं सतसई के दोहों की भाँति गंभीरतम घाव करती हैं। उदय प्रकाश की 'मरना' इस अंक की सर्वश्रेष्ठ कविता कही जा सकती है।

प्रथम अंक की तरह ही अरूणेश नीरन ने संपादक को निराश नहीं किया है। 'विनयी विनायक की त्रासदी' शीर्षक से रमेशचन्द्र शाह के उपन्यास 'गोबर गणेश' की समुचित समीक्षा नीरन जी ने की है। अरूणेश जी की स्थापना है कि विनायक की व्यथा पूरे परिवेश की है, किन्तु उसका हल पूरे परिवेश का नहीं है। आज का मनुष्य अधूरेपन से परेशान है और अपनी पूर्णता की खोज में भटक रहा है, इस भटकाव की कथा को रमेशचन्द्र शाह ने उपन्यास में प्रस्तुत किया है। नाटक लेखन के बदलावों और उसके सिमटते दायरे को गिरीश रस्तोगी ने 'नवनाटय लेखन का संदर्भ' में समझा है।

'स्वाधीनता, मार्क्सवाद और लेनिनवाद' विषय पर रणजीत की सार्थक टिप्पणी इस अंक में दर्ज है। साम्यवादी क्रांति में लेनिन की विचारधारा तथा सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व के बरक्स उनकी चिंताओं पर प्रकाश डाला गया है। शिवकुमार मिश्र ने 'विद्रोही चेतना और कबीर' विषय पर लेख इस अंक में लिखा है। कहते हैं- समय ध्वंसात्मक हो तो भाषा सहज नहीं रह पाती। कबीर का समय कई तरह की रूढ़ियों से बंधा था। कबीर ने समय के साथ सामंजस्य स्थापित न करके 'जब्दी हुई मानसिकता' का विरोध किया। हर आकर्षण को ठुकराकर कबीर ने प्रतिरोध की नई संस्कृति कायम की और सांस्कृतिक नवनिर्माण के अगुवा बने। 70 के दशक का जो समय रहा है, वह कबीर जैसे किसी योद्धा की ही मांग करता है।

समकालीन भारतीय लेखन में इस बार बांग्ला कविता पर चर्चा की गई है। लालबाबू श्रीवास्तव ने 'समकालीन बांग्ला कविता' शीर्षक से लगभग 20 बांग्ला कवियों का मूल्यांकन किया है। बांग्ला कविता में नये शब्द, संस्कार ताजगी के साथ आक्रोश के स्वरों की पहचान समीक्षक ने की है। बांग्ला भाषा की कुछ कविताएं भी शामिल की गई हैं जिनमें अद्भुत अंधकार (जीवनानन्ददास दास), सहज सुंदरी (कविता सिंह) जैसी कविताएँ प्रभावित करती हैं।

इस अंक में देशान्तर शीर्षक से एक नया कॉलम शामिल किया गया है। इस बार पाब्लो नेरूदा (स्पेनी भाषा के कवि) के काव्य संसार पर विश्वनाथ प्रसाद तिवादी का महत्त्वपूर्ण लेख शामिल है। इसके अलावा उनकी कुछ कविताएँ भी शामिल हैं। यह स्तंभ विदेशी भाषा के कवियों एवं उनके साहित्य के विषय में महत्त्वपूर्ण जानकारी पाठक तक पहुँचाने में सफल रहा है। देशांतर शीर्षक निश्चित रूप से 'दस्तावेज' को एक सार्थक और ऐतिहसिक पहचान देने का कार्य करेगा।

जुलाई 1979 में दस्तावेज का चतुर्थ अंक प्रकाशित हुआ। पूर्व की भाँति इस अंक की शुरूआत भी पत्रों से हुई है और 43 पत्रों को इस अंक में शामिल किया गया है। मेरा मानना है कि पत्रों की अधिकता कविता पत्रिका के विपक्ष में जाती है। दस्तावेज ने अपने तेवर से खुद को स्थापित कर लिया था, उसे किसी तरह के प्रचार की आवश्यकता नहीं थी। इन पत्रों में कई पाठकों ने 'कविता' की अधिकता पर टिप्पणी की है। दस्तावेज के संदर्भ में डा. राजेन्द्र कुमार ने अपने पत्र में महत्त्वपूर्ण टिप्पणी की है। उन्होंने लिखा है- ''दस्तावेज के लिए आप जितना जो कुछ कर रहे हैं, वस्तुतः वह महज साहित्यिक पत्रकारिता के हित की चीज नहीं है वरन आज की अस्वस्थ मतवादी दृष्टियों के प्रभावों के सामने साहित्य की मूल चेतना को धुँधला बनाने से रोकने की एक कारगर कोशिश है।'' (दस्तावेज, अंक 4, पृ. 4)

इस अंक में 28 कविताएँ शामिल की गई हैं। अब्दुल बिस्मिल्लाह की 'इतिहास', भगवत रातव की 'बीच जंगल में', 'तब तक', विद्यानिवास मिश्र की 'आचार्य द्विवेदी के महाप्रयाण पर' तथा राधेलाल बिजघावने की 'औरतें' कविता मूल्यवान है। 'औरतें' कविता की कुछ पंक्तियाँ सम्मोहित करती है-

''लोगों के नंगेपन से/आकाश चुप है
चुप्पियाँ सहती धरती/दरक गयी है।''

इस अंक में राजेन्द्र प्रसाद पाण्डेय ने 'धूमिल की काव्य-भाषा' का मूल्यांकन किया है। आजादी के बाद लोकतंत्र की विडंबना पर धूमिल और रघुवीर सहाय सबसे ज्यादा मुखर रहे हैं। धूमिल की भाषा को 'तेजाबी व्यंग्य', सर्वाधिक ताजा मुहावरों के कवि कहा गया है। इसके अलावा उनकी भाषा पर 'अश्लीलता' के भी आरोप लगे हैं। इन सबके बीच सबसे सशक्त कविता भी धूमिल ने लिखी है। लेखक हिंसा नहीं करता अतः उसका औजार भाषा ही बनती है। समीक्षक ने लिखा है-''सशक्त कविता में भाषा का उसी प्रकार भरपूर उपयोग होता है, जैसे तुमुल युद्ध में शक्ति का।'' समय की घुटन से ऊबकर ही साठ के दशक में कवियों की भाषा में तल्खी साफ दिखती है। धूमिल ने अपनी भाषा को ताकत (हथियार) की तरह इस्तेमाल किया है। भाषा के दम पर ही धूमिल की कविता ने एक लंबी लकीर खींच दी है।

समकालीन भारतीय लेखन स्तम्भ के अंतर्गत तमिल साहित्य पर एस.एन. गणेशन का लेख शामिल है। 'स्वातंत्रयोत्तर तमिल साहित्य पर लिखे इस लेख में कविता, उपन्यास, कहानी, नाटक तथा एकांकी की चर्चा की गई है। यह आलेख लेखक की सजगता का बढ़िया उदाहरण है। वैचारिक विश्लेषण-गहराई से युक्त यह लेख सहज, प्रवाहवान है। लेखक का निष्कर्ष है कि ''रूढ़मूल आस्थाओ के कारण तमिल साहित्य की जड़ें उसकी अपनी ही संस्कृति में जमी हुई हैं। यह स्तम्भ निश्चय ही पाठकों के लिए ज्ञान का भण्डार है। इसके माध्यम से साहित्य की दूसरी भाषाओं से ज्ञानात्मक साहचर्य होता है।

देशान्तर कॉलम में इस बार सिर्फ कविताएँ शामिल की गई हैं। मायकोव्स्की (जर्जिया), फिलिपलॉरकिन (इंग्लैण्ड), चार्ल्स हामलिंसन (इंग्लैण्ड) की दो-दो कविताएँ छापी गई हैं। मायकोव्स्की की कविता प्रभावी है। इनकी कविताओं के भाव और शब्द चयन आकर्षित करते हैं। एक कविता की पंक्तियाँ सम्मोहित करती हैं-

''और जब यह सूर्य /एक मोटे होते हुए सुअर की तरह सन्तुष्ट / एक ऐसे भविष्य के क्षितिज पर उगेगा
जहाँ कोई भिखमंगा और कोई अपंग नहीं होगा।''
(दस्तावेज, अंक 4, पृ. 84)

चार्ल्स टामलिंसन इंग्लैण्ड के प्रसिद्ध प्रकृति सौन्दर्य शिल्पी थे। इनकी कविता में यह कद साफसाफ दिखता है-

''डुलमुल सूरज के चंगुल में फँसी/ तटबद्ध हरियाली के बाह्य किनारों में,/ नीचे दबी गीली हवा के /जो उन्हें गला देने के लिए रहती तत्पर''

इस प्रकार अंक 4 टुकड़ों में प्रभावित करता है। देशांतर स्तंभ इस बार सर्वाधिक सशक्त है, तो धूमिल की काव्यभाषा पर लिखा आलेख ऊर्जा को बढ़ाता है। अन्य अंकों की तुलना में यह अंक औसत रहा है।

इस प्रकार 'दस्तावेज' पत्रिका के एक वर्ष पूर्ण हुए। दस्तावेज का 5-6 अंक संयुक्त रूप से विशेषांक रूप में निकला। यह आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी पर केन्द्रित था। द्विवेदी जी का कद, उनके प्रति प्यार इस बात से पता चलता है कि पूरे दो अंक उन पर केन्द्रित हो गये। इस विशेषांक में शामिल लेखों में से किसे औसत कहा जाये, यह तय करना मुश्किल है। द्विवेदी जी को समग्रता से समझने एवं उनसे जुड़ी तमाम शंकाओं के निदान में इस अंक की महती भूमिका है।

प्रथम अंक की संपादकीय में विश्वनाथ प्रसाद तिवारी ने लिखा है- रचना प्रायः पुरानी नहीं होती, वह नई चुनौतियों के बीच अपनी नई अर्थवत्ता का सबूत देती रहती है। ''यह अंक द्विवेदी जी को साहित्यिक श्रद्धांजलि है, तो बदले हुए समाज में उनके साहित्यिक प्रस्तावों का पुनः आंकलन भी है। संपादक ने बुद्धिजीवियों के मध्य एक वैचारिक आंदोलन खड़ा करने का प्रयास किया है। अंक 4 में छपे उदय प्रकाश के पत्र में कहा गया है कि- ''बहसों का यह सिलसिला अगर चलता रहे तो हर अंक संग्रहणीय रहेगा।'' 'दस्तावेज' का प्रयास बहस को दिशा देने का है। रघुवीर सहाय की कविता कुछ ऐसा ही महसूस करती है-

''हम एक गरीब देश के रहने वाले हैं इसलिए
हमारी मुठभेड़ हर वक्त रहती है ताकत से''

प्रभाकर माचवे ने द्विवेदी जी के कई संस्मरण इस अंक में साझा किये हैं जो द्विवेदी जी के व्यक्तित्व से साक्षात्कार कराते हैं। लेखक से पाठक का जुड़ाव सिर्फ रचना से होता है, इस तरह के संस्मरण समग्रता में लेखक को समझने तथा उसकी रचना प्रक्रिया को जानने में मदद करते है।

सह विशेषांक चार भागों में विभाजित है। प्रथम भाग में द्विवेदी जी का व्यक्तित्व, दूसरा उनकी साहित्यिक मान्यता, प्रभावों, पर, तीसरा आलोचना तथा निबंधों पर तथा आखिरी उनके लिखे पत्रों पर आधारित है। यद्यपि इस अंक में संपादकीय नहीं लिखी गई। किन्तु प्रत्येक खण्ड में संपादक के लेख शामिल हैं, जिससे संपादकीय की कमी नहीं खली है। आचार्य और डाक्टर द्विवेदी (इन्द्रनाथ मदान), एक मानवीय व्यक्तित्व (प्रेमशंकर) सर्जना ही बड़ा सत्य है। (रामदरस मिश्र), न मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किंचित (विश्वनाथ तिवारी) आदि इस खण्ड के प्रमुख लेख है। इन लेखकों का सार यह है कि रचनात्मक कर्म ही सबसे बड़ा सत्य और लेखकीय भूमिका सबसे बड़ी पहचान है।

द्वितीय खण्ड में विश्वनाथ प्रसाद तिवारी ने लिखा है ''द्विवेदी जी का साहित्य मनुष्य की विराट गरिमा का साहित्य है।'' जनसाधारण के प्रति जो बेचैनी, पीड़ा द्विवेदी जी की रचनाओं में है, वह उन्हें असाधारण की श्रेणी में स्थापित करती है।

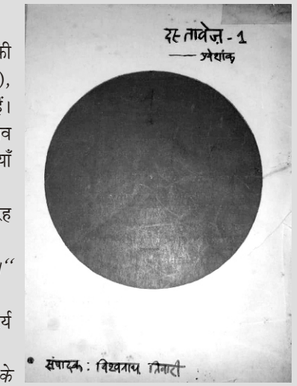

जहाँ उन्होंने हजारों साल पुरानी परंपरा को आत्मसात किया वहीं आधुनिकता के प्रति नकार भाव नहीं है। द्विवेदी जी की यह सहृदयता उनके लेखन को धार देती है। विचार और वितर्क, में संकलित निबंध द्विवेदी जी ने घोषित किया है कि-''हमारा परमलक्ष्य मनुष्यत्व है।''

यह दृष्टि द्विवेदी जी की आलोचना एवं उपन्यासों में भी है। गोपाल राय ने द्विवेदी जी के उपन्यासों में ऐतिहासिक यथार्थ की खोज की है। इस लेख में उपन्यासों के माध्यम से अतीत और वर्तमान संबंधित चर्चा को शामिल किया गया है। समीक्षक की टिप्पणी है- द्विवेदी जी ने अपने उपन्यासों में कतिपय दोषों के बावजूद भारतीय इतिहास के कुछ कालखण्डों को उनकी संपूर्णता में, अनके सारे अन्तर्द्वन्द्रों, विरोधाभासों, कमजोरियों और शक्तियों के साथ प्रस्तुत किया है। (दस्तावेज अंक 5-4, पृ. 160)

इस खण्ड के सभी लेख महत्त्वपूर्ण है परमानंद श्रीवास्तव. बच्चन सिंह, नवलकिशोर, अरूणेश नीरन, रामचन्द्र तिवारी, नन्दकिशोर नवल, रामजी तिवारी जैसे विद्वानों के विचार इस अंक को ऐतिहासिक गरिमा देते है, तो इसे संग्रहणीय भी बनाते हैं। अंतिम (4) खण्ड में द्विवेदी जी के पत्र छापे गये हैं। लेखक की निजी जिंदगी में देखने की खिड़की का काम इन पत्रों से हुआ है। पत्रों में उनकी आत्मीयता तथा चिंता बताती है। कि एक व्यक्ति कैसे महान बनता है। द्विवेदी जी विशिष्ट होकर नहीं, बल्कि सामान्य होकर जीने में विश्वास रखते थे, यही उनकी प्रसिद्धि का कारण है।

दस्तावेज का अंक 7, 8 प्रेमचन्द्र केन्द्रित विशेषांक है। यह अप्रैल-जुलाई 1980 का समय था। एक ओर यह आपातकाल का उत्तर समय था, तो दूसरी ओर जनता पार्टी से मोहभंग का भी दौर शुरू हो गया था। प्रेमचन्द्र हिन्दी जागरण के आधार रहे हैं। आपातकाल को दूसरी आजादी की संज्ञा दी गई है। ऐसे समय में साहित्य की भूमिका फिर से तय हो रही थी, अतः प्रेमचन्द्र पर विशेषांक सर्वाधिक प्रासंगिक तथा जरूरी घटना है।

आधुनिक समय में संकट न एक आयामी था, न द्विआयामी, बल्कि बहुआयामी था। एक ही आदमी कई संकटो से घिरा था। मनुष्य के आदर्श साथ दौड़ रहे थे, विचार बोध धाराशायी हो रहा था। समकालीनता पर नजर डालें तो प्रेमचन्द्र के पात्र बिखरे पड़े है। हमारे सामने उपस्थित होकर पूरी ताकत से बोलते है और अमर हो जाते है। आधुनिकता के सभी लक्षण प्रेमचन्द्र के यहाँ मौजूद है। कथा साहित्य की सामर्थ्य को प्रेमचन्द्र ने शुरूआत में ही पहचान लिया। उनके साहित्य के केन्द्र में दलित, स्त्री, किसान, सामाजिक कुरीतियाँ, आदर्श एवं यथार्थवादी परंपरा तथा मजदूर रहे हैं। ऐसे विषय साहित्य में ठीक-ठीक परिभाषित नहीं हुऐ थे, प्रेमचन्द्र ने इन्हें आवाज दी है। 70 के बाद का दशक फिर से ऐसे ही किसी साहित्यिक हस्तक्षेप की आवश्यकता महसूस करता है। प्रेमचन्द्र अपनी रचनाओं में सबके संघर्ष को शामिल करते हैं। यह विशेषांक भी चार भागों में विभाजित है। प्रथम खण्ड में मानवीय आदर्श साम्पदायिकता समकालीनता के तत्त्व तथा नवजागरण सम्बन्धित सवालों के बहाने प्रेमचन्द्र के रचना कर्म को समझा गया है। इस खण्ड में सुरेन्द्र चौधरी, राजेन्द्र कुमार, गोपाल राय, चन्द्रकांत वांदिवडेकर, शम्भूनाथ तथा विश्वनाथ प्रसाद तिवारी ने अपने लेखों से सशक्त हस्तक्षेप किया है। एक लेखक कितने संघर्षों के बाद प्रेमचन्द्र बना तथा इस संघर्ष के बावजूद लिखने की तड़प बरकरार है। यह निष्कर्ष विश्वनाथ तिवारी ने अपने लेख में दिया है। यह विशेषांक प्रेमचन्द्र की विरासत का भी मूल्यांकन है। शंभूनाथ ने प्रश्न उठाया है कि -''प्रेमचन्द्र के बाद के कथाकारों ने प्रेमचन्द्र के यथार्थ और संघर्षशील पात्रों के संघर्ष को कितना और किस रूप में आगे बढ़ाया है? यह एक जरूरी सवाल है।'' (दस्तावेज अंक 7,8 प्र. 78)

साहित्य में प्रेमचन्द्र की जो जगह खाली हुई उसे भरने के प्रयास अवश्य हुये, किन्तु वे टुकड़ों में हुए, स्थायी रूप से प्रेमचन्द्र की विरासत खाली ही है। यही वजह है कि हर उपन्यास संबंधी बहस प्रेमचन्द्र के ईद-गिर्द सिमटी रही है। प्रेमचन्द्र की

ताकत उनके पात्र है, ये पात्र मानवीय दुर्बलताओं के बावजूद प्रिय हैं। दुर्बलता उनकी विश्वसनीयता को मजबूती देती है। इस विशेषांक के खण्ड दो में प्रेमचन्द्र के लगभग सभी उपन्यासों पर लेख शामिल हैं'' अरूणेश नीरन (रंगभूमि), रामचन्द्र तिवारी (कायाकल्प), हरदयाल (निर्मला) कृष्णचन्द्र लाल (गबन), परमानन्द श्रीवास्तव (कर्मभूमि), रामदेव शुक्ल (मंगल सूत्र) विश्वनाथ प्रसाद तिवारी (गोदान) इस खण्ड के हस्ताक्षरकर्ता है।

प्रेमचन्द्र के नाटकों पर कुमार पंकज ने कई महत्त्वपूर्ण सवाल उठाये हैं। प्रेमचन्द्र के नाटकों पर कम चर्चा हुई है। कथा साहित्य के भार से नाटक दबे रहे हैं। कुमार पंकज ने सवाल उठाया है कि प्रेमचन्द्र के रचना मानस की वह कौन सी मजबूरी थी, जिसने उन्हें नाटक लिखने को विवश किया। कथा साहित्य में जो सशक्त लेखनी है, वह नाटक में शिथिल रही है। कई बार एक ही विधा से लेखक ऊब जाता है, तो दूसरी विधा की तलाश करता है। मशहूर शायर मिर्जा गालिब भी इसकी वकालत करते नजर आये हैं-

''बकद्र-ए शोक नहीं, जर्फ-ए-तंगना-ए-गजल
कुछ और चाहिए बुसअत, मिरे बयाँ के लिये।''

(दीवान-ए-गांलिब सं. 2013, राजकमल प्रकाशन)

वास्तविकता यह है कि प्रेमचन्द्र का कथाकार उनके नाटको पर हावी रहा है। गणेश शुक्ल ने 'पत्रकार प्रेमचन्द्र' शीर्षक से पत्रकारिता, में उनके संघर्षों की पड़ताल की है। शैलेश जैदी ने प्रेमचन्द्र की चिट्ठियों के माध्यम से उनके व्यक्तित्व, संघर्ष तथा रचना कर्म को नजदीक से देखने में मदद मिलती है। चिटिठयां इस मायने में महत्त्वपूर्ण है कि इससे संघर्ष के अनकहे, अनसुने तथ्यों का पता चलता है। अपनी एक चिट्ठी में प्रेमचन्द्र लिखते है ''पुस्तक लिखिए तो बिके नहीं। जहर खा लेने के सिवाय और आदमी क्या करे।''

प्रेमचन्द्र जितने लोकप्रिय रहे हैं, उनके खिलाफ फतवे भी खूब निकले हैं। यह विशेषांक उन फतवों की एक-एक करके व्याख्या करता है तथा बदली हुई परिस्थितियों में भी प्रेमचन्द्र की प्रासंगिकता की पड़ताल करता है। यह दोनों विशेषांक लेखक के रचना कर्म की संपूर्ण विवेचना करते हैं। दस्तावेज पत्रिका के द्वारा विशेषांक के द्वारा सच्चाई प्रस्तुत की गई है और दोनों लेखकों की समालोचना की गई है। हजारी प्रसाद द्विवेदी तथा प्रेमचन्द्र ऐसे लेखक हैं, जो हर समय में सामयिक है। संपादक ने एक विस्तृत फलक रखा है, यद्यपि असफलता का खतरा बराबर रहा किन्तु इसके बावजूद संपादक का विश्वास डगमगाया नहीं है। इसीलिए यह विशेषांक अपनी अलग पहचान बना पाया हैं। पत्रिका की सफलता है कि ये अंक मात्र अभिनंदन ग्रन्थ बनकर नहीं रह गये हैं।

दस्तावेज की द्वितीय वर्षगांठ (अक्टूबर, 1980) पर अंक 9 प्रकाशित हुआ। अब तक की इस साहिसक यात्रा में क्रमशः उन्नति की ओर पत्रिका अग्रसर रही है। अपने मूल उद्देश्य के प्रति सक्रियता और गंभीर अध्ययन से संपादक इस पत्रिका को नई गरिमा दे सके हैं। निःसंदेह नई पीढ़ियाँ इस पत्रिका से बहुत अधिक लाभान्वित होंगी।

अंक 9 में कुल चौतीस कविताएँ है। मेरी निजी राय यह है कि अब तक के सभी अंको की तुलना में सबसे समर्थ कविताएँ इस अंक में हैं। कुछ नामों के अतिरिक्त सभी कवि अपरिचित हैं, किन्तु उनकी कविता में पर्याप्त चर्चा के अवसर हैं। जीवन की समूची जय-पराजय को नये एहसास, बिंब तथा ताजगी के साथ लिखी ये कविताएँ आकर्षित करती हैं। प्रभात खेतान की 'वह प्यार, आखिरी पत्ता, दस अंधेरे शहर में, शिवसिंह पतंग की 'बाँये चलो', जयनारायण मेहता, 'सवाल दरसवाल', हितेश व्यास की 'आग' जैसी कविताएँ सशक्त अभिव्यक्ति का नमूना है। श्याम किशोर की कविता 'आजादी' पारदर्शी-व्यंग्य करती है-

''गलती करने का नाम है आजादी
और उसे हराने का नाम- दूसरी आजादी'' (दस्तावेज अंक 9 पृ. 13)

''भूरी भूरी खाक धूंल के अंतर्गत मुक्तिबोध की कविता का मूल्यांकन विश्वनाथ प्रसाद तिवारी ने किया है। आजादी के बाद के सबसे कठिन कवियों में एक मुक्तिबोध रहे हैं। इस आलेख में लेखक की ज्ञानात्मक ऊँचाई साफ-साफ दिखी है। जिस तरह सहजता से एक-एक पंक्ति की विवेचना लेखक ने की है, वह प्रशसनीय है। मुक्तिबोध की कविता संघर्ष की कविता है। समकालीन समय संघर्ष का समय है। मुक्तिबोध का मानना था कि मनुष्य अदम्य जीवनी शक्ति का मालिक है। अतः अत्याचारी मरेगा और पूँजीवादी व्यवस्था का अंत होगा। वर्तमान स्थिति पर यह सबसे समर्थ बयान है। ''साहित्य को आज संघर्ष करना होगा।''

शमशेर, कुँवरनारायण और केदारनाथ सिंह पर नंदकिशोर नवल का लेख अत्यन्त प्रभावी है। इस आलेख का प्रवाह अद्भूत है। अंक 9 अपने पूर्ववर्ती अंकों से ज्यादा बेहतर है। इसमें शामिल सभी कविता लेख बेजोड़ हैं। नवल की स्थापना है कि शमशेर सौन्दर्य के, कुँवरनारायण मध्यवर्गीय जीवन के तथा केदारनाथ सिंह तीक्ष्ण संवेदना के कवि हैं।

राजेन्द्र रंजन तिवारी ने केदारनाथ अग्रवाल की काव्य यात्रा पर लेख लिखा है। इस अंक में विचारों के साथ-साथ विषयगत नवीनता भी देखने को मिली है। केदारनाथ अग्रवाल की कविता के प्रति लेखक की टिप्पणी महत्त्वपूर्ण है। ''उनकी कविता की बड़ी विशेषता सीमा और समकालीनता का अतिक्रमण है। उनकी प्रतिबद्धता लोक सत्य से है जो हिन्दी की जातीय परंपरा है।'' (दस्तावेज अंक 9, पृ. 53)

इसी अंक में 'नरेश मेहता' पर राजकमल राय तथा 'मोहन राकेश' पर मधुरेश के लेख उल्लेखनीय हैं। समकालीन भारतीय लेखन के अंतर्गत पन्द्रह पंजाबी कविताएँ शामिल हैं जिनका अनुवाद फूलचंद मानव ने किया है। आपातकाल पर केन्द्रित 'सावधान' कविता महत्त्वपूर्ण है। इसके अलावा प्रसाद जयकार, तलाश, कल की बात, पुल जैसी कविताएँ सूक्ष्म और प्रभावशाली व्यंजना प्रस्तुत करती हैं।

देशान्तर के अंतर्गत सार्त्र पर तीन लेख शामिल हैं। सार्त्र का अस्तित्ववाद मार्क्सवादी दर्शन से भिन्न है। इसके अलावा पाठकों के पत्र भी शामिल किये गये हैं। इस अंक में कुल 47 पत्र शामिल हैं। नंदकिशोर नवल ने अपने पत्र में लिखा है- ''मैं इस स्मृति अंक को नयी पीढ़ी की ओर से द्विवेदी जी को दी गई श्रद्धांजलि मानता हूँ।'' वहीं श्याम विमल ने अपने पत्र में लिखा है-''दस्तावेज के दोनों विशेषांक निकालकर सचमुच आपने दो महायज्ञ पूर्ण कर डाले।''

दस्तावेज का दशम अंक जनवरी 1981 में प्रकाशित हुआ। इस अंक में भगवत रावत की लंबी कविता 'नकद-उधार' के अलावा 18 कविताएँ प्रकाशित हैं। समय की बदरंग, उदास चादर पर आश्वासन के गहरे रंग चढ़ाने की कोशिश इन कविताओं में हुई है। राधेलाल बिजघावने की कविता 'बूढ़ा बैल' हमारे उदास गाँव, घर की याद दिलाती है। आज के समय में मनुष्य उपयोगिता के आधर मूल्यवान रह गया है। उपयोगिता खत्म होते ही वह अवांछनीय हो जाता है। कविता की बेहद मार्मिक पंक्ति है-

''बैल की बूढ़ी आँखों में धुधलका है।
जिसमें गाँव और शहर के/ सूरज डूबे है।'' (दस्तावेज अंक 10, पृ. 20)

प्रभाकर श्रोत्रिय ने अज्ञेय की कविता का ''कविता की टोह में यायावरी'' शीर्षक से मूल्यांकन किया है। अज्ञेय की कविता सलीके की कविता है। उनमें आक्रोश नहीं विचारों की प्रधानता है। इसका कारण है अज्ञेय की कविता भाषा। समीक्षक की टिप्पणी शामिल करें तो यह बात ज्यादा स्पष्ट होती है- ''अज्ञेय की कविता उन्हीं की तरह बोलती कम और सोचती ज्यादा है।'' आधुनिकता और परंपरा का कोलाज अज्ञेय की कविता में है। कहीं-कहीं पर अनगढ़होने के बावजूद उनकी कविता प्रभावित करती है-

''ठहर ठहर आततायी! जरा सुन ले
मेरे क्रुद्ध वीर्य की पुकार जरा सुन ले'' (दस्तावेज अंक 10 पृ. 43)

इसी अंक में रामकमल राय का विजयदेवनारायण साही की कविता पर तथा मधुरेश का कहानीकार शिवप्रसाद सिंह पर आलेख उल्लेखनीय है। परमानंद श्रीवास्तव ने 'कविता में बहस' शीर्षक से देवेन्द्र कुमार, गिरधर राठी तथा राजेश जोशी की किताबों का मूल्यांकन किया है। परमानंद श्रीवास्तव ने इन्हें एक ही तेवर का कवि मानते हुए लिखा है- ''ये तीनों कवि प्रतिपक्ष की संवेदना के कवि हैं। उनकी राजनीतिक समझ में अंतर हो सकता है, पर मनुष्य के संघर्ष के प्रति उनकी सजगता लगभग एक जैसी है और वह सपाट नहीं है।''

समकालीन भारतीय लेखन के अंतर्गत स्वातन्त्र्योत्तर उर्दू साहित्य पर अहमर लारी ने वैज्ञानिक मंथन किया है। आजादी के बाद उर्दू साहित्य विभाजन और साम्प्रदायिक दंगों के अलावा, शांति के फसाने एवं जमाने की नब्ज पर हाथ रखने में सफल रहा है। उर्दू गजल भारतीय एवं पाश्चात्य जहान से रूबरू हुई है। कथा साहित्य में भी आशा की नई ज्योति फूटती नजर आई है। फैज अली, सरदार जाफरी, मख दूम, मुहीयूद्दीन तथा अख्तरूल ईमान की एक एक कविता इस अंक में प्रकाशित हैं। 'कत्ले आफताब शीर्षक से लिखी अली सरदार जाफरी की कविता की एक पंक्ति सोचने को विवश करती है-

''हजार लब से जमीं कह रही है किस्सए दर्द
हजार गोशे जूनूँ सुन रहे हैं अफ्साना'' (दस्तावेज अंक 10, पृ.03)

देशान्तर के अंतर्गत इस बार सत्यभूषण शर्मा ने 'जापानी साहित्य में भारत' की खोज की है। भारतीय दर्शन से जापान की कला, संस्कृति, साहित्य प्रभावित रहा है किन्तु इसका कोई प्रत्यक्ष संबंध नहीं मिलता है। इसके अलावा तीन कोरियाई कविताओं का विद्यानिवास मिश्र द्वारा किया गया भावान्तर इस अंक के विशेष आकर्षण रहे हैं।दस्तावेज के प्रथम दशक में कुल 38 अंक प्रकाशित हुए। इन अंकों के माध्यम से दस्तावेज पत्रिका ने साहित्यिक पत्रिकाओं के बीच अपने को स्थापित किया है। इसी क्रम में 13, 14 अंक आठवें दशक की हिन्दी कविता पर केन्द्रित हैं। 1972 से 1980 के बीच के 39 कविता संग्रहों पर इस संयुक्तांक में चर्चा हुई है। पूँजीवादी समय में महाकाव्य समाप्त हो गये और उपन्यास ने उनका स्थान ले लिया है, अतः इस समय 'कविता अंक' यह स्थापित करता है कि कविता अब भी समाज के खुरदरे यथार्थ को व्यक्त करने में समर्थ है। इस अंक में नई कविता को चर्चा में लाने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया है।

अंक 15-16 आठवें दशक की हिन्दी आलोचना पर केन्द्रित है। अपने समय के साहित्य का मूल्यांकन करने में आलोचना का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। आलोचना संबंधी तमाम शंकाओं तथा दावों का व्यापक विश्लेषण इस अंक में हुआ है। इस अंक की उल्लेखनीय बात यह है कि इसका एक भाग समकालीन आलोचकों पर केन्द्रित है। इसी क्रम में अंक 19 की संपादकीय उल्लेखनीय है। आपातकाल के उत्तर समय में राजनीति के अपराधीकरण तथा उसके निरंतर पतित होने तथा जनविरोधी होते जाने की चिंता संपादक को रही है। एक साहित्यिक पत्रिका ने अपने सामाजिक दायित्व का निर्वाह पूरी ईमानदारी से किया है। दस्तावेज ने यह कहने की कोशिश की है कि राजनीति भले मूल्यों से हीन हो जाए, साहित्य और उससे जुड़े लोग मूल्यों के रक्षार्थ हमेशा प्रयासरत् रहेंगे। इसी अंक में शेखर जोशी के कहानी संग्रह 'हलवाहा' पर रामदेव शुक्ल की समीक्षा महत्त्वपूर्ण है। रामदेव शुक्ल की समीक्षा महत्त्वपूर्ण है। रामदेव शुक्ल की स्थापना-''जकड़न के बावजूद आदमी बने रहने की रचनात्मक कोशिश जीवित रचनाकार की सार्थक पहचान है।'' दस्तावेज के स्वभाव से बहुत तादात्म्य स्थापित करती है।

दस्तावेज ने अंक 21-22 में हिन्दी आलोचना शिखर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल को अपने तरीके से समझा है। बात चाहे साहित्य के इतिहास की हो या आलोचना की रामचन्द्र शुक्ल से मुठभेड़ किये बिना आप इन्हें नहीं समझ सकते हैं। शुक्ल जी की आलोचना के विभिन्न पड़ावों को इस अंक में क्रमशः शामिल किया गया है। शुक्ल जी के कद को संपादकीय लिखते समय तिवारी जी ने इस प्रकार परिभाषित किया है- आलोचना की जिम्मेदारियाँ रचनाकार की जिम्मेदारियों से कम नहीं, बल्कि ज्यादा ही होती हैं। दस्तावेज की विशेषता रही है कि उसमें स्वरों की विभिन्नता हमेशा मौजूद रही है। अंक 23-24 रामविलास शर्मा पर केन्द्रित रहा है। शर्मा जी मार्क्सवादी विचारधारा के आलोचक हैं। उनके साहित्य संबंधी विचारों तथा उनसे तमाम असहमतियों के प्रश्न इस अंक के माध्यम से उठाये गये हैं। दस्तावेज ने हर तरह की क्षमताओं को जगह दी है। यह एक संपादक की सफलता है, अपने विरोध मत भी उचित सम्मान दे सके।

अंक 25 की संपादकीय में तिवारी जी ने पत्रिका के रूप में अपने संकल्प एवं अब तक के संघर्ष को फिर से दोहराया है। यह सत्य है कि नई रचनाशीलता को स्थापित करने में इस पत्रिका की भूमिका असंदिग्ध है। इसी अंक में ज्ञानेन्द्रपति तथा कुमार अंबुज की कविता तथा नामवर सिंह का आलेख 'विचारधारा और साहित्य' प्रतिनिधि भूमिका अदा करते है। अंक 27 की संपादकीय में राजसत्ता और साहित्यकार के संबंधों का मूल्यांकन हुआ है। साहित्य कभी सत्ता का पक्षधर नहीं रहा है। साहित्य और सत्ता में विरोध का रिश्ता रहा है। हर युग में साहित्यकार सत्ता के विपक्ष में ही रहा है। विद्यापति, तुलसी, सूर, कुंभनदास जैसे लेखकों के यहाँ सत्ता के विरोध की कविता मौजूद रही है। समकालीन समय में यह प्रश्न फिर से बहस में है कि क्या साहित्य को सत्ता में साझीदार होना चाहिये। संपादक का निष्कर्ष यह है कि साहित्य का रास्ता है, जबकि सत्ता का रास्ता राजपथ/जनपथ का होता है। विजय कुमार का आलेख 'कविता की तलाश' महत्त्वपूर्ण है।

भारतीयता है क्या? इस बहस को अंक 28 की संपादकीय में फिर से उठाया गया है। इस बहस के माध्यम से संपादक ने भारतीय सांस्कृति की विशेषताओं को फिर से याद किया है। संपादक ने अपने बयान में कहा है इस भौतिक युग में जब मनुष्यता संकट से गुजर रही है, तो भारतीय दर्शन ही हमारी रक्षा में सक्षम है। अन्य संस्कृतियों की भारतीय दर्शन के प्रति जिज्ञासा को देखकर लेखक के इस दावे की पृष्टि होती है। इसी अंक में 'आधुनिक हिन्दी कविता और छंद' नाम से विष्णुकांत शास्त्री का विचारोत्तेजक लेख सम्मिलित है। इसके अलावा उड़िया कवि सीताकांत महापात्र का साक्षात्कार भी ज्ञानवर्द्धक है।

हिन्दी साहित्य में अज्ञेय अपने नये मनोभावों प्रयोगों के लिए जाने जाते हैं। उनकी नवीनता कैसी थी, प्रयोगवाद के अर्ध प्रभाव अज्ञेय का साहित्य कर्म, शिल्प, दृष्टि आदि प्रश्नों का ब्यौरा इस अंक के माध्यम से प्रस्तुत किया है। अंक 31-32 संयुक्त रूप से श्रीकान्त वर्मा पर केन्द्रित है। श्रीकांत वर्मा 'मगध' कविता से जितने लोकप्रिय हुए, उतने ही अलोकप्रिय आपातकाल का समर्थन करके हुए। साहित्य जब सत्ता का साझीदार हो जाये तो उसकी स्वीकार्यता कम हो जाती है। संपादक की टिप्पणी शामिल करें तो 'राजनीति के जलसाधर में भटका मेघ' की संज्ञा श्रीकांत वर्मा को दी है। यह अंक बेहद प्रभावशाली है। साहित्यिक सचाई को स्थापित करने में इस अंक के सभी लेखकों का महत्त्वपूर्ण योगदान है, वहीं संपादक ने भी एक तरह का जोखिम उठाया है। राजनीतिक सरोकारों के चलते श्रीकांत वर्मा को खारिज करने का रिवाज सा रहा है। दस्तावेज ने यह रवायत तोड़ने का कार्य किया है।

इसी क्रम में दस्तावेज ने अपना निर्माण किया है। अंक 33 एक महत्त्वपूर्ण अंक है। इसकी संपादकीय में मैथिलीशरण गुप्त को याद किया गया है। इसके अलावा नागार्जुन को भी विशेष रूप से याद करते हुए उन पर पाँच लेख शामिल किये हैं। इस अंक में 'देशान्तर' शीर्षक से कवि कीट्स के महत्त्वपूर्ण प्रेमपत्र शामिल किए गये हैं। प्रेम मनुष्य को शक्ति देता है। हमारा समय प्रेम का अकाल सह रहा है। अतः पत्रिका ने सूख चुके प्रेम को पुनः जीवित करने की कोशिश प्रस्तुत शीर्षक से की है। दस्तावेज का अंक 35-36 अप्रैल-जुलाई 1987 में प्रकाशित हुआ। यह वही वर्ष था, जब अज्ञेय का देहांत हुआ था। एक साहित्यकार को साहित्यिक पत्रिका की इससे बेहतर श्रद्धांजलि क्या होगी कि पूरे दो अंक उन पर केन्द्रित कर दिये जाएँ। इस अंक में 6 संस्मरणात्मक आलेख हैं, जिनके माध्यम से अज्ञेय की स्मृतियाँ ताजा हुई हैं। विश्वनाथ तिवारी ने लंबा संपादकीय संस्मरण रूप में लिखा है। अज्ञेय जैसे साहित्यकार की कमी को पूरा नहीं किया जा सकता, किन्तु ऐसे अंक उस रिक्त स्थान को भरने का कार्य अवश्य करते हैं।

सैतीसवां अंक प्रथम दशक का अंतिम अंक है। इस अंक की उपलब्धि रामचन्द्र तिवारी का लेख है, जो रामस्वरूप चतुर्वेदी, आचार्य शुक्ल, शिवकुमार मिश्र तथा मलयज की आलोचना दृष्टि पर केन्द्रित है। इसी अंक में त्रिलोचन की ग़ज़लों का संकलन 'गुलाब और बुलबुल' पर रेवती रमण ने अच्छा लेख लिखा है।

अगले अंक में निरन्तर.....

प्रवक्ता (हिन्दी)
जनता इण्टर कॉलेज, झबीरन (सहारनपुर)
मो.नं.-9919973740
ई-मेल- gaur.abhishek2@Gmail.com

युवा कथाकारों की चमकदार आकाशगंगा

निरंजन श्रोत्रिय

अविभाजित मध्यप्रदेश के कथाकारों पर केन्द्रित 'कथा मध्यप्रदेश' का पाँचवाँ खण्ड युवा कहानी पर एकाग्र है। इस खण्ड में 30 युवा कथाकारों की कहानियाँ और छः महत्वपूर्ण आलेख सम्मिलित हैं। हिन्दी कहानी के समूचे परिदृश्य पर इस कथाकोश के सम्पादक संतोष चौबे ने अपनी भूमिका में ठीक ही लिखा है कि मध्यप्रदेश के कथाकार न सिर्फ सभी कथा आंदोलनों और प्रवृत्तियों से भलीभांति परिचित रहे हैं बल्कि कई परिवर्तनों एवं नवाचारों के वाहक भी हैं। इस खण्ड के युवा कथाकारों के सन्दर्भ में सम्पादक की इस टिप्पणी से सहज ही सहमत हुआ जा सकता है कि वे अपने शब्द, अपनी ध्वनियाँ, अपनी बोली लेकर आए हैं और उन्हें भाषा में शामिल होना है। यह प्रक्रिया स्वागतेय है लेकिन सांस्कृतिक साक्षरता और भाषाई चेतना की दृष्टि से चुनौतीपूर्ण भी। मैं यहाँ इन युवा कथाकारों के संबंध में एक बात और जोड़ना चाहूँगा कि तेवर, सामाजिक/राजनीतिक दृष्टि और प्रतिबद्धता के मान से भी यह एक उत्तरदायी पीढ़ी है।

इस खण्ड में युवा कथाकार आकांक्षा पारे काशिव की कहानी 'शिफ्ट + कंट्रोल + आल्ट + डिलीट' इंटरनेट और आभासी अनुभूतियों की वह भयावह दुनिया है जो मनुष्य को लगातार एक मशीन ही नहीं अमानवीय भी बना रही है। कहानी के नायक (या खलनायक!) सुदीप मलिक को कम्प्यूटर गेम्स की इस कदर लत है कि वह डिप्रैशन और एन्जाइटी का शिकार हो अपनी पत्नी की हत्या कर देता है। 'मोहभंग' अनिता चौहान की ऐसी कहानी है जो साहित्य की कथित स्टार दुनिया और उसकी असलियत को उघाड़ती है। हालांकि शीर्षक और कहानी के पहले पैरा से ही कहानी के अंत का पूर्वाभास हो जाता है। 'रामबहोरन की आत्मकथा' युवा कथाकार आशुतोष मिश्र की कहानी है जो हमारे समय की शिक्षा व्यवस्था, राजनीति, अर्थ, संचार तकनीक और तमाम वैषम्य के बीच उपजे एक प्रेम और उसकी निरर्थकता की कहानी है। कहानी में कुछ स्थलों पर उदय प्रकाश की प्रसिद्ध कहानी 'रामसजीवन की प्रेमकथा' के इम्प्रेशन्स देखे जा सकते हैं। कहानी के अंत में कथाकार ने फेंटेसी का भयावह रूप रचा है। 'हथियार' इंदिरा दांगी की ठीक-ठाक कहानी है। कहानी में ब्यौरे हैं, कहानी को एक ही दृश्य में खत्म करने की कोशिश है। कथाकार की भाषा तो सधी हुई है लेकिन विवरणात्मक स्फीति खलती है। 'सिंहवाहिनी' युवा कथाकार कविता की कहानी है जिसमें मूलतः एक स्त्री के प्रतिरोध का स्वर मुखर है। इसका प्लॉट एवं ट्रीटमेंट दिलचस्प है। 'सच! बाय एयर' किसलय पंचोली की मार्मिक कहानी है जो एक निम्न मध्यवर्गीय परिवार में पली युवती के मनोविज्ञान को उकेरती है। 'खापा' कैलाश वानखेड़े की एक शानदार कहानी है जिसमें वर्गभेद, वर्गीय चेतना और सामाजिक-आर्थिक वैषम्य का खूबसूरत चित्रण है। 'फास्ट बॉलर' गीत चतुर्वेदी की अद्भुत कहानी है। कहानी क्या मानो किसी

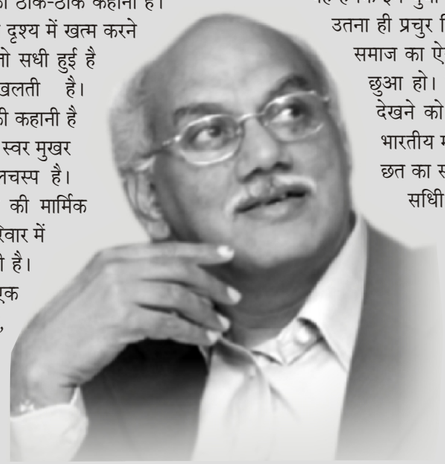

युवा कहानी खण्ड

क्रिकेट मैच की रनिंग कमेंट्री! खेल के अद्भुत नैरेशन के साथ कहानी में आए प्रतीक वाक्य कहानी के भीतर एक दूसरी कहानी कहते हैं, खासकर इसका क्लाईमेक्स। जितेन्द्र बिसारिया की कहानी 'हाथी' में दलित विमर्श का वह पक्ष रखा गया है जिस पर आम तौर पर चर्चा नहीं होती। जितेन्द्र ने इस एकांगिता को तोड़ा है। समरसता की जड़ों में छाछ डालने वालों पर यह कहानी तीखा कटाक्ष है। 'दादी, मुल्तान और टच एण्ड गो' में कथाकार तरूण भटनागर ने विभाजन की त्रासदी एवं नॉस्टेल्जिया का एक मार्मिक ताना-बाना बुना है। 'नक्कारखाने में पुरूष विमर्श' पंकज सुबीर की कहानी है जिसमें कथाकार ने परिवार के आधे-अधूरे रिश्तों और अपूर्णताओं को रेखांकित किया है। किस्सागो शैली में लिखी यह लम्बी कहानी अपने कहन के अंदाजह और भाषा की रवानगी के कारण पठनीय बन पड़ी है। 'शब्द' युवा कथाकार-कवि बसंत त्रिपाठी की अत्यंत महत्वपूर्ण और मार्मिक कहानी है जिसमें किसी भाषा में शब्दों की अर्थवत्ता स्थापित की गई है। भाषा पर पड़ रही आर्थिक/ राजनीतिक वर्चस्व की मार और उससे उपजे शून्या की वेदना कुछ इस तरह बयां हुई है कि कहानी न सिर्फ एक सांस में खुद को पढ़वा ले जाती है बल्कि अंत में पाठक को अवाक् छोड़ जाती है। यथार्थ एवं फैण्टेसी की अद्भुत जुगलबंदी! मनोज कुलकर्णी की कहानी 'उलट गणित' इस समय के वीभत्स साम्प्रदायिक-राजनीतिक दुरभिसंधियों का कच्चा चिट्ठा है। इस कहानी की खासियत पात्रों का अत्यंत प्रभावी कैरेक्टराइजेशन और घटनाक्रमों की जीवंतता है। मोहन सगोरिया की 'भार' एक छोटी लेकिन संवेदनों से लबालब कहानी है।

इनके अतिरिक्त अमृता जोशी की 'कबाड़', अरूण यादव की 'मन्नत', उर्मिला शुक्ल की 'नहीं रहना देश बिराने', ऋषि जजपाल की 'वीतराग', चंद्रभान राही की 'बेटा', जीवेश प्रभाकर की 'बड़', नियति सप्रे की 'असलियत', दिनेश भट्ट की 'अंतिम बूढ़े का लाफ्टर डे', दीपक पाचपोर की 'हैलो आंटी! हैलो चूहे', पंकज गोस्वामी की 'येलो पेजेस', प्रतिभा गोटीवाले की 'मुक्ति', प्रदीप जिलवाने की 'चिड़िया रानी की गल्प कथा का रहस्य', प्रमोद भार्गव की 'भूतों का डेरा', प्रेम दुबे की 'इक्कीसवीं सदी', मलय जैन की 'भूख की एक रात', मानवी वहाणे की 'गंवार' कहानी को भी इस खण्ड में सम्मिलित किया गया है। यहाँ रेखांकित करने योग्य बात यह है कि इन युवा कथाकारों के पास भाषा-शिल्प की ताजहगी तो है ही उतना ही प्रचुर विषय-वैविध्य भी है। अपने समकालीन जीवन और समाज का ऐसा कौन-सा कोना है जिसे इन युवा कथाकारों ने न छुआ हो। इन कथाओं में जीवनानुभूतियों के विभिन्न शेड्स देखने को मिलते हैं। विशेष सन्दर्भ ही तलाशना हो तो यहाँ भारतीय मध्यवर्गीय पारिवारिक तनाव (अमृता जोशी), अपनी छत का सपना और संदेह (अरूण यादव), अपनी मिट्टी की सधी गंध, वापसी की कसक और स्थानीयता (उर्मिला शुक्ल, ऋषि जजपाल), समाज में वृद्धावस्था की त्रासदी (चंद्रभान राही, दिनेश भट्ट, प्रतिभा गोटीवाले), पारिवारिक रिश्तों की गर्माहट (जीवेश प्रभाकर), मानवीय संवेदनों का मनोविज्ञान (नियति सप्रे), एकाकीपन का शून्य (दीपक कुमार पाचपोर), सौजन्य और सामाजिक साहचर्य (पंकज गोस्वामी), प्रकृति की संवेदना और मानवीयकरण (प्रदीप जिलवाने), अंधविश्वास (प्रमोद भार्गव), मृत संवेदन (प्रेम दुबे),मजलूमों की बेबसी (मलय जैन), कन्या भ्रूण हत्या और कथित संभ्रांतों का दोमुँहापन (मानवी वहाणे) हैं। ये सब मिलकर एक ऐसा इन्द्रधनुष रचते हैं जिसमें सात से कहीं अधिक रंग हैं। युवा कथाकारों की यह जगमगाती आकाशगंगा इस समय हिन्दी कहानी की एक बड़ी आश्वस्ति है।

इस संग्रहणीय कोश के अंत में परिशिष्ट के रूप में हमारे समय के प्रमुख वरिष्ठ कथाकार एवं आलोचकों के महत्वपूर्ण आलेख भी सम्मिलित हैं। इतने सारे युवा कथाकारों के कथा-रस से सराबोर होने के बाद इन आलेखों को पढ़ना एक बोनस की तरह है। 'आज की कहानीः भाषा और शिल्प में वरिष्ठ कथाकार और 'हंस' के संपादक राजेन्द्र यादव अपने लेख (जो दरअसल एक भाषण है) में बहुत माकूल बात कहते हैं कि हमने विचारधारा के आवेग में कहानी या विधा के दूसरे पक्षों को बहुत निगलेक्ट किया है। हमारी कहानियों में जो सबसे बड़ी चीज मुझे कष्ट देती है वो भाषा को लेकर है। भाषा को लेकर एक खास किस्म की लापरवाही, उसकी बनावट में उसके मुहावरों में, भाषा में जो एक कन्सर्न होता है, एक इनोवेटिवनेस एक फीलिंग होती है कि भाषा आपका सबसे बड़ा हथियार है, सबसे बड़ा माध्यम है। हमने भाषा के प्रति जैसा एक किस्म का हृदयहीन व्यवहार किया और कहानी की सारी भाषा को पत्रकारिता की भाषा के हाथों में छोड़ दिया।

पत्रकारिता की भाषा इकहरी होती है जबकि साहित्य की भाषा इसके बरक्स कई धरातलों पर गूँजने वाले शब्दों से बनी होती है। राजेन्द्र जी की इस बात से अक्षरशः सहमत होते हुए मैं प्रसंगवश कहना चाहूँगा कि यह चिन्ता हमारे आज के युवा कथाकार को भी है जिसका प्रमाण है इसी खंड में संकलित युवा रचनाकार बसंत त्रिपाठी की कहानी 'शब्द'! वरिष्ठ आलोचक शम्भु गुप्त ने अपने 'यथार्थान्विति की एक दूसरी ही दुनिया' नामक आलेख में कथाकार रवि बुले की कहानियों के बहाने महानगरीय संस्कृति और संवेदना पर अपनी बात करते हैं। वे साफ कहते हैं कि पूर्वज पीढ़ियों का यह मानना कि 'लेखक महानगरों को रचनाकार के वध-स्थल के रूप में देखते आए हैं और इस बात को जोर-जोर से कह कर स्थापित भी किया गया है' लगभग एक पूर्वाग्रही धारणा ही सिद्ध होती है।

निश्चय ही इस स्थापना के पीछे लेखक-समुदाय की मध्यवर्गीय सुविधाजीविता की लालची मनोवृत्ति काम करती नजहर आती है। शम्भु जी से निश्चय ही उनकी इन साहसी पंक्तियों के लिए सहमत हुआ जाना चाहिए क्योंकि हम देख रहे हैं कि स्थानीयता के नाम पर, गाँव और जड़ों से वापसी के नाम पर कई लेखक केवल स्थानीय बोलियों, उपादानों का एक नीरस-सा कथा-संसार रच रहे हैं जिसमें सधी संवेदनाओं का अभाव है। वैसे भी साहित्य में फैशन का तकाजहा नहीं होना चाहिए। दूसरे, हमारे लेखकों का एक बड़ा वर्ग आज भी नगरों या महानगरों में निवास करता है। यदि वे अपने परिवेश की जटिलताओं, उसकी कृत्रिमता और अर्थ-दबावों का जिहक्र अपनी कहानियों में करते हैं तो क्या बगैर किन्हीं संवेदनों के ' आलोचक राजकुमार ने अपने विस्तृत आलेख 'कहानी पच्चीस साल की' में हिन्दी के महत्वपूर्ण कथाकारों की प्रसिद्ध कहानियों के जरिये हिन्दी कथा-यात्रा की सघन पड़ताल की है। दूधनाथ सिंह, कृष्णा सोबती, काशीनाथ सिंह, उदय प्रकाश, संजीव, शिवमूर्ति, सृंजय, अखिलेश, संजय खाती, पंकज मित्र, उमाशंकर चौधरी, नीलाक्षी सिंह, मो. आरिफ, गीतांजलि श्री, कुणाल सिंह, मनीषा कुलश्रेष्ठ, मनोज कुमार पाण्डेय की कहानियों के बहाने वे समकालीन कहानी की भाषा, शिल्प, कथ्य, विचारधारा पर सप्रमाण अपनी बातें रखते हैं। गाँव पर लिखी जा रही कहानियों के बारे में उनका भी यही मत है कि इनमें गाँव की रंगत और तासीर नहीं है। वे मानते हैं कि हिन्दी कहानी का अपना एक स्वतंत्र वजूद बन गया है। यह वजूद अंतर्बाह्य ज्ञान और आख्यान की परम्पराओं से सार्थक एवं रचनात्मक संवाद के जरिये बना है। आज की कहानी ने इतिहास, रिपोर्ताज, निबंध और ज्ञान एवं कला के अनुशासनों से बहुत कुछ आत्मसात किया है।

'आख्यान का आंतरिक संकट' शीर्षक से अपने आलेख में युवा आलोचक सुधीर रंजन सिंह मानते हैं कि अब तक कथा-आलोचना की चिन्ता का केन्द्र उपन्यास विधा रही है, कहानी पर उस प्रमुखता से बात नहीं होती जैसे कि होना चाहिए। वे इसके लिए कथाकार को भी जिम्मेदार मानते हैं-' वे कहानी लिख कर इतने प्रसन्न नहीं हैं जितने दुखी उपन्यास न लिख पाने के कारण!' सुधीर राल्फ फॉक्स को बरास्ता नामवर सिंह उद्धृत करते हुए कहते हैं कि उपन्यास के लिए जीवन-दर्शन का होना जरूरी है जबकि कहानी का कारोबार उसके बगैर भी चल सकता है। बकौल नामवर जी आज का युवा लेखक औसत है। उसमें 'एक ऐतिहासिक विजन' की कमी है। खैर, यह तो बहस तलब है लेकिन सुधीर रंजन यहाँ एक दिलचस्प सवाल उठाते हैं कि किसी समय की अनेक कहानियों को मिलाकर यह देखा जाना चाहिए कि उनमें एक समग्र युगबोध अथवा जीवन दर्शन उभर कर आता है या नहीं! 'हिन्दी कहानी में युवा पीढ़ी और नया साम्राज्यवाद' आलेख में अजय वर्मा ने हिन्दी कहानी की युवा पीढ़ी को खंगाला है।

कुछ कथाकारों के जिक्र के साथ वे भी राजेन्द्र यादव और विजय कुमार के हवाले से विचारधारा एवं इतिहासबोध की चिन्ता युवा पीढ़ी के संदर्भ में करते हैं। लेकिन यहाँ अजय युवा पीढ़ी के पक्ष में एक सवाल भी करते हैं कि - 'हमें यह देखना चाहिए कि आज के संकट में वही नहीं है जो प्रेमचंद, रेणु, जैनेंद्र या अज्ञेय के जमाने के संकट थे। चरम उपभोक्तावाद, नए धनिक वर्ग की फोर लेग्स पार्टियाँ, आत्महत्या कर रहे किसान, अपहरण-फिरौती का नया धंधावाद, राजनीतिक और प्रशासनिक क्षेत्र में व्याप्त चरम भ्रष्टाचार, धार्मिक पाखण्ड, भ्रूण हत्याएँ और मीडिया द्वारा रची जा रही एक लुभावनी मगर अमानवीय दुनिया आज के नए यथार्थ के अभिलक्षण हैं। इन्हें समझने के लिए सैद्धांतिक रूढ़िबद्धता से मुक्त तार्किक दृष्टिकोण की जरूरत है। इस खण्ड के अंतिम आलेख में जयप्रकाश ने 'एक गद्य-विधा की आत्म-विस्मृति' शीर्षक से लेख लिखा है जिसमें उन्होंने कहानी की विधागत स्वायत्तता का मसला उठाया है। वे एक दिलचस्प सवाल पूछते हैं कि -'क्या कहानी को याद है कि वह कहानी है '' वे मानते हैं कि यह प्रश्न केवल शिल्प-विधि से जुड़ा मामला नहीं है अन्यथा बहुत सादगी के साथ कहानी कहने वाले भीष्म साहनी की या अमरकान्त की इधर के कथाकारों में रघुनंदन त्रिवेदी की कहानियों में विधागत आत्मसजगता दिखाई न देती। यह समस्या इसीलिए उत्पन्न हुई क्योंकि यथार्थ की ऊपरी सतह को कहानी का कथ्य और तब फिर इस कथ्य को ही यथार्थ मान लिया जाता है।

कथा मध्यप्रदेश के खण्ड पाँच से रूबरू होना आज की युवा कहानी के तेवरों, उसकी संरचना और उसके भविष्य से दो-चार होना है। इस पठनीय और संग्रहणीय कोश में हालांकि वर्तनी की अशुद्धियाँ सुस्वादु दाल-भात में कंकड़ की तरह हैं। आगामी संस्करणों में इन्हें दूर करना चाहिए। स

'विन्यास', कैन्ट रोड, गुना (म.प्र.)
पिन- 473 001
मो. 9827007736

कथा कहो उर्वशीः राजी सेठ का कथा कर्म

रमेश दवे

पुस्तक : कथा कहो उर्वशी बनाम राजी सेठ का कथा-कर्म
लेखक - पाण्डेय शशिभूषण शीतांशु, प्रकाशक - साहित्यभण्डार, इलाहाबाद
मूल्य - रू 450/-

पाण्डेय शशिभूषण शीतांशु मुख्य रूप से एक भाषा-वैज्ञानिक एवं शैलीवैज्ञानिक के रूप में प्रतिष्ठित हैं। उन्होंने शैली विज्ञान के आधार पर हिन्दी की अनेक कालजयी कृतियों का जो विवेचन किया है वह हिन्दी-समालोचना की उपलब्धि है। उनकी एक विशेषता यह भी है कि वे आलोचना के अद्यतन आधुनिक एवं उत्तर-आधुनिक या उत्तर-उत्तर-आधुनिक विकास-क्रम से जुड़ कर भारतीय एवं पाश्चात्य साहित्य की समालोचना के नव-विकसित मानदंडों के अध्येता और विश्लेषक भी हैं। ऐसा भाषा-संवेदी, शैली-विशेषक और समालोचक जब किसी सर्जनात्मक व्यक्तित्व के सृजन का आकलन करता है तो लगता है, पारम्परिक आलोचना-प्रणाली से विचलन कर साहित्यिक-समालोचना की नई दृष्टि प्रत्यक्ष-हुई है और इस प्रत्यक्षीकरण के उद्‌गाता पाण्डेय शशिभूषण शीतांशु हैं। उत्तर-आधुनिक विमर्श को लेकर स्व. कृष्णदत्त पालीपाल ने भी किया था लेकिन उनकी कृति-आधारित समालोचना के मूल आधार भारतीय काव्य-शास्त्र के ही थे और उत्तर-आधुनिक मानदण्डों का वे प्रयोग केवल भारतीय वाड्.मय का पश्चिम के समक्ष सामर्थ्य सिद्ध करने में ही करते थे। शीतांशु जी यहाँ राजी सेठ का विवेचन दो प्रकार से कर रहे हैं- एक पारंपरिक समालोचना-मूल्यों पर और दूसरा पाश्चात्य हस्तक्षेपों के आधार पर। ''कथा कहो उर्वशी बनाम राजी सेठ का कथा-कर्म'' यह पुस्तक हिन्दी की वरिष्ठ एवं पाठक-प्रिय कथाकार राजी सेठ पर संपादित पुस्तक है। 'उर्वशी' शब्द पर कुछ पाठकों ने आपत्ति प्रकट इसलिए की है कि उर्वशी एक अप्सरा थी जो श्रेष्ठ स्त्रीत्व का प्रतीक नहीं मानी जाती है। इसके विपरीत एक तथ्य यह भी है कि त्रग्वेद की त्रचा रचने की त्रषिकाओं में से एक उर्वशी भी है जिसका नाम घोषा, जुहू, इन्द्रिणी, लोपा मुद्रा आदि के साथ जुड़ा हुआ है। दूसरा तर्क यह भी है कि उर्वशी अप्सरा भी है तो क्या हुअ, भगवतीचरण वर्मा के उपन्यास चित्रलेखा की नायिका और आचार्य चतुरसेन शास्त्री की वैशाली की नगरवधू आदि क्या उस भारतीय नारीत्व के शील की प्रतिनिधि थीं जिनमें हम सीता, तारा, अहल्या, कुन्ती, आदि की प्रतिष्ठा कर चुके हैं' खैर यह यहाँ विवाद का विषय न होकर संवाद को आमंत्रित करता है। पुस्तक को प्रथम-दृष्ट्या देखने पर इतना तो स्पष्ट है कि शीतांशु जी ने राजी सेठ जैसी कथाकार को केवल अपने ही अभिमत से प्रस्तुत नहीं किया है बल्कि सम्पादकीय आकलन में यह भी स्पष्ट कर दिया है कि राजीसेठ के कथाकार स्वरूप की विवेचना किन-किन तरीकों से अभी तक की गई है और उनमें शैली वैज्ञानिक विवेचना की भूमिका क्या है। पहला भाग है 'समेकित मूल्यांकन' का जिसमें वे प्रभाकर श्रोत्रिय, अर्चना वर्मा, गोविन्द मिश्र, अनीता-नरेन्द्र, नीति शर्मा और स्वाति श्वेता के साथ राजी सेठ पर केन्द्रित पुस्तक ''राजी सेठः संवेदना का कथा दर्शन'' के दो आलेखों का भी उल्लेख करते हैं। इन लेखकों ने राजी सेठ के समग्र कथा-संवेदन, कथा-शिल्प और कथा-मानस को जिस प्रकार प्रस्तुत किया है, उसे शीतांशु जी ने प्रस्तुत कर यह भी बताने का प्रयत्न किया है कि राजीसेठ के कथा-कर्म की आलोचनात्मक रेन्ज कितनी बड़ी और कितनी पाठक-उन्मुखी है।

राजी सेठ के कथा-फलक को दो दृष्टियों से देखना जरूरी है- एक उनकी संवेदना का मनोविज्ञान और दूसरा उनका भाषा-संवेदी शिल्प। वे उस प्रकार की प्रतिबद्ध यथार्थ की कथाकार नहीं हैं जो विचारधाराग्रस्त होकर संकीर्ण हो जाता है। उनके कथा-मानस का लोकतंत्र जिस यथार्थ की सृष्टि करता है वह संवेदना का लोकतंत्र है न कि संकीर्ण विचारधारागत प्रतिबद्धता का। शीतांशु ने पुस्तक के प्राक्कथन में यह कह दिया है कि राजी ''अपनी कहानियों में अपने देशकाल के प्रति बहुत सजग हैं''। ''कथा कहो उर्वशी बनाम राजी सेठ का कथा-कर्म'' के इस प्राक्कथन पुरोवाक या भूमिका में विशेषता यह है कि शीतांशु ने राजी सेठ की कहानियों को अपने विचार का केन्द्र बनाकर उनकी अनेक महत्वपूर्ण कहानियों के विवेचन के साथ उन्हें रेखांकित किया है। वे मानते है कि राजी अपने समय से टकराती उसे पहचानती-परखती हुई उसके दो स्पेसगत आयामों को एकत्रित करने में समर्थ हैं। राजीसेठ के उपन्यास 'तत-सम' (तत्सम नहीं और न तत्सम) को राजी का लिखने का आग्रह यह बताता है कि वे तत्सम शब्द के अर्थ में न जाकर 'तत' को पूर्ण आकार देती हुई 'सम' का अर्थ सम्पन्न करती हैं अपनी उन कथा पात्रों में जो 'अतत' होकर भी अंत में उस 'तत' को रचती हैं जो स्त्री के प्रेम के संवेदन की ऐसी पहचान है जिससे हमारा 'तत-बोध' भी विचलित हो जाता है। शीतांशु ने बड़े मनोयोग से 'तत-सम' और 'निष्कवच' जैसी उपन्यास-कृतियों के तार्किक एवं तात्विक विवेचन के बाद उनका कथागत मूल्यांकन व्यापक ढंग से किया है। अन्धे मोड़ से आगे, तीसरी हथेली, यात्रा मुक्त, दूसरे देश काल में, सदियों से, यह कहानी नहीं, किसका इतिहास, खाली लिफाफा, माथा का देश, यहीं तक, जैसी महत्वपूर्ण कहानियों को केन्द्र में रखकर रचना-आधारित विवेचन शैली विज्ञान की विशेषता है, जिसमें भाषा-शिल्प प्रमुख रूप से कथा-संरचना को प्रकट करता है, उसके बाद विषय-वस्तु और अंत में विचार-वस्तु पर आलोचक कहानियों की अन्तः-प्रकृति को स्पष्ट करता है। एक बात यह अच्छी है कि राजी की कहानियों को शीतांशु ने शैली-विज्ञान की जटिलताओं के आग्रह से मुक्त रखा है जिसमें शब्द-शब्द के एक एक हिस्से यहाँ तक कि उनकी ध्वन्यात्मकता, उनका वाक्यगत निवेश, संरचनागत संश्लिष्टता और व्याकरणिक-विचलन आदि तत्व होते हैं जिन्हें सामान्य आलोचना-पाठक को समझने में उलझन होती है। शैली-वैज्ञानिक आकलन है तो अवश्य मगर उसे शीतांशु जी ने पाठ की प्रकृति और पाठक की प्रवृत्ति से जोड़ कर रचा है। राजी सेठ की यादगार कहानियाँ में 'रूको इंतजार हुसैन' पर रजनी गुप्ता, संजय चौहान, उमाकुमारी साह के आलेख हैं। दस प्रतिनिधि कहानियाँ- इन पर सपना शर्मा, सोनिया शर्मा और विशेष समीक्षित कहानियाँ पर शुकदेव सिंह, नीलम कुमारी के आलेख देकर राजी सेठ की कहानियों की आलोचनात्मकता और प्रभाव को स्पष्ट किया गया है। अंत में राजी सेठ का आत्मने-पद उनके उपन्यास 'तत-सम' और निष्कवच को लेकर उपसंहार की तरह है तो अवश्य जिसकी विशेषता यह भी है कि कथाकार स्वयं अपनी रचना को किस प्रकार देखता, आंकता और उसकी पृष्ठभूमि में निहित विचार को कैसे कहानी-रूप देती है। पुस्तक को अनेक लेखकों के संदर्भ के साथ पढ़ने पर यह लगता है कि एक सम्पादित-पुस्तक किस प्रकार अनेक प्रकार के विश्लेषणो, विचारों, प्रभावों और पूर्वग्रहों से परिचालित होती है। अगर यही पुस्तक शीतांशु के एकल लेखन से बनी होती तो संभवतया और अधिक गहन और आलोचनीय-संभावनाएँ प्रकट कर सकती थी। संपादन में संपादक केवल अपनी भूमिका या पुरोवाक में प्रकट विचारों, मान्यताओं पर सीमित होकर रह जाता है, शेष उन लेखकों पर छोड़ देता है जो राजी की कहानियों के समालोचक रहे हैं। इस प्रकार संपादक एक प्रकार से भूमिका लिख कर शेष के प्रति उत्तर दायित्व-मुक्त हो जाता है।शीतांशु की प्रवृत्ति आलोचना में विश्लेषणात्मक रही है। यहाँ उन्होंने ऐसे ही लेखकों को शमिल किया है जिन्होंने राजी को उनके कथाकार के रूप में व्यक्ति-निरपेक्ष होकर और कथा-सापेक्ष होकर लिखा है। यह पुस्तक इसलिए महत्वपूर्ण है कि इसमें जो लेखक हैं वे पाठकों और शोधकर्त्ताओं के लिए विभिन्न दृष्टिकोणों के साथ सुलभ हों। इसलिए अधिकांश संपादित-पुस्तकें संदर्भ-सामग्री का काम करती हैं और पाठक या शोधार्थी एक-निष्ठ विचार-सम्पन्न नहीं हो पाता। कथा कहो उर्वशी के साथ 'बनाम' शब्द का प्रयोग क्यों किया गया यह स्पष्ट इसलिए नहीं है कि क्या इससे शीतांशुजी 'उर्वशी' को उसके भौतिक-व्यक्तित्व के विवाद से मुक्त कर उसमें एक विचार-रूपक रचना चाहते थे' 'उर्वशी' का कथा कहना एक प्रकार से रोर्नेटिक रूपक है लेकिन राजी सेठ न तो अप्सरा उर्वशी हैं न त्रग्वेद की त्रषिका उर्वशी। वे तो उनके 'डर' से 'वशीभूत' कथाकार हैं। राजी सेठ को शीतांशु जी ने जिस प्रकृति, प्रवृति, परिवेश और परम्परा में देखा है उसी के अनुसार कहानियों का चयन भी किया है और उनके लेखकों को समेकित किया है। इससे एक बात यह प्रकट होती है कि शीतांशु जी ने अत्यन्त व्यक्ति या विचार-निरपेक्ष होकर कथाओं और उन पर लिखे गए आलेखों के साथ आलेखकों का चयन क्रिया है। सम्पादन-कला की विशेषता ही यह है कि व्यक्ति हो या विचार या रचना, उन्हें उनकी गुणवत्ता के आधार पर ही चुना जाए और इसके लिए निर्मम निर्भावुकता आवश्यक है जिसका निर्वाह शीतांशु जी ने किया है। पुस्तक के आद्योपान्त स्वरूप को देखकर लगता है हिन्दी में ऐसा काम अन्य लेखक, कथाकार, कवि आदि पर भी होना चाहिए ताकि एक समेकित पुस्तक में अनेक लेखक समवेत रूप में एक साथ उपलब्ध हो सकें। शीतांशु जी ने अपनी क्षमता से अधिक श्रम कर यह संपादन-संयोजन किया है जो राजी सेठ के कथा-संसार तक पहुँच कर कथाकार के कथा-संवेदन, कथा-दर्शन और कथा-वस्तु से ठीक से पाठक को उद्वेलित कर सके और पाठक के आस्वादात्मक गुण को अधिक व्यापक एवं विचार-शील बना सके। राजी सेठ को पढ़वाने में शीतांशु का यह 'उर्वशी' रूपक एक प्रकार से पाठक के आकर्षण का भी कथा-मंच बन सकेगा और इससे हिन्दी का विमर्शात्मक व्यवहार अधिक वस्तुनिष्ठ और संश्लिष्ठ दोनों ही होगा। स

सहृयाद्रि परिसर
भदभदा रोड, भोपाल
मो.94065-23071

समय का यथार्थ और रिश्तों की सांस्कारिक चाहत : समर्पण

बी.एल.आच्छा

समर्पण (कविता संग्रह)
प्रतीक सोनवलकर
प्रकाशक : अक्षर विन्यास, उज्जैन
मूल्य रु. 200/-

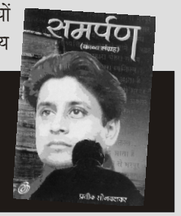

'समर्पण' प्रतीक सोनवलकर का दूसरा काव्य संग्रह है। यों उन्हें विरासत में पिता स्व.दिनकर सोनवलकर की धारदार व्यंग्य कविता और दार्शनिक गहराईयों का काव्यात्मक परस मिला है। पर वे पिता की विरासत को यों लेते हैं - 'पिताजी कहते थे भीतर की तकलीफ ही सृजन की यात्रा है/कष्ट सहने वाला सबसे बड़ा विधाता है।' इसलिये इन कविताओं के मूल में यही पीड़ा पसरी हुई है, मगर इसके फलित की कामना, लोकपीड़ा और वास्तविकताओं को, फरेबों और कुटिलताओं के जाल को सामने लाती है पर अधिकतर कविताएँ शिवत्व भाव को ही समेटती है।'

यह कहना गलत नहीं होगा कि इन कविताओं की बुनावट कलात्मक विशिष्टता को नहीं संजोती, पर अपनी सहज बयानी में वे पीड़ाओं का इतजार करती है। इसलिए जिन्दगी के उत्सवी रंगों के साथ इन वास्तविकताओं का कैनवास संसार की प्रकृति को दर्शाता है, जिसमें अंधेरे ज्यादा है, उजास की कोशिशें भी भरी-पूरी नूर और बेनूर, ख्वाहिशों और उदासियों से बुनी हुई इस जिन्दगी का यह सच इन कविताओं को सामने लाता है। चाहे वह शोर मचाते शहरों की कानफोड़ू गाथा हो या हाड़तोड़ मेहनत की किसानी व्यथा/या कि आईने से साक्षात्कार का मनोविज्ञान/जीवन की सतरंगी सपनों के आमने-सामने हैं- 'विद्रूप चेहरों, आवरण और नकाबपोश इंसानों का दौर' सामने है 'लैपटॉप, टेबलेट के बीच संवाद, सहयोग के खोते रिश्ते। बीते पल, छूटी कड़ियों और बदलते रिश्ते।' अविश्वास की अँधेरी सुरंगों में जीता और मूल्य विहीनता में सफलता को ऑकती आज की दुनिया या कि तकनीक में सहज रिश्तों को खोती आज की संवादविहीन होती दिनचर्या। कवि ने इन कविताओं में पारिवारिक परिदृश्यों के इसी आर्द्रता के साथ बुना है कि वे हमारे जीवन के स्पन्दन बनें। अपना शहर, अपने नगर का सांस्कृतिक सहचार, पिता के कर्तव्य का स्नेहिल स्मरण, माँ का संस्कारित दुलार, बेटे का वात्सल्य, बहिन की राखी, जन्मदिन का पारिवारिक उत्सव, मकर संक्रांति-दीपावली, होली के रसरंग, गणतंत्र की आस्था, शिवरात्रि की भक्तिमय अनुगूंज, बालदिवस और प्रकाश पर्व की धूम, पंचमी के वासन्ती रंग। इन सबके बीच उज्जयिनी का शांत सांस्कृतिक वैभव और सिंहस्थ का सत्संगी संसार झलकियां दे जाता है पर इनके नेपथ्य में उसी संस्कारिता की चाहत है, जो आज के समय के विरूपण में रची गई है। यों इन कविताओं के कई अक्ष हैं, जो पर्यावरण, योग, राष्ट्रभाषा के रूप हिन्दी, युगचेतना का संदर्शन, जीवन दर्शन की आत्मपरकता, शहीदों के बलिदान, नारी का ऊर्जस्वित व्यक्तित्व, शिक्षा का व्यापारिक चेहरा आदि। कुछ कविताओं में सरकारी कार्यक्रमों के संपोषण और प्रसार की छाया भी लक्षित होती है। पर नमामि देवी नर्मदे या महाकाल की सवारी के जनोन्मुखी उत्सव भी संवादी बने है। यद्यपि इन रचनाओं में उज्जैन का भूगोल रचा बसा है। मालवा की रंगत के साथ, पर कवि का संवेदन स्वर सांस्कारितकता की मानवीय चाहत औनर धरती के संपोषण से मुखरित है।

36, क्लीमेन्स रोड, सरवना स्टोर्स के पीछे
पुरुषवाकम, चेन्नई (तमिलनाडु) 600007
मो.094250-83335

श्रद्धांजलि

भगवती कुमार शर्मा

जन्म : 31 मई 1934
निधन : 09 सितम्बर 2018

गुजराती और हिन्दी साहित्य के वरेण्य रचनाकार तथा साहित्य की लगभग सभी विधाओं में लिखने वाले वरिष्ठ कवि-कथाकार, आलोचक, व्यंग्यकार, पत्रकार भगवतीकुमार शर्मा के निधन पर समावर्तन परिवार की ओर से विनम्र श्रद्धांजलि!

- समावर्तन परिवार
उज्जैन, भोपाल, इन्दौर, मुम्बई,
सूरत, कोलकाता, गुना नईदिल्ली

ज्ञातव्य है कि समावर्तन ने अपना हीरक अंक (75वाँ अंक) श्री भगवती कुमार शर्मा के कृतित्व पर 'एकाग्र' किया था तथा जिसका लोकार्पण भी सूरत में उन्होंने ही किया था।

श्रद्धांजलि

विष्णु खरे

जन्म : 09 फरवरी 1940
निधन : 19 सितम्बर 2018

प्रखर कवि, संपादक, अनुवादक, पत्रकार और व्याख्यानकर्ता के साथ-साथ सिनेमा मर्मज्ञ स्व.विष्णु खरे की स्मृतियों को नमन एवं विनम्र श्रद्धांजलि!

- समावर्तन परिवार
उज्जैन, भोपाल, इन्दौर, मुम्बई,
सूरत, कोलकाता, गुना नईदिल्ली

सूचना

अपरिहार्य कारणों से इस अंक में चिन्तन केन्द्रित अर्द्धवार्षिक स्तम्भ 'मनोराग' तथा कहानियों का स्तम्भ 'समकाल-कथाकाल' प्रकाशित नहीं किये जा रहे हैं, पाठकों को हुई इस असुविधा के लिए हमें खेद है।

- सम्पादक

'पहला अंतरा' का म.प्र. विशेषांक लोकार्पित

भोपाल। साहित्य और संस्कृति की त्रैमासिक 'पहला अंतरा' ने जुलाई सितम्बर 2018 का अंक म.प्र. के साहित्यिक एवं सांस्कृतिक परिदृश्य पर केन्द्रित विशेषांक के रूप में प्रकाशित किया। यह विशेषांक कविवर स्व.गोपालदास नीरज की स्मृति को समर्पित है। विशेषांक में साहित्य की विभिन्न विधाओं में जो साहित्यकार लेखन कर रहे हैं, उनके अतिरिक्त ऐसे वरिष्ठ रचनाकारों के अवदान को भी सम्मिलित किया गया है, जो दिवंगत हो चुके हैं। इस विशेषांक का लोकार्पण भोपाल के राज्य संग्रहालय में गत दिनों प्रख्यात कथाकार आलोचक प्रो.रमेश दवे की अध्यक्षता तथा मुख्य अतिथि मनोज श्रीवास्तव अपर मुख्य सचिव म.प्र. शासन ने किया। समारोह में विशिष्ट अतिथि के रूप में सुप्रसिद्ध कथाकार, कवि एवं शिक्षाविद संतोष चौबे, गीतकार चंद्रसेन विराट, गीतकार अभिलाष (मुम्बई) मौजूद थे। 'पहला अंतरा की प्रबंध सम्पादक श्रीमती इंद्रजीत पबरा ने पत्रिका का विशेषांक लोकार्पण के लिए प्रस्तुत किया। पत्रिका के संपादक नरेन्द्र दीपक ने प्रारंभ में स्वागत भाषण में विशेषांक के संपादन एवं प्रकाशन की पृष्ठभूमि पर विस्तार से चर्चा की।

लोकार्पण समारोह में प्रथमतः गीतऋषि स्व.गोपालदास नीरज को स्मरण किया गया। मुख्य अतिथि मनोज श्रीवास्तव ने इस अवसर पर वर्तमान साहित्यिक अवधारणाओं पर विस्तार से चर्चा की। आपने बताया कि प्रदेश में 15-15 करोड़ की लागत से तीन सांस्कृतिक संकुलों की स्थापना सरकार करने जा रही है। आंचलिक संस्कृतियों के बीच आदान-प्रदान को बढ़ावा देने के लिए भी सरकार प्रयास कर रही है।

विशिष्ट अतिथि संतोष चौबे ने विशेषांक पर विस्तार से प्रकाश डाला। अपने अध्यक्षीय वक्तव्य में प्रो.रमेश दवे ने कहा कि 'पहला अंतरा' ने एक साहसी और उपयोगी काम कर दिखाया, जिसके लिये दीपक जी बधाई के पात्र हैं। कार्यक्रम का संचालन कला समीक्षक विनय उपाध्याय ने किया तथा आभार माना कथाकार समीक्षक युगेश शर्मा ने। इस अवसर पर प्रकाशन से जुड़ी सहभागी संस्थाओं के पदाधिकारियों के अलावा कई साहित्यिक गणमान्य लोग उपस्थित थे।

प्रस्तुति : मधु शुक्ला

डॉ.छबिल कुमार मेहर को मिला हिन्दी भाषा-हिन्दी सेवा सम्मान

भोपाल। मध्यप्रदेश शासन के वरिष्ठ मंत्रीगणों की उपस्थिति में हिन्दी दिवस के अवसर पर स्थानीय रवीन्द्र भवन में आयोजित एक समारोह में डॉ.हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय के हिन्दी अधिकारी डॉ.छबिलकुमार मेहेर को हिन्दी भाषा-हिन्दी सेवा सम्मान 2017-18 प्रदान किया गया जिसमें डॉ.मेहेर को एक लाख रूपयों की राशि, सम्मान पट्टिका, शाल एवं श्रीफल प्रदान किया गया। ज्ञातव्य है कि डॉ.मेहेर ने अभी तक कई चर्चित ओड़िआ कहानियों का हिन्दी में अनुवाद किया है तथा उनकी अब तक 8 आलोचना और 23 सम्पादित पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। इसके अलावा नया ज्ञानोदय, वागर्थ, साक्षात्कार, सापेक्ष, अक्षर पर्व, वर्तमान साहित्य चिन्तन दिशा, समकालीन भारतीय साहित्य, हिन्दुस्तानी, चिंतन सृजन, दस्तावेज आदि पत्रिकाओं में 50 से अधिक आलेख प्रकाशित हैं।

मॉरीशस में हुआ 'नागरी संगम' पत्रिका के विशेषांक का विमोचन

मॉरीशस में भारत सरकार, विदेश मंत्रालय और मॉरीशस सरकार द्वारा आयोजित ग्यारहवें विश्व हिन्दी सम्मेलन के अवसर पर नागरी लिपि परिषद, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित एवं डॉ.हरिसिंह पाल द्वारा संपादित नागरी संगम पत्रिका के विश्व हिन्दी सम्मेलन विशेषांक का लोकार्पण मॉरीशस स्थित स्वामी विवेकानंद अन्तर्राष्ट्रीय सभागार में हुआ। लोकार्पण पद्मश्री डॉ.श्यामसिंह शशि, नई दिल्ली, डॉ.सुरेश चंद्र शुक्ल, शरद आलोक, ओस्लो, (नॉर्वे), महात्मा गांधी अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा के पूर्व कुलपति प्रो.जी.गोपीनाथन, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन के कुलानुशासक प्रो.शैलेन्द्र कुमार शर्मा, केनेडा के साहित्यकार डॉ. रत्नाकर नाराले, आदि ने किया। इस अवसर पर श्यामसिंह शशि ने कहा कि हिन्दी और देवनागरी लिपि ने अनेक देशों में बसे भारतवंशियों को एकता के सूत्र में बांधा है। यह विशेषांक विश्व लिपि देवनागरी के संवर्धन और विकास के लिए महत्वपूर्ण सिद्ध होगा। उज्जैन के प्रो.शैलेन्द्रकुमार शर्मा ने कहा कि देश दुनिया की भाषाओं को परस्पर निकट लाने के लिए उनकी अपनी लिपियों के साथ सार्वजनिक लिपि के रूप में विश्वलिपि देवनागरी का प्रयोग किया जाना चाहिए। अंत में लोकार्पण मंच की संयोजक डॉ.अलका धनपत ने अतिथियों का आभार माना।

कथाकार संपादक कमर मेवाड़ी का सम्मान

राजसमन्द। वरिष्ठ कवि, कथाकार, उपन्यासकार एवं 'संबोधन' जैसी महत्त्वपूर्ण साहित्यिक पत्रिका के सम्पादक रहे श्री कमर मेवाड़ी को 'कथा साहित्य एवं सांस्कृतिक संस्थान' जोधपुर द्वारा गत दिनों आयोजित एक भव्य समारोह में 'प्रकाश जैन लहर, साहित्यिक पत्रकारिता सम्मान' से अलंकृत किया गया।

समारोह में कवि एवं कथाकार माधव नागदा द्वारा परिचय प्रस्तुति के पश्चात समारोह के मुख्य अतिथि साहित्यकार विभूति नारायण राय, अध्यक्ष वरिष्ठ साहित्यकार डॉ.अर्जुनदेव चारण, विशिष्ट अतिथि कथाकार हरि सुमन बिष्ट, कथादेश के सम्पादक हरिनारायण तथा व्यंग्य लेखक एवं सम्पादक फारूक आफरीदी ने हिन्दी साहित्य के प्रति कमर मेवाड़ी के समर्पण की विस्तार से चर्चा की। कार्यक्रम का संचालन मीठेश निर्मोही द्वारा किया गया।

प्रस्तुति : माधव नागदा

पुस्तकें मिलीं

निर्मिशाय नमः (व्यंग्य संग्रह)
निर्मिश ठाकर
लोकोदय प्रकाशन, लखनऊ
मूल्य रू.125/-

माँ-बेटी (कविताएँ)
ज्योति जैन
मूल्य रू.200/-

वामन के विराट : बालकवि बैरागी
डॉ.पूरन सहगल
प्रकाशक : मालवा लोक संस्कृति अनुष्ठान, मनासा (म.प्र.)
मूल्य रू.100/-

यात्राओं का इन्द्रधनुष (यात्रा वृत्तांत)
ज्योति जैन
शिवना प्रकाशन, सीहोर-466011
मूल्य रू.300/-

संकल्प और सपने (लघुकथाएँ)
सदाशिव कौतुक
शिवना प्रकाशन सीहोर म.प्र.
मूल्य रू.150/-

काव्य कल्पतरू (कविताएँ)
कवि - पं.रामकृपाल मिश्र
संपादक : डॉ.हरिसिंह घोष
प्रकाशक : रामचरण मिश्र एवं उमाशंकर मिश्र, छतरपुर
मूल्य रू.200/-

भट्ठी में पौधा (कहानी संग्रह)
कमल चौपड़ा
प्रकाशक-वाणी प्रकाशन नयी दिल्ली
मूल्य रू.395/-

उम्र जितना लम्बा प्यार (कहानी संग्रह)
सपना सिंह
अनन्य प्रकाशन, दिल्ली-110032
मूल्य रू.125/-

गुलमोहर द्वारा नहीं (कविता संग्रह)
सुरेन्द्र रघुवंशी
एलोकेन्ट डाराईटर पब्लिशर्स, थाणे-400610
मूल्य रू.200/-

माँ जोगणियाँ (उपन्यास)
श्यामकुमार पोकरा
रूद्र प्रकाशन, दिल्ली-31
मूल्य रू.225/-

दस प्रतिनिधि कहानियाँ
सुधा ओम ढींगरा
किताबघर प्रकाशन, दिल्ली
मूल्य रू.250/-

बंद मुट्ठी (उपन्यास)
डॉ.हंसादीप
शिवना प्रकाशन, सीहोर
मूल्य रू.300/-

मन मंथन (लेख संग्रह)
डॉ.मीनाक्षी जोशी
प्रकाशक - विश्व हिन्दी साहित्य परिषद, दिल्ली
मूल्य रू 350/-

लंदन में निर्मिश ठाकर की विविध आयामी प्रस्तुतियाँ

लंदन। गत दिनों लंदन की कला संस्था 'आओ गुजरात' के दो दिवसीय आयोजन में ख्यात व्यंग्यकार, कवि, गायक, व्यंग्य, चित्रकार और अभिनेता निर्मिश ठाकर (अमदाबाद) पर केन्द्रित कार्यक्रम संपन्न हुआ। जिसमें उनके द्वारा अपने कृतित्व के पांच आयामों की प्रस्तुतियाँ दी गयी, जिन्हें भरपूर सराहना मिली। ज्ञातव्य है कि निर्मिश ठाकर द्वारा बनायी गयी विविध केरिकेचर श्रेणियाँ देश-विदेश में प्रसिद्ध हुई है जिसके लिए उन्हें महामहिम राष्ट्रपति जी द्वारा सम्मानित किया गया है। केरिकेचर श्रेणियों के निर्माण से ग्यारह राष्ट्रीय कीर्तिमान (लिम्का बुक ऑफ रिकार्ड द्वारा मान्य) स्थापित करने वाले निर्मिश जी की केरिकेचर प्रदर्शनी ''गुजराती प्रतिभाओं के केरिकेचर्स' का उद्घाटन प्रसिद्ध गायक हेमन्त चौहान ने किया जिसे लंदन के केरिकेचर प्रेमियों द्वारा खूब सराहा गया। इस आयोजन में निर्मिश ठाकर के व्यंग्य संग्रह 'निर्मिशाय नमः'' का लोकार्पण भी हुआ। निर्मिश जी ने अपने व्यंग्यपाठ के अलावा अपने व्यंग्य काव्य संग्रह ''मैं और निर्मिश'' से अपनी कुछ व्यंग्य कविताएं भी प्रस्तुत की। गुजराती टीवी के धारावाहिकों में गीत गाकर प्रसिद्ध हुए निर्मिश ठाकर ने आयोजन के दूसरे दिन 'पेरोडी' (प्रति काव्य) प्रस्तुत की। इस अवसर पर निर्मिश के अभिनेता स्वरूप पर आधारित लघु फिल्म 'Nirmishje your brain' का लोकार्पण भी गायक हेमंत चौहान द्वारा किया गया। उल्लेखनीय है गत वर्ष निर्मिश जी द्वारा अभिनीत कामेडी टीवी धावाहिक 'हँसे वह हेप्पी' के दो अंशों की भी आयोजन में प्रस्तुति हुई जिसे खूब पसन्द किया गया।

प्रस्तुति : 'आओ गुजरात, लंदन'

आज के समय में पत्रकारिता का अर्थ ज्यादा व्यापक है लेकिन बहुत ही स्पष्ट भी है, भले ही तकनीकी कारणों से इसे प्रिन्ट मीडिया और इलेक्ट्रनिक मीडिया की पत्रकारिता के खांचों में विभाजित कर दिया गया है लेकिन दोनों अपनी फितरत में एक ही हैं क्योंकि दोनों के उद्देश्य, धर्म और लक्ष्य एक ही हैं। आजादी के पहले और आजादी मिलने के लगभग चार दशकों तक प्रिन्ट मीडिया का ही एकाधिकार रहा है हालांकि उसकी नियत और नीति में तेजी से बदलाव आते रहे हैं लेकिन इलेक्ट्रानिक मीडिया के आने और प्रभावी होने के बाद तस्वीर तेजी से बदली है। कुल स्थिति की पड़ताल के लिये थोड़ा पीछे जाना जरूरी है।

हिन्दोस्तान में पत्रकारिता का इतिहास बहुत पुराना नहीं है। 19वीं सदी में छिटपुट अखबारों/रिसालों के अस्थायी और अनियतकालीन प्रकाशन से हुई शुरूआत से चलते-चलतें कारवां 21वीं सदी के पहले चरण में जिस गर्मजोशी और गौरव के साथ पहुँचा है, वह वाकई खुश होने वाली बात है। पश्चिमी शिक्षा और विचारों के खाते में कम से कम इतना तो दर्ज होता ही है कि उनके देश में आने के बाद मध्यकाल में रह रहे भारत में पुनर्जागरण और आधुनिकीकरण का जो दौर शुरू हुआ, उसमें अभिव्यक्ति और अखबारी संस्कृति को लगातार जगह और बढ़त मिली, और फिर देश के हालात में बात इस तरह बनती गई कि आज अखबार और पत्र-पत्रिकायें आम आदमी की जिन्दगी में महत्वपूर्ण रूप से शामिल हो गये हैं। एक वक्त था कि जब अखबार किस चिड़िया का नाम है, कुछ नामवर लोग ही जानते थे। प्रकाशन की सुविधाओं और तकनीक का अभाव, अशिक्षा, जानकारी और रूझान न होने से ग्राहकों की कमी, प्रचार और प्रसार के साधनों की सीमितता, प्रशासन द्वारा दमन, सरकारी सेन्सरशिप और इसी तरह की अनेक दिक्कतों के कारण आंदोलन को देर से गति मिली लेकिन आजादी के आंदोलनों के दौरान और फिर आजादी मिलने के बाद आशातीत सफलता के द्वार खुल गये और आज स्थिति यह है कि विश्व में सबसे ज्यादा संख्या में सभी प्रकार के अखबार और पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन हमारे देश में होता है।

जब एक अखबार छपता है तो उसके साथ एक संस्कृति भी जन्म लेती है। इस तरह की तमाम संस्कृतियों से बने आभा-मंडल का नाम पत्रकारिता है जो सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय की टेक पर चलती हुई अपने आदर्शों, सिद्धांतों और आचरण का भूगोल खुद तय करती है, अपनी मर्यादा और परम्पराओं को प्रशस्त करती हुई अपना इतिहास खुद रचती है और वृहद् मानवीय मूल्यों के प्रति अखंड प्रतिबद्धता के लिये व्यापक रूप से समर्पित होती है। हर लिखे गये शब्द की, विशेष रूप से ऐसे शब्दों की जिसे एक जनतांत्रिक व्यवस्था में बड़े पैमाने पर लोगों तक पहुँचाया जाता है, खास जिम्मेदारी होती है क्योंकि वे, भले ही जाने-अनजाने ही सही, पल भर में ऐसा नुक्सान कर सकते हैं जिसका मुआवजा समाज सदियों तक न भर सके। प्रजातंत्र के चौथे स्तंभ के तौर पर अखबार नहीं बल्कि उसकी संस्कृति यानी पत्रकारिता को प्रतिष्ठित किया गया और केवल दैनिक अखबार ही नहीं अपितु सभी प्रकार के साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक, अनियतकालीन अखबारों के अलावा सभी प्रकार की साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक, त्रैमासिक, वार्षिक, अनियतकालीन, कभी-कभार छपने वाली, गोया कि हर प्रकार की पत्र-पत्रिकायें इस संस्कृति-यज्ञ में अपनी अपनी तरह से अपनी अपनी हवि देती हैं।

आमजन तक पहुँचने या पहुँचने का दावा करने या उम्मीद रखने वाली पत्रकारिता लोक-संस्कृति से अछूती नहीं रह सकती। उसके आम जन-जीवन से गहरे रिश्ते होते हैं, उनके बीच रहते हुये उनके गुणों का संवर्धन और दोषों का परिमार्जन लगातार करते हुये अपनी लोकप्रियता और प्रभाव में कमी नहीं आने देना है उनका मुख्य उद्देश्य है कुछ इस तरह जैसे एक मछली जल में निरन्तर रहते हुये उसकी गंदगी को भी खत्म करती है और उसकी स्वच्छता और निर्मलता में इजाफा करते हुये उसे पावन बनाये रखने की तमाम कोशिशों में रात-दिन जुटी भी रहती है और जब यही एक मछली सड़ने लगती है तो सारे तालाब को बदबू में डूबने में देर नहीं लगती। लेकिन यह आज की बात बनती है लेकिन गुजरे हुये कल की बात कुछ और थी। हालांकि, उन दिनों आर्थिक और भौतिक कठिनाईयां थीं। ब्रिटिश सेन्सरशिप की तलवार भी हर घड़ी सिर पर लटकती थी और हल्की हलचल पर सीधे गिरती भी थी। समर्थन तथा सहानुभूति के दायरे भी सीमित थे। लेकिन फिर भी उस समय पत्रकारिता एक कैरियर न होकर मिशन था। तब पत्रकारिता पेट पालने का जरिया नहीं बल्कि पेट काटने का रास्ता था जिस पर खुद ही नहीं परिवारों की भी बलि चढ़ती थी। उस कठिन समय में जिन पत्रकारों ने देश को दिशा और दीक्षा दी, उनमें से लगभग सभी पढ़े-लिखे और मध्य वर्गो से आये हुये थे लेकिन पश्चिमी सभ्यता तथा विचारों से भली-भांति परिचित और प्रभावित होने के बावजूद उनकी सोच, प्रवृत्ति और चिन्तायें (कन्सर्न) पूर्णतया भारतीय थीं। बहुतेरे अंग्रेजी भाषा के अखबारों की नकल करते हुये या उनका अन्धानुसरण करते हुये भी भारतीयता की छाप खोई या धुंधली नहीं हुई बल्कि लगातार गाढ़ी होती चली गई। वे आजादी के पहले के दौर में अपनी विश्वसनीयता जनता के बीच मजबूती से रख सके, इसका प्रमाण यह है कि तमाम गफलतों और गरिमा'हीनता के बावजूद आज भी अखबारों और पत्र-पत्रिकाओं में छपे हुये के प्रति आम आदमी के मन में आज भी विश्वास की गाढ़ी, हालांकि बाज-वक्त हल्की ही सही, लकीर कायम है। इस गहरे विश्वास के पीछे पुराने जमाने की पत्रकारिता की साख और धाक है, जबकि वे सभी एक मत या विचार के अनुयायी नहीं थे। उनका स्वप्न एक था और रास्ते अलग अलग थे, कभी-कभी बहुत मुख्तलिफ और कभी-कहीं मिलते-जुलते से भी। उनमें से अनेक क्रांतिकारी दर्शन या गांधी के आंदोलनों या समाजवादी विचारों या समाज-सुधार, शिक्षा-सुधार, धर्म-सुधार या दलित-उत्थान के अभियानों से जुड़े हुये अर्थ-शास्त्री, शिक्षाविद, समाज-सुधारक, साहित्यकार और क्रांतिकारी मिशन के लोग रहे हैं लेकिन जन-सामान्य ने उन्हें अखंड विश्वास और आस्था से देखा और किसी ओछे समीकरणों में बांधकर श्रद्धा के पैमाने नहीं बदले। यह उनकी बुनियादी ईमानदारी, आचरण की शुचिता और अपने आदर्शों के प्रति प्रतिबद्धता का कमाल था।

यहाँ यह उल्लेख आवश्यक होगा कि इस जमात में बहुसंख्या आदर्शवादी और प्रगतिशील मूल्यों से प्रतिबद्ध साहित्यकारों की रही जो तत्कालीन पत्रकारिता से जुड़े और जिन्होंने अपने विचारों से भारत में पत्रकारिता का मानचित्र बदला, उन्हें सतत् परिमार्जित करते हुये मूलभूत संस्कार दिये, आम आदमी को उसकी ही जन-भाषा में वैचारिक गहराईयों के साथ-साथ अकादमिक ऊँचाईयां देकर आजादी के मायने बताये तथा भविष्य का मार्ग-दर्शन किया। यह सिलसिला स्वतंत्रता मिलने के बाद तेजी से बढ़ा और अच्छी गुणवत्ता के बहुत सारे अखबार और अनेक साहित्यिक और बौद्धिक पत्रिकायें सामने आईं जिनके संपादक अपने समय के सुख्यात साहित्यकार और विचारक हुये। इन सुसंस्कृत पत्र-पत्रिकाओं नें काफी नाम कमाया, परिवारों में उनका स्वागत और प्रतीक्षा हुई। इसके अलावा वे आर्थिक रूप से सफल भी हुईं।

अगले अंक में इसी मुद्दे पर फिर कुछ जरूरी बातों पर आपसे चर्चा होगी। तब तक के लिए विदा और आपके सुखद जीवन के लिए शुभ कामनाएँ। स

मोबाइलः 94250-14166

Follow us on /RNTUniv www.rntu.ac.in

Rabindranath TAGORE UNIVERSITY™

MADHYA PRADESH, BHOPAL *(Formerly known as AISECT University)*

AN AISECT GROUP UNIVERSITY

Approved by : AICTE, NCTE, BCI, INC, M.P. PARAMEDICAL COUNCIL | **Recognized by :** UGC | **Member of :** AIU, ACU

Where **aspirations** become **achievements!**

nirf
INDIA RANKINGS 2017
(Ministry of Human Resources and Development, Govt. of India)
Among all Central, State, Private and Deemed universities

Ranked amongst Top 20 Engineering Universities in India — competition success review
Ranked amongst India's Top 30 Private Universities 2018 — INDIA TODAY
Awarded ★★★★ Rating for Best University of India 2018 — CAREERCONNECT
BEST ENGG. COLLEGE WITH AAA RANKING 2018 — करियर्स 360
Recognised as one of the Leading Private Universities of India — OUTLOOK
Ranked Number 2 in Madhya Pradesh 2018 — competition success review

COURSES OFFERED 2018-19

Engineering & Technology | Management | Arts | Commerce Computer Science & IT | Paramedical | YogaScience | Agriculture | Mass Communication | Law | Nursing | Education | Ph.D. & M.Phil. in selected subjects through separate entrance tests

AWARDS AND ACCOLADES

- Most Innovative University of Central India" by News 18
- RNTU awarded Madhya Pradesh Gaurav Samman 2018
- RNTU Awarded as India's first Skill based University by Career Connect Magazine 2018
- ASSOCHAM INDIA Excellence in Education, Training & Development Award 2018
- World Education Summit 2017 & 2017 (Dubai)

A UNIT OF AISECT™ GROUP OF UNIVERSITIES
India's Leading Higher Education Group
CHHATTISGARH | MADHYA PRADESH | JHARKHAND | BIHAR

Contact us :
9893350135, 8085384458, 9826812783

UNIVERSITY CAMPUS : Bhopal-Chiklod Road, Near Bangrasia Chouraha, Bhopal, MP, India, Ph.: 0755-6766100, 6766113
City Office : 3rd Floor, Sarnath Complex, Board Office Square, Shivaji Nagar, Bhopal - 462016,
Ph.: 0755-4289606, 8109347769, Email : info@rntu.ac.in